

संदेहस्तेन मे जातः कन्पवृक्षः कथं भुवि । अयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकात्समागतः ॥ २ ॥

अमुं मे संशयं छिदि कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सम्यक् पृष्ठं विष्णुदास सावधानमनाः श्रृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरभ्यगात् । शिष्यैः पृष्ठसहस्रैश्च वेष्टितोऽचित्यत्पथि ॥ ४ ॥  
विष्णुर्मनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वेश्यहम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पौरुषम् ॥ ५ ॥  
एवं निश्चित्य साकेते मुनिः शिष्यैर्विवेश ह । विलंघ्य सोऽष्टकक्षांस्तेः सीतागेहं ययौ मुनिः ॥ ६ ॥  
सीतागेहे महद्वारासंस्थितं मुनिसत्तमम् । दुर्वासां शिष्ययुक्तं दृष्ट्वा वै वेत्रपाणयः ॥ ७ ॥  
शीघ्रं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा संप्राप्तं मुनिं प्रत्युज्जगाम सः ॥ ८ ॥  
नत्वा तानानयामास सद्ग द्यात्मनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं तिष्ठन्ते मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥  
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यैः सर्वत्र वेष्टितः । अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमाप्तम् ॥ १० ॥  
अतो भोजनमिच्छामि मणिधेन्वनलैर्विना । सिद्धमन्नं मुहूर्तेन सशिष्याय समर्पय ॥ ११ ॥  
मद्यं मनोऽभिलपितं नानापकान्नसंयुतम् । तथा मां पूजनार्थं हि शंभोः पुष्पाणि मानवैः ॥ १२ ॥  
अदृष्टान्यानयस्त्राद्य गाहैस्थ्यं चेत्प्रक्षसि । नोचेन्नाहं समथोऽस्मीत्युक्त्वा मां त्वं विसर्जय ॥ १३ ॥  
तन्मूर्नेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः । मर्वमंगीकृतं चेनि विनयेनाब्रवीन्मुनिम् ॥ १४ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरव्रवीत् । स्नात्वा सरव्वां शीघ्रं त्वामागच्छामि त्वरां कुरु ॥ १५ ॥  
मदुक्तं सफलं कर्तुं सिद्धं वंधूश्च जानकी । तथेत्युक्त्वा मुनिं रामः स्नानार्थं च व्यसर्जयत् ॥ १६ ॥  
तदा ते लक्ष्मणाद्याऽत्र वंधवो जानकी तथा । कुशाद्या वालकाः सर्वे तेऽभूत्वन् भयविद्धलाः ॥ १७ ॥

स्वर्णनिमित चौकीपर वंठे हुए भगवानका ध्यान करे ॥ १ ॥ सो सुनकर मुझे यह संदेह हो रहा है कि कल्प-वृक्ष स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीके भवनमें कैसे आया । मुझपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण कीजिये । श्रीरामदासजीने वहा—हे विष्णुदास ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये साठ हजार शिष्योंसे परिवेष्टित दुर्वासा मुनि अयोध्याको जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते दुर्वासाने सोचा कि स्वयं विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके संसारमें आये हैं, यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज संसारके साधारण मनुष्योंको मैं उनका पौरुष दिखलाऊंगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके वे अपने शिष्योंके साथ अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए और सबको साथ लिये हुए आठ चौक लौधकर सीहाके भवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ सीताजीके विशाल द्वारपर शिष्यों समेत आये हुए दुर्वासाको देखकर छड़ीदारोंने तुरत रामचन्द्रजीको खबर दी । यह समाचार सुनते ही भगवान् दुर्वासा मुनिके पास आ पहुँचे । उन्हें प्रणाम किया और सबको वडे आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहां बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर आसन दिया । आसनपर वंठे हुए दुर्वासाने वडी मधुर वाणीमें रामचन्द्रजीसे कहा—महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासन्नत पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योंके साथ मुझे भोजन चाहिए । इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मणि, कामधेनु तथा अग्निकी सहायतासे न तंयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमें मुझे मेरी हच्छाके अनुकूल भोजन मिले । जिसमें विविध प्रकार के पकवान समिलित रहे । यदि तुम अपना गाहैस्थ्य रखे रहना चाहते होओ तो शिवजीकी पूजाके निमित्त मुझे ऐसे फूल मैंगवा दो, जिन्हें अवतक किसीने न देखा हो । यदि ऐसा न कर सकते हो तो साफ-साफ कह दो कि मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ । यह कहकर मुझे विदा कर दो ॥ ७-१३ ॥ मुनिकी बातोंको सुनकर मुसकाते हुए राम न अतापूर्वक बोले—“मुझे सब बुछ अंगीकार है” ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि मैं शीघ्र सरयूमें स्नान करके आवा हूँ ॥ १५ ॥ हमारे कथनानुसार सब चीजोंकी तैयारीके लिए अपने भ्राताओं तथा सीताको भी शीघ्रतके लिए कह देना । ‘अच्छा’ कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासाको स्नान करनेके लिये

ऊचुः परस्परं सर्वे रामन्यस्तेक्षणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं रामोऽग्रे करिष्यति ॥१८॥  
 विना गोवह्निमणिभिः कथमन्वं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥  
 विलेख्य बद्धवा वाणे तन्मुमोच शरमुच्चमम् । स शरो वायुवेगेन शीघ्रं गत्वाऽमरावतीम् ॥२०॥  
 सुधर्मायां सुरैर्युक्तस्येद्रस्याग्रे पपात ह । तं शरं मधवा दृष्टा चकितो भयविहृलः ॥२१॥  
 कस्यायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोक्यत् । सुवर्णरचितं वाणपुच्छस्थ पापदाहकम् ॥२२॥  
 ततो जात्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवराट् । तस्मिन्वन्धं विमुच्यासौ पत्रं नत्वा पपाठ च ॥२३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे वाणः पुनः श्रीराघवं ययौ । विवेश रामतृणैरे पूर्वत्संस्थितोऽभवत् ॥२४॥  
 मधवाऽपि सुधर्मायां आवयामास निर्जनान् । राममुद्रांकितं पत्रं भयविस्मयसंयुतः ॥२५॥  
 मधवस्त्वं सुखं तिष्ठ स्वर्गेहं त्वां सदा स्मरे । मनियोगं शृणुष्वाद्य याचितोऽस्म्यधुना त्वहम् ॥२६॥  
 विना गोवह्निमणिभिश्चान्नं शिष्यैर्युतेन च । वरैः विष्टसहस्रैश्च तथाऽन्यैर्मुनिसत्तमैः ॥२७॥  
 सहस्रान्दक्षुधितेन क्रोधिनाऽतितपस्विना । दुर्वाससा मुहूर्तात्तु मयाऽप्यगीकृतं हि तद् ॥२८॥  
 याचितान्यपि पुष्पाणि तेनाद्वानि मानवैः । मयांगीकृत्य सकलं स्नानार्थं ते विसर्जिताः ॥२९॥  
 अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजातौ समुद्रजौ । प्रेषयस्व शुणान्मां त्वमदिलम्बेन सादरात् ॥३०॥  
 मा रावणाशिरच्छेत्तुः प्रतीक्षां त्वामिषोः कुरु । एवं संश्राव्य तत्पत्रं सुरानिद्रः सुरैः सह ॥३१॥  
 संमन्त्र्याथ कल्पवृक्षपारिजातौ विगृह्य सः । विमानेन सुरैर्युक्तः श्रीरामनगरीं ययौ ॥३२॥  
 हन्द्रमागतमाज्ञाय तं प्रत्युद्दृश्य लक्षणः । अयोध्यायां निनायेन्द्रं सभास्थं रघुनन्दनम् ॥३३॥  
 कल्पवृक्षपारिजातौ मधवा रघुनन्दनम् । समर्प्य नत्वा श्रीरामं स उपाविशदासने ॥३४॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वासा मुनिरब्रवीत् । गत्वा त्वं पश्य रामं तु किं करोत्यधुना गृहे ॥३५॥

भेज दिया ॥ १६ ॥ हघर लक्षणादिक भ्राता, जानकी और कुश आदि वालक सबके सब भयसे विहृल हो गये और वे रामकी ओर निनिमेष इष्टिसे देखते हुए अपने ममगं कहते लगे कि मुनिने वही अद्भुत वस्तुएँ मांगी हैं । देखें, राम अब क्या करते हैं । विना गो, मणि तथा अग्निके किस प्रकार भोजन तैयार करके देते हैं ॥१७॥१८॥ मुनिके चले जानेपर रामचंद्रजीने लक्षणसे एक पत्र लिखा । उसे अपने वाणमें वाधिकर धनुषपर चढ़ाया और छोड़ दिया । वह वाण वायुके समान वेगसे अमरावतीपुरीमें जाकर सुधर्मा नामकी देवसभामें हन्द्रके सामने गिरा । उस वाणको हन्द्रने देखा तो भयभीत होकर कहा—॥ १६-२१ ॥ “यह वाण किसका है !” यह कहकर उसपर लिखे रामके नामको देखा और पत्र खोलकर पढ़ा । पत्र ले जानेवाला वाण वहसि फिर रामजीके तूणीरमें लौट आया ॥ २२-२४ ॥ भय और विस्मय युक्त हन्द्रने वह पत्र सभामें बैठे हुए देवताओंको सुनाया ॥ २५ ॥ उस पत्रपर लिखा था—“हे हन्द्र ! तुम स्वर्गमें सुखी रहो । मैं सबका तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, इस समय तुम्हें मैं एक आज्ञा दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षके भूले एवं उग्र श्रोदी दुर्वासा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो गी, मणि अथवा अग्निके ढारा न बना हो । साथ ही उन्हें शिवपूजनके लिए ऐसे पूल माँगे हैं, जिन्हें अबतक मनुष्योंने न देखा हो । मैंने उनकी मांगी स्वीकार कर ली है । इस समय मैंने उन्हें स्नान करनेको भेज दिया है ॥ २६-२८ ॥ इससे तुम जटपट कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि द्वीरसागरसे निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेज दी ॥ ३० ॥ देखो, कहाँ रावणका विनाश करनेवाले मेरे वाणकी प्रतीक्षा न करने लगना ।” इस प्रकार वह पत्र देवताओंको सुनाकर हन्द्रदेव तुरन्त सबके साथ मंत्रणा करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समेत विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ लक्षणने जब यह जाना कि देवराज हन्द्र आ गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ हन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामको अर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किंचिदन्नमस्त्यथवा न वा ।

चिंतायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽस्त्यत्र किं कृतम् ॥३६॥

वहिः संपादितं सर्वं मया यद्यन्न याचितम् । रहः स्थितः शनैर्द्युषा शीघ्र त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥  
तथेत्युक्तत्वा मुनिं शिष्यः स ययौ रामसद्गृहम् । तत्र हृषा कल्पवृक्षपारिजातौ सनिर्जरौ ॥३८॥  
सनिर्जरेशं रामं च मुदितं सीतयाऽन्वितम् । ततस्तूर्णं ययौ शिष्यः परावृत्य मुनिं प्रति ॥३९॥  
कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्चक्रृत्वा शिष्यवचनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥४०॥  
ययौ शिष्यैः परिवृतो विवेश नृपतेर्गृहम् । तं मुनिं राघवो हृषा प्रत्युद्गम्य पुनः सुरैः ॥४१॥  
नमस्कृत्य सुहुवेंगाददावासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं स सशिष्यस्य रघूतमः ॥४२॥  
चकार सीतया सादृं लक्ष्मणादिभिरन्वितः । पारिजातप्रसूनानि नेक्षितान्यत्र मानवैः ॥४३॥  
ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि हृषा मुनिस्तूर्णीं तैश्वकारेश्वरार्चनम् ॥४४॥  
ततः सर्वान्सुरान्पूज्य परिवेषणकर्मणि । चोदयामास श्रीरामो जानकीं लक्ष्मणेन सः ॥४५॥  
ततः सा जानकी वेगादिव्यालंकारमण्डता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नृपुरस्वना ॥४६॥  
पात्राणि कल्पवृक्षाभः स्थापयामास कोटिशः । सीता तं प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥  
क्षीरसागरसंभूत देवानां चिंतितप्रद । दुर्वाससे कल्पवृक्ष सशिष्यायाद्य तोपय ॥४८॥  
ततसीतावचनं श्रुत्वा हेमपात्राणि कोटिशः । चित्राञ्जैः पूरयामास क्षणात्कल्पतरुस्तदा ॥४९॥  
तैरन्नैर्हेमपात्रेषु जानकी परिवेषणपूर् । क्षणाच्चकार सतुष्टा ह्यमिलाचंपिकादिभिः ॥५०॥  
ततस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यरशनमादगत् । चकार रघुवीरेण प्रार्थितः स मुहुर्मुहुः ॥५१॥  
ततः कृत्वा भोजन हि करशुद्धिं विधाय सः । तांशूलं दक्षिणां चापि जग्राह रघुनायकात् ॥५२॥

आसनपर जा वैठे ॥ ३४ ॥ उधर सरयुके किनारेसे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा— “मुम जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ मैंने जो-जो बतलाया था, उसमें कुछ अन्न तंशार है या नहीं । अथवा अभी तक चिन्ता करते हुए ये ही नुपचाप वैठे हैं ॥ ३६ ॥ यदि मेरे आज्ञानुसार काम कर रहे हैं तो अबतक क्या-क्या किया है । मैंने जैसा कहा था, वे सब चोजे उन्होंने इकट्ठी कर लीं या नहीं । कहीं छिरकर चुपचाप यह सब देखो और शीघ्र मेरे पास लौट आओ” ॥ ३७ ॥ “अच्छा” कहकर शिष्य रामचन्द्रजीके भवनमें जा पहुँचा । दहीं कल्पवृक्ष, परिजात, इन्द्र, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राम तथा सीताको देखकर फिर दुर्वासा मुनिके पास लौट गया और जैसा देखा था, सद समाचार कह सुनाया । शिष्यकी बात सुनकर दुर्वासाको बढ़ा आश्र्वर्थ हुआ ॥ ३८-४० ॥ स्नानके बाद शिष्योंको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके गुन्दर भवनमें पहुँचे । मुनि दुर्वासाको देख देवताओंके साथ उठकर रामचन्द्रजीने वडे आदरके साथ समस्त शिष्यों समेत मुनिको प्रणाम किया और वैठनेके लिये उत्तम आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणादिके साथ उनकी पूजा की । मनुष्योंने पारिजातके फूल नहीं देखे थे ॥ ४१-४३ ॥ सो उन फूलोंको शिवपूजनके निमित्त मुनिके सामने रखा । दुर्वासाने उन्हें एक बार चिस्तित नेत्रोंमें देखा और चुपचाप शिव तथा सब देवताओंका पूजन किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीको भोजन परोसनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ तब दिव्या-लझारोंको धारण किये सीताने कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके करोड़ों वर्तन लाकर उनके नीचे रख दिया और इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं-॥ ४६-४७ ॥ “हे क्षीरसागरसे जायमान तथा देवताओंकी अभिलापा पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यों समेत दुर्वासाको आप सन्तुष्ट कर दोजिए” ॥ ४८ ॥ सीताकी प्रार्थना सुनकर क्षणभरमें कल्पवृक्षने करोड़ों पात्रोंको विविच प्रकारको भोजनसामग्रियोंसे भर दिया । उन अन्नोंको उमिलादि-के साथ सीतामें सूवर्णके पात्रोंमें परोसा और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ रामचन्द्रजीके द्वारा प्रार्थित होनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९-५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुराणां पुरतो वेदवाक्यैः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा तमाहानंदनिर्भरः ॥५३॥  
 राम राजीवपत्राक्षं त्वं सादृजगदीश्वरः । अत्र रावणवातार्थमवतीर्णोऽसि वेदम्यहम् ॥५४॥  
 जनांस्त्वत्पीरुषं ज्ञातुं मयैत्याचितं तव । विना गोवहिमणिभिर्दिव्यानन्नं रघुनन्दन ॥५५॥  
 प्रसूनान्यप्यदृष्टानि मानवैर्जगतीतले । किं राम दुर्घटं तत्र यस्य भ्रूभङ्गमात्रतः ॥५६॥  
 लयो ब्रह्मादिकानां च जायते संभवोऽपि च । मन्दरं मञ्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे ॥५७॥  
 कूर्मरूपेण जातोऽसि धर्तुं तु मन्दराचलम् । निष्कासितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥  
 तव साहाय्यमात्रेण सर्वं जानाम्यहं प्रभो । लक्ष्मीः सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विषम् ॥५९॥  
 ऐरावतश्चाप्सरसः कल्पवृक्षो भिषम्बरः । उच्चैःश्रवाः पारिजातो सुरा ज्येष्ठेति राघवः ॥६०॥  
 चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा त्वया । देवेभ्यो यानि तान्येते भोक्ष्यन्ति कृपया तव ॥६१॥  
 त्वदाज्ञापालिनः सर्वे शङ्कराद्याश्च निर्जराः । सर्वेषां जीवनोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥  
 कल्पिता येन रामेण तत्र किं दुर्घटं तव । ममाभिलिपिं भोजयं दातुं त्वत्कौतुकं मया ॥६३॥  
 अद्यावलोकितं राम जनानपि प्रदर्शितम् । त्वं पाता सर्वेलोकानां जनकश्चापि घातकृत् ॥६४॥  
 अस्माकं गतिदाता त्वं मे क्षमस्वापराधितम् । एवं नानाविधं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥  
 राममामंत्र्य दुर्वासा ययौ शिष्यैः स्वमात्रमम् । अथ तान्निर्जरान्प्राह रामः कनकलोचनः ॥६६॥  
 कल्पवृक्षपारिजाती गृहीत्वा गम्यतां दिवम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाक्पतिः प्राह राघवम् ॥६७॥  
 यावत्कालं तिष्ठसि त्वं भूम्यां तावन्नगोत्तमौ । अयोध्यायां तिष्ठतस्तौ कल्पवृक्षसुरद्रुमौ ॥६८॥  
 त्वयि वैकृष्णउमायाते दिवं तौ यास्यतो भुवः । तथेति तत्सुरगुरोः प्रतिनिधं वचः प्रभुः ॥६९॥

हाय घोया और रामसे ताम्बूल-दक्षिणा ली ॥ ५२ ॥ फिर उन देवताओंके सामने ही वेदवाक्यों द्वारा विस्तारपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति की और आनन्दसे गद्गद होकर कहने लगे— ॥ ५३ ॥ हे राम ! हे कमलदल सरोखे नेत्रोंवाले भगवन् ! मैं जानता हूं कि तुम साकात् जगदीश्वर हो और रावणका विनाश करनेके लिए इस धरातलपर आये हो ॥ ५४ ॥ ससारी जनोंको तुम्हारा पौरुष दिखलानेके लिए ही मैंने गो-वह्नि और मणिसे न रिद्धि दुबा अन्न तथा मनुष्योंसे अदृष्ट फूल पूजनेके निमित्त मार्गे थे । हे राम ! तुम्हारे लिए यह कुछ दुर्घट कार्य नहीं है ; तुम्हारे भ्रूभंगमात्रसे ब्रह्मादिक देवताओंका भी विनाश एवं उद्भव होता है । जिस समय मंदराचलको क्षीरसागरमें तुमने डूबते देखा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब कूर्मरूप घरकर उसे अपनी पीठपर उठा लिया था । उस समय एकमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओंने क्षीरसागरसे ये चौदह रत्न निकाले थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जिनके नाम हैं—लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, कौस्तुभ, सुधा, विष, ऐरावत, अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, बन्धनतरी, उच्चैःश्रवाः, पारिजात, सुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उन चौदहों रत्नोंको तुमने चौदह देवताओंको बांट दिया और तुम्हारी ही कृपासे वे सब आनन्दपूर्वक उनका उपभोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ एकरादिक समस्त देवता तुम्हारी ही आशाका पालन करते हैं । इस जगत्में स्थित सब प्राणियोंके जीवनका उपाय तुम्हीं करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार भोजनकी सामग्रिये जुटा दी तो इसमें कीई आश्रयकी बात नहीं है । यह तो मुझे इन साधारण श्रेणीके मनुष्योंको तुम्हारा कौतुक दिखाना था, सो दिखा दिया ॥ ६३ ॥ हे राम ! तुम्हीं समस्त लोकोंके रक्षक, लक्ष्य तथा संसारके नाशक हो ॥ ६४ ॥ तुम्हीं हमारे गतिदाता हो । मुझसे जो कुछ त्रुटि हुई हो, सो क्षमा कर दो । इस तरह नाना प्रकारके वाक्यों द्वारा स्तुति करके दुर्वासाने वारम्बार प्रणाम किया और रामचन्द्रजीकी आशा लेकर सब शिष्योंको साय लिये हुए अपने आध्रमको चल दिये । इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने उन देवताओंसे कहा—कल्पवृक्ष और पारिजातको लेकर अब आप लोग भी अपने लोकको जाते जायें । इस प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति कहने लगे— ॥ ६५-६७ ॥ “जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्यामें ही रहेंगे ॥ ६८ ॥ जब आप अपने वैकृष्ण लोकको जाने लगेंगे, तब ये भी आपके साय चले

पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । ततस्ते राघवं नत्वा युरिंद्रादिकाः सुराः ॥७०॥  
 स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्नौ कल्पवृक्षपारिजातौ भुवं दिवः ॥७१॥  
 तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्ठं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतरु पुष्पकस्थौ विरेजतुः ॥७२॥  
 साकेते सीतया रामस्ताभ्यां सुखमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्के सीतया सह ॥७३॥  
 नानाभोगात्राघवन्द्रः स बुभोज चिरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामध्यानं कल्पतरोः स्थले ॥७४॥  
 सहस्रनामसकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य परिजातवृक्षांशाः शतशो भुवि ॥७५॥  
 पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामतोषदम् ॥७६॥  
 कल्पवृक्षांशरूपाश्च ज्ञातव्यास्तत्र मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्यैश्च सर्ववांछितदायकाः ॥७७॥  
 पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षते युगत्रये । पापाधिक्येनापि सेवां नरा वाँछति नो कलौ ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मानं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे  
चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### तृतीयः सर्गः

( रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद )

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्यां रामकृष्णौ वरौ श्रुतौ । मया दशावतारेषु श्वतारावुमौ पुरा ॥ १ ॥  
 तयोरपि च कः श्रेष्ठस्तत्त्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा तस्य श्रोप्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र विज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥  
 अस्मिन्मध्ये पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । दिजाभ्यां वादरूपेण कीर्तिर्ता पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

जायेंगे । रामने सुरगुरु वृहस्पतिको बात स्वीकार कर ली ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक बिमानमें रथकर भगवान्को प्रणाम किया और राम द्वारा पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वर्गसे मृत्युलोकमें आये । उनके आनेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने कह सुनाया । तभीसे दोनों सूरतरु पुष्पकमें विराजमान रहे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अयोध्यामें सीताके साथ रामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षोंके नीचे दिव्य पर्यङ्कके ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सूखोंको भोगते थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसालिए मैंने रामसहस्रनामका कथन करते समय कल्पवृक्षके नीचे रामका व्यान करनेको कहा था । तभीसे पारिजातके संकड़ों अंश पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस घरतीतलमें विद्यमान हैं । इसके समान रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा फूल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके अंशसे पीपल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है । उसकी आराधना करनेसे सब प्रकारको कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥ अन्य युगोंमें पुण्य अधिक था । इस कारण लोग पीपलके वृक्षकी आराधना करते थे । किन्तु कलियुगमें पापकी अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहते ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मानं श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजपाण्डेयविरचितं ज्योत्स्ना भाषाटोकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धं द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा--हे गुरो ! भगवान्के दस अवतारोंमें राम-कृष्ण दो अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं । यह मैंने पहले कई बार सुना है ॥ १ ॥ अब आप हमको यह बतलाइए कि इन दोनों बर्यात् राम और कृष्णमें कौन बड़ा है । जिसको आप श्रेष्ठ बतलायेंगे, मैं सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा--हे विष्णुदास ! तुमने ठोक प्रश्न किया है । सावधान मन होकर सुनो । इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको रामका अवतार ही श्रेष्ठ सुमझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मनोहर कथा आपसमें दो शास्त्रोंके

अयोध्याविषये कविद्विजो रामाहृष्टस्त्वभूद् । द्वारकायां तथा विप्रः कृष्णाख्योऽभृत्परः सुखीः ॥६॥  
चक्कुः सेवनं चोर्भी सर्वदा रामकृष्णयोः । तावेकदा माघमासे प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ६ ॥  
उभौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माघवं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुखाच्छ्रोतुं तनुराः स्थितौ ॥ ७ ॥  
शुश्रुश्चतुः कथास्त्र ग्रसंगाद्राघवस्य च । रामाख्यो रामभक्तः स श्रुत्वा राघवस्तकथाम् ॥ ८ ॥  
तुष्टस्तं पूजयामास मुदा पौराणिकं तदा । कृष्णाख्यः क्रोधसंयुक्तस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥  
किं कलेशिनोऽद्य रामस्य कथां श्रव्याऽतिहिंपितः ।

पूजितोऽपि वृथा व्यासस्त्वं भृटोऽसीनि वेदाथहम् ॥१०॥

नान्यचरित्रं कस्यापि पादनं श्रुतितोपदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नानाक्रीडापुरःसरम् ॥११॥  
तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामाख्यः प्राह सस्मितः ।

रामोपासक उवाच

रामः कलेशी कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥

कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरितं दुरितापहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरितं नेरितं त्वया ॥१३॥  
ब्रदाद्य विस्तरेणीव शृण्वन्त्वेते सभासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया राम सावधानमनाः सृणु ॥१४॥

बदामि राघवस्थाथ कृष्णस्य चरितं त्वहम् । कलेशदं तोपदं नणा शृण्वन्त्वेते सभासदः ॥१५॥  
तत्र रामस्य जन्मादी जातः शापः पितुः पुरा । शापस्यादावपि पुणा तद्वेतो रावणेन हि ॥१६॥  
लकां तत्पितरी नीतौ प्रारंभे दुखमीदशम् । मम कृष्णस्य जन्मादी तत्पित्रोः सौख्यदायकः ॥१७॥  
विवाहमंगलंः कसः पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें कही गयी थी । वह क्या परम पुण्यदायिनी है, उसे सुनो ॥ ४ ॥ एक समय अय इसमें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था । उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विहान् विप्र रहता था ॥ ५ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णका उपासना किया करते थे । एह समय माघ भृंगेमें त्रिवेणीके तटपर उन दोनोंकी भेट हुई ॥ ६ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और वेणोमाघवकी पूजा करके फिसी करके एक पौराणिकके पास कथा सुननेकी इच्छासे जा दीठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे । उसमें कहीं रामका प्रसंग आ गया । उसे सुनकर वह राम नामवाला ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और हृष्पूर्वक पौराणिककी भली भाँति पूजा की । इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मारे क्रोधके लाल हो गया और कहने लगा—जगत्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इतने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की । मेरी समझमें तो यही जाता है कि तुम बड़े मूर्ख हो ॥ ८-१० ॥ मुझे तो और किसीका चरित्र इतना सुन्दर नहीं लगता, जितना श्रीकृष्णका । वयोंकि उस चरित्रमें विविध प्रकारकी लीलाएं भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रको कैसे दुःखी बतलाया और कृष्णको सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाम लेना भी पसन्द नहीं किया । तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो । जिससे ये सभासद भी सुनें । कृष्णोपासकने कहा—हे राम ! तुमने बहुत ढीक प्रश्न किया है । अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ । उनमें रामचरित्र कैसा वलेशप्रदं और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब सभासद सुनते जायें ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके जन्मके पहले ही उनके पिताको श्वरणके पिताका शाप मिल चुका था । उसके भी पहले उनके माता-पिताको रावण अपनी लंकामें उठा ले गया था । इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

## रामोपासक उवाच

रे रे मृणु त्वं दुर्बुद्धे न स शापो वरोऽपितः ॥१८॥

यत्प्रसादादपुत्रस्य नृपस्य तनयस्त्वभृत् । तथा मद्राममीत्या तौ नीतावपि विसर्जितौ ॥१९॥

दशास्थेन तत्पितरौ जन्मादौ पौहृषं त्विदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥

राजभोगनिषेधार्थं शापो यदुकुलाय च । जन्मापि वदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥

सहोदरवधश्चापि तद्वेतोर्मार्तुलेन हि । न वाहूजश्च वैश्यश्च यस्य तातावुभौ स्मृतौ ॥२२॥

गोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवऽपि च ।

परेण पोषितश्चापि कनीयान् वलभद्रतः । एवं नानाविधं दुःखं तव कृष्णस्य नो सुखम् ॥२३॥

## कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्थं विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगतः ॥२४॥

## रामोपासक उवाच

द्विजध्ना निहता दुष्टा मम रामेण ताटिका । मुनियज्ञक्षणार्थं मुदा राजाऽपितौ शिशू ॥२५॥

तव कृष्णेन रक्षार्थमात्मनः पूतना हता । तथाऽत्मार्थं प्राणिहिंसा वहु तेन कृता ब्रजे ॥२६॥

गोपैष्व सङ्गतिस्तस्य तथैव गोपरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च खगवाजिवधस्तथा ॥२७॥

रासभवृपधातश्च चौर्य द्युतं दनेऽटनम् । कंवलावरणं शोतपर्जन्योष्णप्रपीडनम् ॥२८॥

जुत्तद्भ्यां पीडनं नित्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चान्म द्विजस्त्रीभ्यो वने मृदुः ॥२९॥

इन्द्रध्वजपूजनादिवृद्धाचारप्रलोपनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रीडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसके विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको बैबाहिक संघा मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे दुर्बुद्धे ! वह रामचन्द्रके पिताको शाप नहीं, बल्कि बरदान मिला था । जिसके प्रसादस्वरूप निपूत महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रादि चारों भाइयोंका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रजीके डरसे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी अयोध्यामें लौटा गया था ॥ १६-१९ ॥ जन्मके पहले ही मेरे रामचन्द्रजीमें इतना पोहल था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रयत्न ही उनके माता-पिता कारणारम्भ बन्द थे । दूसरे यदुकुलको गाजभोगनिषेधके निमित्त पहले ही शाप प्राप्त हो चुका था । उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानेमें और वहाँ थोड़ी ही देरमें माता-पितासे वियोग हो गया । कृष्णके कितने ही संगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो कृत्रिम माता-पिता मिले भी, वे न तो क्षमिय थे और न वैश्य ॥ २०-२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक खालेके लड़के बने । इस प्रकार वे शंशादास्थामें ही प्रवासी हो गये । औरोने उनकी रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको अनेक प्रकार का दुःख मिला, सख बुल भी नहीं ॥ २३ ॥ कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारे रामने ताड़का नामवाली एक स्त्रीका वध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ ॥२४॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाह्यणोंकी हत्या करनेवाली स्त्री ताड़काको मारा था और हिन्दुमित्रकी यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था ॥२५॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने अपने लिए पूतनाको मारा था । इसी प्रकार उन्होने आत्मरक्षाके लिए बजमें और भी बहुन-सी प्राणिहिंसाएं की थीं ॥२६॥ गोप-ग्नालोंका साथ था और वे गोपोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होने गो ( धेनुकासुर ), पक्षी ( दक्षासूर ), धाजि ( केशी ), रासभ तथा वृष आदिको मारा, चोरी की, जुप्रा खेले और बनोंमें इष्वर-उन्नर धूमते रहे । शीत, वर्षा तथा आतपसे बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कम्बल ढाले रहते थे ॥ २७-२८ ॥ भूख-म्याससे दुखी होकर ग्नालोंका जूठन खाते थे । अपने लिए उन्होने बनमें बाह्यणोंकी स्त्रियोंसे बार-बार अच्छ मार्या ॥ २९ ॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि वृद्धोंकी कुलपरम्परासे चलनेवाली प्रथाका उन्होने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ पूजते

नग्नस्त्रीदर्शनं बहुप्राशनं दामवन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्मृत्युर्युषितसेवनम् ॥३१॥  
 रोदनं नवनीतार्थं मुहुर्मात्रा प्रताढनम् । गोगोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥  
 कृता रजकहत्या च युद्धं अत्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या युद्धं मातुलमर्दनम् ॥३३॥  
 नैष्ठुर्यमास्तवर्गेषु राज्यप्राप्निस्तथैव च । नृपाज्ञावर्तनं चापि क्रीडा दास्या कुरुपया ॥३४॥  
 युद्धात्पराजयश्चापि रिपवे पृष्ठदर्शनम् । गिरौ दग्धः परैर्ज्ञातः स्वोयस्थलविमोचनम् ॥३५॥  
 अविघतारनिवासश्च वलात्स्त्रीहरण कृतम् । भौमासुरपरद्रव्यहरणं परमूनुतः ॥३६॥  
 स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । शर्नैः स्तेयावरोपाश्र वृक्षार्थं सङ्गरः सुरैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जलपसि शृणवद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता ब्रूहि कृतः स वर्णसङ्कूरः ॥३८॥  
 शिवचापस्य भंगेन शिवस्याप्यपराधितम् । जामदग्न्यमानभङ्गकरणं मुद्रलस्य च ॥३९॥  
 आज्ञा विना लक्ष्मणेन तद्वल्लयस्त्रोटिताः शुभाः । सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापरायणः ॥४०॥  
 वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याधकर्मरतः श्रीतपञ्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥  
 पादगामी चर्मवासा जटावल्कलवान्नखी । इमश्रुधारी तरुच्छायाश्रयी पात्रविवर्जितः ॥४२॥  
 राक्षसेन हृता पत्नी तव रामस्य कानने । पत्न्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रपूजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

रामेण मोचिता पत्नी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शबरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

और अपनेसे बड़ी तिथियोंके साथ खेलते फिरते थे । वे नज़्मी नारियोंको देखते थे । उन्होंने मिट्टी सायी और कितने ही बार तो लोगोंके जूठन तक खाये थे । रस्सीसे बांधे गये तो यमल-अजुंग नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ थोड़ेसे मालनके लिए रोने लगते थे और माता यज्ञोदाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अन्तमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंके प्रति निहुराई करके उस पवित्र वृजघामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ भशुरामें रजकी हत्या की और ( खाले होकर ) धात्रियोंके समान युद्ध किया । उन्होंने गजहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनोंके साथ निहुराई करके उन्होंने राज पाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बैधकर रहे । बादमें एक कुहप दासीके साथ क्रीड़ा की ॥ ३४ ॥ युद्ध हुआ तो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान भशुराको छोड़कर समुद्रके किनारे जाकर रहने लगे । वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्थितियोंका हरण किया । भौमासुरके द्रव्योंको उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने भाइयों तथा कुटुम्बियोंको मारनेके लिए पाष्ठवोंको उपदेश दिया । लोगोंने उन्हें स्यमन्तक मणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने देवताओंके साथ संग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपसक बोला—क्या व्यर्थं बकवास करते हो, सुनो । माज मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भार्या बनायी थी, वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका धनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका मान भङ्ग किया । मुद्रलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने लतायें तोड़ मेंगवाई । ज़ङ्गलमें इघर-उघर धूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे । वनके फल-मूल तथा मांस खाते और धनुष धारण किये बहेलियोंका काम करते रहे । सर्वदा बेचारे शीत-आतप तथा मेहके सताये रहते थे ॥ ४१ ॥ पंदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-बल्कल धारण किये रहते थे । बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये पेड़ोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पात्र भी नहीं रहता था कि जिसमें खांपी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया । उसके लिए विविष प्रकारका विलाप करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शबरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

जीवन्मुक्ता तत्कृपया मोक्षमाप शुचित्रता । तब कृष्णस्य ताः पत्नीभोक्ष्यंत्यद्यापि शत्रवः ॥४५॥  
जित्वाऽर्जुनं बलादेव हताः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीजितश्च स्त्रिया दत्तः क्रयक्रीतश्च नारदात् ॥४६॥  
सर्वासां कामपूर्त्यर्थं निशि निद्राविवर्जितः । वंधुम्यां गोपिका भुक्ता मारुतुल्यावयोधिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

वंधुना तब रामश्च पशुभीत्या न निद्रितः । वंधुपत्न्यपिंता तारा सुग्रीवाय यथासुखम् ॥४८॥  
वानरैश्च कृता मैत्री स्पर्शितं दुन्दुभेः शत्रम् । निरर्थकं हतो वाली साहाय्यं वानरैः कृतम् ॥४९॥  
वानरो यस्य वै यानं वृथा ताला विदारिताः । सागरो रोधितो येन लङ्घा सा ज्वालिता वरा ॥५०॥

रामोपासक उवाच

दरिद्रेण सुदाम्ना ते कृष्णेन मैत्रिकी कृता । न ज्ञेया वानरास्तेऽपि सर्वे देवांशरूपिणः ॥५१॥  
कापटघेन हतो येन जरासंधो-निरर्थकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्वर्जे वने ॥५२॥  
गोपालस्य कृतं यानं क्रीडनं सर्वदा वने । ज्वालिता येन सा काशी सुहृदुक्मी विरूपितः ॥५३॥  
शिवभक्तेन समरः कृतो वाणेन सादरम् । शिवेनापि कृतं युद्धं चैद्येन निंदितो मुहूः ॥५४॥  
परैः पौत्री जितौ यस्य येन स्त्रीणां परस्परम् । कृता विषमता चात्र पारिजातार्पणादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि रामपुत्रेण सुहृददो रणे जितः । शिवभक्तदशास्येन रामेण समरः कृतः ॥५६॥  
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निंदितोऽपि यः । तथा मित्रं जितो यस्य वंधुजेन विभीषणः ॥५७॥  
परगेहस्थिता पत्नी पुनर्येनाभिता सुखम् । नैष्टुर्यं च कृतं पत्न्यां स्त्रीणां कामान पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राक्षसके हाथसे छुड़ाया था । जिसको तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर शब्दरी थी ॥४४॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया । किन्तु तुम्हारे कृष्णकी पत्नियोंको आज भी उनके शत्रुगण भोग रहे हैं ॥४५॥ कृष्णकी हजारों स्त्रियोंको अजुनसे इस्युलोग छीन ले गये थे । कृष्ण पूरे स्त्रीण थे । उनकी एक स्त्रीने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी सत्यभामाने नारदसे उन्हें खरीदा ॥४६॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें रात-रात भर जागना पड़ता था । दोनों भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा की थी, जो माताके समान थीं ॥४७॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे राम पशुओंके भयसे रात रात भर जागा करते थे । बड़े भाईकी स्त्री ताराको रामने बड़ी हँसी-खुशीके साथ सुग्रीवको दे दी थी । वानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की ओर दुन्दुभी नामक राक्षसके शवका स्पर्श किया । वालि वेचारेको बिना किसी अपराधके मार डाला । वानरोंने उनकी सहायता की ॥४८॥ ४९॥ वानर ही उनकी सवारीका काम देते थे । बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने सात ताल गृक्षोंको काटकर गिरा दिया । सागरमें पुल बनाया और सोनेकी सुन्दर लङ्घापुरी जलवा दी ॥५०॥ रामोपासक बोला—तुम्हारे कृष्णने एक दरिद्र ब्राह्मण सुदामाके साथ मित्रता की थी । जिन्हें तुम वानर कह रहे हो, वे वानर नहीं, बल्कि वानरका शरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको आये थे ॥५१॥ तुम्हारे कृष्णने कपट करके व्यर्थ जरासंधका वध करदाया था । वनमें सदा गोपण उनकी सहायता करते रहते थे ॥५२॥ उन्होंने गोपोंको अपनी सवारी बनायी और सदा वनमें इधर-उधर खेलते रहे । उन्होंने काशी नगरीको जलवा डाला और अपने सगे साले रुक्मीको कुरुप कर दिया ॥५३॥ शिवभक्त वाणासुरके साथ उन्होंने युद्ध किया और स्वयं शिवको भी उनके साथ युद्ध करना बड़ा । शिशुपालने उनकी खूब निन्दा की ॥५४॥ शत्रुओंने उनके पौत्रको जीतकर अपने वशमें कर लिया और पारिजातादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥५५॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बेटेने भी तो अपने ससुरवं वाघ लिया और रामने शिवभक्त रावणके साथ युद्ध किया था ॥५६॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर डाली और मुनि अगस्त्यने उनकी अच्छी तरह निन्दा की । अपना काम बनानेके लिए रामने रावणके भाई विभीषणको कोड़कर मित्र

यानारुदा कृता यात्रा वैश्याः स्पृष्टास्तथा रहः । पतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥६५॥  
पुत्रं हंतुं कृता चाज्ञा शुद्रसिंहवधौ कृतौ । पत्नीसक्ताऽश्रिता येन यस्याज्ञा पालिता नृपैः ॥६०॥

रामोपासक उवाच

अंते कृष्णस्य ते शापाद्वशच्छेदो शम्भूद्विज । अविधना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥  
स्वगोत्रस्य वधस्त्वंते मद्यपानादि यत्कुले । दर्शनं द्वर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥  
स्वस्थानं गमनं येन कृतमेकाकिना तथा । स क्षतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याघेनान्पेन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तब रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान् । तथा सीता मया त्वक्ता चेति लोकं प्रतार्य च ॥६४॥  
बालमीकेराधमं गत्वा दृष्टौ सीतासुतौ रहः । पिण्याकेन तथेङ्गुद्या पिण्डानादिकं कृतम् ॥६५॥  
दंडके तब रामेण स्वपित्रे अमताऽपितम् । तथैरावणभुक्तायाः स्पृष्टः स मञ्चकः स्थले ॥६६॥  
तथाऽश्वत्थच्छेदनार्थं महान् यज्ञः कृतो मुहुः । स्वमंत्रिणश्च शेषायुःपूर्त्यर्थं सङ्गरोऽपि च ॥६७॥  
कारितो यमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः । पुष्पास्वादनमात्रादिपत्न्याः शिक्षा तथा कृता ॥६८॥  
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता । हतास्त्रृणासुराद्याश्च धृतोऽङ्गुल्या गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया ताटिका हवा । मारीचाद्या हताशापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण गोपिका मोहिता ब्रजे । मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

**मम रामेण देवाना मोहिताः स्वीयरूपतः । देवपत्न्यो रहो रात्रौ मारुतुल्या विचितिताः ॥७२॥**

वनाया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया । फिर उसी स्त्रीके साथ निनुराई की । बहुत-सी स्त्रियाँ कामयाऽचाके लिये पहुँचीं, किन्तु उनकी कामना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥५८॥ सवारोपर चलकर तीर्थयात्रा की । एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सीतापर झूठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लव तकको मारनेकी आज्ञा दे दी और शम्बुक शुद्र तथा सिंहका वध किया ॥ ६० ॥ रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका ज्ञाह्यणके शापसे वंश नष्ट हआ था । उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रने लय कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यावान करवाकर अपने कुटुम्बियोंका वध किया । अन्तिम समयमें अपने अतिप्रिय मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहाँसे गोलोककी यात्रा की । एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया ॥ ६३ ॥ कृष्णोपासक वोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था । “मैंने सीताका परित्याग कर दिया है” ऐसा संसारको दिखलाते हुए भी बालमीकिके आध्रमपर जाकर चूपकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये । पिण्याक और इंगुदीके फलसे अपने पिताको पिण्डान दिया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जब दण्डकारण्यमें इघर-उघर धूम रहे थे, तब भी इन्हीं फलोंसे पिताका श्राद्ध किया था । ऐरावत द्वारा भोगे हुए मंचको उठाकर पृथ्वीतलमें ले आये ॥ ६६ ॥ अश्वत्थ काटनेके अपराधपर रामने एक महायज्ञ किया । मन्त्रियोंको शेष आयुकी पूर्तिके निमित्त अपने बड़े बेटेको यमराजसे लड़ा दिया और केवल फूल सूंब लेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला । तृणासुर आदि देव्योंको मारकर गोवर्धन गिरिको ऊंगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें ताढ़का तथा मारीचादि कितने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक वोला—हमारे प्रभु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ताः कृतार्थाः स्ववराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । ताँबूलोच्छिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तिः ॥७३॥  
पीत्वा यस्यैव वरतो ब्रजे सा राधिका त्वभूत । अतो मे राघवो धन्यो यस्यैका दयिताऽत्र हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पत्न्यश्च सहस्राणि हि षोडश । साष्ठोचरशतान्यत्रोद्वाहिताश्च विधानतः ॥७५॥  
रामोपासक उवाच

मम रामस्त्ररूपेण सर्वस्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥  
कृष्णेन रतिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

कृष्णोपासक उवाच

गजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो द्विज ॥७७॥  
रामोपासक उवाच

मम रामेण नागेन्द्रियुरथापदो इतः ।  
कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खंडिता त्वभूत ॥७८॥  
रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खंडिता जाह्नवी त्वभूत ।  
कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादपः ॥७९॥  
रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतौ सुरपादपौ ।  
कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वगुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥  
सुजीविताः समानीताः सप्त ताभ्यां निवेदिताः ।

द्रजको समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधानामवाली उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवको भी लजाती थी ॥ ७१ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्य-से देवपत्नियोंको मोहित किया था । वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं । किन्तु उन्हें रामने अपनी माताके समान माना और बरदान देकर कृतार्थ किया । वे ही जन्मान्तरमें गोपिकायें हुईं । उस समय रामचन्द्रके मुखते ताम्बूलके निकाले हुए पीणको पीनेवाली दासी दूसरे जन्ममें राधा हुईं । इससे मेरे रामचन्द्र घन्य हैं । क्योंकि वे एकपत्नीवतघारी हैं ॥ ७२—७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विविवत् विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे संसारकी समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रीके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे । क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपोंकी नारियोंपर मोहिनी ढाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए । कृष्णोपासकने कहा—हे द्विज ! हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबल्यापीढ हाथीको मार ढाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टापद नामक राक्षसको खेल-खेलमें मार ढाला था । कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा खण्डित कर दी थी ॥ ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा खण्डित हो गयी थी । कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेते सत् मत्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमंत्रो जीवितः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरौ ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेश्याः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापश्च जनान्संदर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा गोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापश्च जनान् सन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि वहून्यज्ञ कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मित्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मित्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बैठे-बैठे स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा पारिजातको मौगा लिया था । कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको यमपुरीसे लाये और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात मनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके कथनानुसार विना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सीताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहने लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी माँग पूरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी । इससे हमारे रामका प्रताप सब संसार देख चुका है ॥ ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी लंकासे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साय मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदामाको सुवर्णकी मगरी दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विभीषणको सोनेकी लंका दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूर्यग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-

रामोपासक उदाच

मूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य बचश्चैकं सत्यमेव च नान्यथा । ते कृष्णस्य हनेशानि बचनान्यनृतानि हि ॥८९॥  
 रामस्य मे शरस्त्वेकः शत्रुनिर्दलनक्षमः । विफलस्तव कृष्णस्य वहवोऽरिपु गार्गणाः ॥९०॥  
 एका स्त्री मम रामस्य ते कृष्णस्य वहुस्त्रियः । पत्न्याःशयां विनां नान्या शशादा रामस्य वै मम ॥९१॥  
 स्त्रीणां शशादा विना वह्नीःशयाः कृष्णस्य ते द्विज । रामस्थितिर्मध्यदेशे साकेते सरयुतटे ॥९२॥  
 अब्धेस्तटे पथिमे ते स्थितिः कृष्णस्य वै तव । वंशुव्रयं मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽग्रजस्तव ॥९३॥  
 गौमणिः पुष्पकं वृक्षी कटके मुनिनाऽप्निते । एरावतद्वालोऽभृतवृत्तद्वन्द्वो गजोऽपि च ॥९४॥  
 एतानि मम रामस्य नव रत्नानि संति हि । मणिद्वयं पारिजानस्त्विति रत्नत्रयं तव ॥९५॥  
 कृष्णस्य संति भो विप्रत्वं तं स्त्रीपिकथं वृथा । गम्भीरेश्वरो रामो मम पृथ्वीशवंदितः ॥९६॥  
 ईशत्वं जगदीशत्वं सममेव द्वयं स्मृतम् । अतो न मम रामेष तुल्यं कृष्णं विचितय ॥९७॥  
 यस्य चापं हि कोदण्ड यस्याक्षय्याः पत्निणः । विप्रेष्टपूरणं यस्य व्रतं नित्य द्विजोचम ॥९८॥  
 यस्य सिंहासनं छत्रं व्यजनं चामरद्वयम् । यस्य यान पुष्पकं तत्सुपुत्रो तौ पितुः समौ ॥९९॥  
 अद्यापि पालयते यस्य दत्तं दानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरस्यैव राज्यं रामस्य मे नृपैः ॥१००॥  
 तव कृष्णेन कि दत्तं वद यद्वर्ततेऽधुना । करोत्यहर्निंशं शंभुश्चापि मे गमचित्तनम् ॥१०१॥  
 तारक मे रामनाम काश्यां शंभुर्जनान्सदा । मृत्यून्मुखांस्तारणार्थं द्विजोपदिशति स्वयम् ॥१०२॥  
 अतएव जनाँश्चापि सर्वत्र मरणोन्मुखान् । स्वीयान्मुहुः शिक्षयंति ध्येयो रामोऽधुना त्विति ॥१०३॥  
 तथा प्राणिविमोक्षार्थं सदा तच्छवधाहकः । रामरामेति रामेति नाम भूम्यामुदीर्यते ॥१०४॥  
 यश्चाममहिमा चोक्तं तं स्त्रीम्यधुना मुहुः । वाल्मीकिनाऽप्यत एव पूर्वं तच्छरितं कृतम् ॥१०५॥

पासकने कहा कि हमारे रामने भी तो कुरुक्षेत्रमें रत्नान किया था ॥८८॥ मेरे राम सदा सत्य बचन बोलते थे, किन्तु तुम्हारे कृष्णकी वहुत-सी वातें ज़डी हो गयी थीं ॥८९॥ मेरे रामका एक वाण शत्रुको मारनेके लिए पर्याप्त होता है, किन्तु तुम्हारे कृष्णके न जाने कितने बाण विफल हो जूँके हैं ॥९०॥ हमारे रामकी केवल एक स्त्री सीता है और तुम्हारे कृष्णकी वहुत सी स्त्रियाँ हैं । पत्नीकां शश्याकं अतिरिक्त हमारे रामकी कोई और शश्या नहीं है, लेकिन तुम्हारे कृष्णका वहुत-सी ऐसी शश्यायें हैं, जो दिना स्त्रीके हैं । हमारे राम सरयूके तटपर अयोध्यामें रहते हैं ॥९१॥९२॥ इसके विपरीत तुम्हारे कृष्ण पश्चिमी समुद्रके किनारे रहते हैं । मेरे रामके तीन भाई हैं और तुम्हारे कृष्णके केवल एक भाई है ॥९३॥ हमारे रामके पास कामधेनु गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात, मुनि अगस्त्य द्वारा दिये हुए दो कङ्कण, ऐरावत वंशमें उत्पन्न चतुर्दश्ता हायी ये तीन रत्न सदा विद्यमान रहते हैं । हे विप्र ! तुम्हारे कृष्णके पास दो मणि तथा परिजात बस ये ही तीन रत्न हैं ॥९४॥९५॥ तब नाहक ऐसे कृष्णको बयों व्यथं स्तुति करते हो ? रामचन्द्रजी सात द्वोपोके स्वामी एवं राजाओंसे भा वन्दित है ॥९६॥ राम ईश भा है और जगदाश भा, उनमें दोनों विशेषतायें हैं । तब मेरे रामके वरावर कृष्णको मत मानो । उतके पास घनुप है और अक्षय सायक हैं । वे ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करनेको सदा तत्पर रहते हैं ॥९७॥९८॥ जिनके पास सिंहासन है, दो चमर एवं छत्र हैं, जिनके पुष्पक विमानकी सवारी है और पिताके सदृश गुणवाले दो बेटे हैं । जिनका दान दिया हुआ रामनाथपुर आज भी विद्यमान है । तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे कृष्णने बया चीज दानमें दो हैं, जो आजतक विद्यमान है । साक्षात् जिवजो भी सदा मेरे रामका भजन करते हैं ॥९९-१०१॥ काशीमें मरणोन्मुख प्राणियोंको शिवजी घूम-घूमकर रथमतारक मंत्र सुनाया करते हैं । इसीलिए संसारके लोग मरते समय कहते हैं—“रामका ध्यान करो भैया, रामका भजन करो” ॥१०२॥१०३॥ मृत प्राणोंकी मोक्षप्राप्तिके निमित्त ही शवको उठानेवाले लोग भी रामनामका उच्चारण करते चलते हैं ॥१०४॥ जिनके नामकी ऐसी महिमा है, मैं उन रामकी स्तुति करता हूँ । इसीस्त्रिय

शतकोटिमितं श्रेष्ठं यस्मिन् रामायणे द्विज । कृष्णादीनां चरित्राणि संति ह्यतर्गतानि हि ॥१०६॥  
श्रीरामदास उवाच

एवं तयोर्विवदते द्विजवोश्च परस्परम् । चभूताकाशजा आणो तां तां सर्वे च शुश्रुतः ॥१०७॥  
रामस्याग्रं स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेत न । इति तां खेचरीं वाणीं श्रत्वा सर्वे सभासदः ॥१०८॥  
चक्रुज्जेयस्वनान्हत्तर्वाद्यंति स्म तालिकाः । तं रामोपासकं सर्वे वैवर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥  
निर्जरा अपि ते सर्वे विमानस्था मुदान्विताः । तं रामोपासकं प्रीत्या वैवर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥  
तदा कृष्णोपासकः स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपासकं नत्या प्रार्थयामास वै मुहुः ॥१११॥  
तदा रामोपासकोऽपि तं नत्वाऽऽलिङ्गं वै दृढम् । उवाच भग्नु वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दयूनोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवमूर्तुः ।

तथा उप्ययोध्यापुरपालवाले सलक्षणे धावति मे मनीषा ॥११३॥

अतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निंदनं कृतम् । तवेष्यया द्विजश्रेष्ठ वेद्विती द्वां समाविति ॥११४॥  
राम एवात्र कृष्णश्च कृष्ण एवात्र राघवः । उभयोर्नान्तरं विप्रं कौतुकाच्च मयेरितम् ॥११५॥

मानयत्यंतरं यो ना तयोः श्रीरामकृष्णयोः ।

परस्परं स निरये पतिष्यति न संशयः । त्वद्वर्वपरिहाराथ खेचर्या राघवः स्तुतः ॥११६॥  
हन्त्युक्त्वा सांत्वयित्वा तं रामः कृष्णाहृयं द्विजम् । तृणीं तस्या सशामध्ये सभासद्विः सुपूजितः ॥१७॥  
ततस्ती माघमासांते स्वं स्वं देशं प्रजग्मतुः । तस्माच्छिष्यावतारेषु न राममदृशः परः ॥११८॥  
अतस्तं भज भावेन तस्यैव चरितं भृण । यदन्यदृणयाम्यग्रं महामंगलकारकम् ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वोर्ध्वे  
श्रीरामकृष्णोपासकयोविवादो नाम लृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले बालमालिने रामायण बनाया था ॥ १०५ ॥ जिसकी शटोंकसंख्या सौ करोड़ है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उसमें समा जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय वे दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई—“रामके आगे स्तुति करनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है” । उसे उन दोनों तथा अन्य लोगोंने सुना । इस प्रकारकी आकाशवाणी नुनकर वहाँ बैठे हुए समस्त सभासद रामकी जयजयकार करते हुए तालियाँ बजाने लगे और उस रामोपासकपर पुष्पवृष्टि की ॥ १०७-१०९ ॥ इतना ही नहीं, देवतागण भी विमानोंपर आ-आकर हृपंसे रामोपासकपर फूल बरसाने लगे । तब लज्जासे नतमस्तक होकर कृष्णोपासकने रामोपासको प्रणाम करके दाढ़वार दिनती की ॥ ११० ॥ १११ ॥ रामोपासकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा—॥ ११२ ॥ है द्विजांत्तम । न कृष्णसे पृथक् राम हैं, न रामसे पृथक् कृष्ण हैं । फिर भी अयोध्या नगरीके पालक रामणमहित बालजपवारों रामको हो भजनेकी मेरी इच्छा हाती है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अभी मैने रामकी स्तुति की और कृष्णकी निन्दा । यह सब केवल तुम्हारी ईश्वर्से कहा-सुनी हुई । नहीं तो वास्तवमें मैं दोनोंको समान समझता हूँ ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण हीं राम है । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैने जो कुछ कहा, वह सब कोतुकमात्र था ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य राम और कृष्णमें अन्तर मानता है, उसे नरकगामी होना पड़ेगा । इसमें कोई संशय नहीं है । केवल तुम्हारा गर्व दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीने भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजको सान्त्वना देकर सभासदोंसे पूजित होता हुआ राम विप्र सभामें चुपचाप बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास व्यतीत हो जानेपर मैं दोनों अपने-अपने देशको लौट गये । इसोलिये मैं कहता हूँ—हे शिष्य ! समस्त अवतारोंमें रामावतारके सदृश कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और उनकी वह कथा सुनो, जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे प० रामनेजपाण्डेयविरचितं'ज्योत्स्ना'भाषाटीकात्तमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वद्विं तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( रामका सौ ख्रियोंको वगदान इवं मूलकासुरोपाल्यान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य सभासंस्थो जनैवृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मंडपे काकमुत्तमम् ॥ १ ॥  
 उभयोनेत्रयोरेकनेत्रमृतिसमन्वितम् । अतिदीनं कुशं व्यग्रदृष्टिं दीर्घस्वरं चलन् ॥ २ ॥  
 मुहुर्मुहुश्च पश्यन्तमात्मानं शब्दपूर्वकम् । तं दृष्ट्वा नत्कृपाविष्टः स्मृत्वा क्रोधं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥  
 उवाच काकं श्रीरामः सुखमामच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावन्लयाश्च मंडपाद् ॥ ४ ॥  
 शीघ्रमुडीय काकस्तु रामाये सदसि स्थितः । रामं पश्यन्दीर्घरवं स चकार मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥  
 तदा तं राघवः प्राह तत्कृपाविष्टमानसः । नेत्रं विना वरानन्यान् काक याचस्व मां प्रति ॥ ६ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहावनीपतिम् कृपावलोकनं राम यथास्तु तव सर्वदा ॥ ७ ॥  
 किं चरैरितरैर्व्यर्थैरिहैव सुखदायकः । तत्काकवचनं श्रुत्वा गमस्तं वाक्यमवृतीद् ॥ ८ ॥  
 द्वीपान्तरेषु यदृत्तं भविष्यं भृत्येव च । दर्शनानं च स्कलं त्वन्नेत्रविषयेऽस्तु तत् ॥ ९ ॥  
 भाविकायाणि सर्वाणि काक त्वं वेति वद्यता । जनाः यद्यन्तु ते गत्या शकुनांश्च निरतरम् ॥ १० ॥  
 स्थिरस्त्वे स्थिरकायाणि गते त्वद्यदिवत्तदर्प् । भविष्यन्ति हि कायाणि तराणां शकुनं त्विति ॥ ११ ॥  
 पश्यन्तु सकला भूमी जनाः कायेप्रसिद्ये । ग्रामे गृहप्रवेशे ते वामभागे न चेद्गतिः ॥ १२ ॥  
 गमने दक्षिणे भागे यदि ते गमनं तदा । लोकानामस्तु शकुनं महामंगलकारकम् ॥ १३ ॥  
 प्रेतदशाहृषिंडाय यदि स्पर्शो भवेन्न ते । याऽस्तु तदिं गतिस्तेषां प्रेतानां मम वाक्यतः ॥ १४ ॥  
 अन्तकाले मानवस्य वाञ्छितं नैव पूर्णतम् । प्रेतदशाहृषिंडस्यास्पर्शज्जानंतु तत्त्वराः ॥ १५ ॥  
 प्रेतस्य वंशजः कविद्यद्यतोत्त्वं वाञ्छितम् । तत्त्वं स्पर्शाद्विदित्वा तु स यदा पूर्यिष्यति ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—हे शिष्य ! एक दिन वहूंतेरे मनुष्योंसे जिरे हुए रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । तभी अंगूरका दत्तात्रीग बैठ एक कोएको देखा कि वह एक ही देवता से दानों नेत्रोंका काम ले रहा है । कोआजपनी आकृतिसे अतिदीन, व्यग्रदृष्टि, ऊने स्वरवाला और चब्बल दीखता है ॥ १ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि वह चार-दाह मेरी ओर देख रहा है और काँव-काँव करके बोलता भी जाता है । उसकी यह दशा देखकर रामक हृदयमें ददा आयो और अपने पट्टले किये हुए कोपका स्मरण करके कोएसे बोले—हे काक ! यहाँ मेरे पास आओ । यह सुनकर कोआ उत्त द्राक्षावलोक्ये उड़ा और रामके आगे आकर बैठ गया । सभागं वह रामका देखता हुआ जार-जोरसे चिल्लाने लगा ॥ ३-५ ॥ रामने कोएसे कहा—तू अपने नेत्रोंके चिवाय जो कुछ भी वर मानिना चाहे, मान ले ॥ ६ ॥ इस प्रकारको वातें सुनकर पृथ्वीपति रामसे कोआकहने लगा—हे राम ! मेरे ऊपर इसी तरह सदा आपकी कृपाहृष्टि बनी रहे ॥ ७ ॥ कबल इस लोकमें सुखदेनेवाले अन्य वरदानोंको लेकर मे क्या करूँगा ॥ ८ ॥ कोएको वात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी द्वीपान्तरमें भा हानवाला भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब वातें तुम्हारा आखोके सामने रहेंगी ॥ ९ ॥ होनेवाले अथवा भविष्यके सब कायांको तुम मेरे वरदानसे जान लोगे । मनुष्य कहीं जाते समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करेग ॥ १० ॥ जब तुम बैठे रहोगे, तब देखनेवाले पविकका काम रुक जायगा और तुम चलते रहोगे तो उसका कार्य शोष्य पूर्ण हो जायगा । इस प्रकार लोग तुम्हारा शकुन देखेंगे ॥ ११ ॥ ग्रामप्रवेश या गृहप्रवेशके समय तुम जिसकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम मञ्जलकारक शकुन होगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रेतके दशाहृषिंडको जब तक तुम नहीं छू लोगे, तब तक उस प्रेतकी सद्गति कदापि नहीं होगी ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशाहृषिंडको नहीं छुओगे तो उसके घरवाले लोग समझेंगे कि अभी प्रेतकी इच्छा पूरी नहीं हुई है । प्रेतका कोई वंशज, तुम जिन-जिन चीजोंको बहीं छुओगे,

तदा पिंडं स्पृशस्य त्वं नोचेन्मा स्पृश सर्वथा । अन्यमेकं वरं दग्धि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥  
 यत् किञ्चिलेखर्कंश विस्मृतं दत्र मद्वरात् । कुर्वन्तु पदचिह्नं ते सर्वत्र जगतीतले ॥१८॥  
 त्वत्पदं पुस्तके दृष्टा जवा जानेतु विस्मृतम् । लिखितं पार्श्वभागेषु लेखकैः पुस्तकस्य यत् ॥१९॥  
 हति दत्ता वरान् रामस्तृणीमादीत्स्मताननः । काकोऽपि तुष्टः श्रीरामं नत्वोहीय मतस्तदा ॥२०॥  
 एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः । एकदा राघवो रात्रौ पारिजाततरोरथः ॥२१॥  
 निद्रितो हेमपयंके जानक्याऽस्पृशया विना । एतस्मिन्नंतरे तस्यां रात्रौ ते रामरक्षकाः ॥२२॥  
 द्वारपाश्रापि दास्यश्च दासाद्याः सकलामतदा । ययुर्वं कीर्तनं श्रोतुं कापि रामस्य भक्तिः ॥२३॥  
 दृष्टा तं समयं वेगात्कामवाणप्रपीडितः । पौरणां शतनार्यस्ता वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२४॥  
 तारुण्यमदसंभ्रांता हेमकुम्भपयोधराः । चंद्राननाः शुक्रघाणाः कमलांघशो मृगीदशः ॥२५॥  
 पातकोशेयवसना रुक्मनुपूरनिःस्वनाः ।

परस्परं ताः संमत्य प्रथमे चयमि स्थिताः । ययुः सारीः पुष्पके श्रीराघवं रहसि स्थितम् ॥२६॥  
 काचित्तं वीजयामास श्रीरामं व्यजनेन हि । काचिदधार रामर्थं स्वकरे पुष्पमालिकाम् ॥२७॥  
 काचित्तांबूलपात्रं च काचित्तं बूलस्य सा । पात्रं निष्ठीवनस्यान्या सा दधार विलासिनी ॥२८॥  
 दधार चन्दसं काचित्काचिद्विद्यान्नप्रत्यक्षम् । काचित्पक्तननैवेश्वं काचिद्रंभाफलादिकम् ॥२९॥  
 एतस्मिन्नंतरे काचित्पादसंपाइतं यनैः । रामस्य कर्तुमुद्युक्ता तत्पदं पाणिनाऽस्पृशद् ॥३०॥  
 तेन रामः ग्रवुद्गोऽभूत्ममृत्याऽपृश्यते विदेहजाप् । केन मे स्पर्शितः पादशक्तिश्चेत्युपाविशन् ॥३१॥  
 तावद्दर्शं श्रोगातः शतशब्दं पूरः स्थिताः । पौरणां प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमंडिताः ॥३२॥  
 रामं सम्पूर्णितं दृष्टा प्रणेषुस्तास्तदा भुवि । स्वशिरांसि निधायाथ तुष्टुविंविश्रोक्तिभिः ॥३३॥

उनको अधूरी समझकर जब पूर्ण करेगा, तब जाकार उस प्रेतको सद्गति प्राप्त होगी । तुम भी उसके दण्डाहृषिण्डको तभी छूना, जब उनका प्रत्येक अंग पूर्ण हो जाय । तुम्हें दूसरा वरदान यह भी देता हूँ कि जो लेखक लिखते समय कुछ भूल जायेंगे, वे वहाँपर तुम्हारे पैरका चिह्न बना दिया करेंगे ॥१५-१६॥  
 पुस्तकके पार्श्वभागों तुन्हारे पैरका चिह्न देखा रखलोग समझ जायेंगे कि वहाँपर कुछ भूल है ॥१६॥ इस प्रकार उस कोएको वरदान देकर रामचन्द्रजी मुस्कते हुए चुप हो गये । कौआ भी भगवान्को प्रणाम करके वहाँसे उड़ गया ॥२०॥ इस तरह रामचन्द्रजी विविध प्रकारकी लीलाएँ किया करते थे । एक दिन रात्रिमें जितने भी द्वारपाल-दास आदि थे, वे सब भक्तिवश कहीं रामकीत्तं सुननेके लिए चले गये थे ॥२१-२३॥  
 उसी समय मौका पाकर सौ नारियाँ विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारण किये कामके बाणसे पोडित होकर रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥२४॥ वे सब तहणाईके मदसे भरी थीं, सुवर्णंकुम्भके समान उनके स्तन थे, चन्द्रमाकी भाँति उनका मुल था, तोतेकी ठोरके समान उनकी नासिका थी, कमलकी नाई उनके पाँव थे और मृगियोंके समान उनके तेत्र थे ॥२५॥ वे सब पीले दस्त धारण किये थीं । सोनेके नूपुर रुठबुन करके बोल रहे थे । उनकी उमर भी बहुत थोड़ी थी । वे सब पुष्पकों समीप एकान्तमें सोये हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥२६॥ वही जाकर कोई रामकी दंडा झलने लगी और कोई अपने हाथम कूलोंकी माला लेकर उनके उठनेकी प्रतीक्षा करने लगी । किसीने पानदान लिया और किसीने जलसे भरी ज्ञारी ली । किसीने पीणदान उठाया, किसी दूसरी विलासिनीने चन्द्रत लिया, किसीने दिव्य पक्वान और कोई नाना प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगी ॥२७-२८॥ इसी बीचमें एक स्त्रीने रामचन्द्रजीका पैर दबानेकी इच्छासे घोरे-घोरे उनका पैर उठाया ॥२९॥ इससे वे चौक पढ़े और सोचने लगे कि सीता तो इस समय अस्पृश्य है, तब दह कौन पैर उठा रहा है । यह विचार करते-करते चकित भावसे वे उठ बढ़े ॥३१॥ तब अपने सामने उपस्थित उन सौ नारियोंपर उनकी इष्ट पहड़ी । तब रामने

ताः सर्वा राघवः प्राह किमर्थमिह पुष्पके । रात्रौ समग्रताः सर्वास्तथ्यं मां कथ्यतां खियः ॥३४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा विलज्जन्त्यः पुरस्त्रियः । अवाङ्गुह्याः स्त्रियोऽस्त्रूणीयेव समंततः ॥३५॥  
 तासु काचित्तदा रामं गतलज्जाऽन्नीयेव समंततः । तर्हि जानिति प्रभवो यदर्थमागता वथम् ॥३६॥  
 उपेक्षणीया नो राम वर्य सर्वाः खियस्त्वया । इति तापामभिप्राय ज्ञात्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥  
 अन्नीयेव समंततः वाक्यं शृणुध्वं प्रमदोक्त्याः । एकपत्नीयतं मेऽस्ति मारुतुल्याः स्त्रियो मम ॥३८॥  
 हतराः सकलाः सीतारहिताश्वेष्ट जन्मनि । गच्छध्वं निजगेहानि मा भाऽधर्मोऽस्तु मयि नुपे ॥३९॥  
 राज्यं शासति भो नार्यः क्षमितं व्रोऽपराधितम् । इति ता रामवाम्बाणैः कामवाणप्रपीडिताः ॥४०॥  
 ताडिताश्वं विशेषेण निषेतुमूर्छिता शुभि । पतितास्ता निरीक्ष्याथ सर्वा रामोऽतिविहृलः ॥४१॥  
 ता उवाच पुनः शीघ्र सुषुवास्यैः कृपान्वितः । शृणुध्वं मे वचो नार्यः सकृदत्या मथा सह ॥४२॥  
 युष्माकं न भवेत्तुष्टिवृत्तमङ्गोऽपि मे भवेत् । अतः शृणुत मे वाक्यं यागे पूर्वं मयाऽपिंतः ॥४३॥  
 गुरवे रुक्मजाश्वैः सीतायाः शतमूर्तयः । ताशां फलेन युष्माभिर्दीपिरे क्राडनं चिरम् ॥४४॥  
 करिष्यामि न मंदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानुपाणां युष्माभिर्भवध्वं योपितस्तदा ॥४५॥  
 भौमासुरश्च युष्माक संहरिष्यति वै यदा । तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ॥४६॥  
 करिष्यामि विवाहाश्वं युष्माभिर्दीरकापुरि । खीपोऽशसहस्राणामूर्ध्वतोऽन्याः शतं त्वहप् ॥४७॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टास्ताः पुरयोपितः । नत्वा रामं यथुः सर्वास्तूणीं स्वं स्वं गृहं गति ॥४८॥  
 ततः स्त्रीस्ता विसञ्जर्यसीरामो दासीः समाहयत् । दृष्टा ज्ञापवि नो दासीं गम्भो दासांस्तदाह्यत् ॥४९॥  
 तेष्वप्येकं न दृष्टा स द्वारपालान्समाह्यत् । तानन्प्यदृष्टा रामस्तु रक्षकांश्च समाह्यत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियाँ सुवर्णके अलङ्कार पहने हैं। भगवान् रामको उठा हुआ देखकर उन्होंने प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथ्वीपर रखकर विविध प्रकारसे भगवान् की स्तुति करने लगीं ॥३२॥ ३३॥ उनसे रामने पूछा कि तुम सब यहाँ इतनो रात्रिमें किस लिए आयी हो ? मुझे सच-सच बतला दो ॥३४॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियाँ लज्जित होती हुई माया नीचे करके चुपचाप छड़ी रह गयीं ॥३५॥ किन्तु उनमें से एकने निलंज छोड़कर कहा—हे प्रभो ! आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिस लिए आया हैं, आप वह सब जानते हैं ॥३६॥ हे राम ! अब आप हमारी उपेक्षा न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका अभिप्राय सुमझ गये और मीठी बातोंमें समझाते हुए कहने लगे—हे सुन्दरियों ! मैं एकपत्नीवतधारी हूँ । मेरे लिए इस जन्ममें सीताके सिवाय संसारकी सब नारियाँ माताके समान हैं ॥३७॥ ३८॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव । मैं राजा हूँ । मेरे ऊपर तुम सब पाप न लादो ॥३९॥ जब तक मैं प्रजाका शासक हूँ, तबतक ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता । जाओ, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया । यह सुना तो कामवाणसे पीडित वे स्त्रियाँ रामके वाक्यरूपी बाणोंसे बिढ़ और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं । उनको इस प्रकार गिरी देखकर रामचन्द्रजी बहुत विहृल हो गये ॥४०॥ ४१॥ वे कृपापूर्वक उनसे कहने लगे—हे नारियों ! मैं तुम्हारा मनोभाव जानता हूँ, किन्तु केवल एक वारकी रतिसे तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भरेगी और मेरा व्रत भी भंग हो जायगा । इसलिए मेरी बात सुनो—आजसे बहुत दिनों पहले यज्ञमें मैंने सीताकी सौ सुवर्णमयी मूर्तियाँ दान दी हैं । उन्हींके फलसे द्वापरमें मैं कृष्ण होकर बहुत दिनोंतक तुम सबोंके साथ क्रोड़ा करूँगा ॥४२-४४॥ तुम सब उस समय अनेक राजाओंको पुत्रियाँ होकर जन्म लोगी । जब भौमासुर तुम सबको चुरा ले जायगा, तब मैं वहाँ पहुँचकर उसे मारूँगा और तुम्हें उससे छुड़ाऊँगा । तुम सबका विवाह द्वारका-पुरीमें होगा । उस समय तुम्हारी संख्या सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगी और मैं मैं ही रहूँगा ॥४५-४७॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया और चुपचाप अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन स्त्रियोंको विदा करके रामचन्द्रजीने दासियोंको बुलाया, किन्तु

तेष्वप्येकं न दृष्टा स राघवश्चातिविस्मितः । विमानाद्वालभारुद्य सौमित्रिं वै समाहृयत् ॥५१॥  
 उमिला रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा तं चालयत्पतिम् । उमिलाचालनाच्छोऽप्रबुद्धोऽभूतस लक्ष्मणः ॥५२॥  
 रामवाक्यं सोऽपि श्रुत्वा रतिशालाच्छहिर्यथौ । दत्ता प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥  
 एतस्मिन्नंतरे रामो रोदनं नगराद्रहिः । शुश्राव स्त्रीकृतं घोरं किमिदं चेति विस्मितः ॥५४॥  
 ततो दृष्टा स सौमित्रिं सर्वं वृत्तं न्यवेदेयत् । लक्ष्मणो रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा दूतान्निजांस्तदा ॥५५॥  
 प्रेष्य दूतान्कीर्तनस्थानादाहृयामास वेगतः । रामदूतास्तदोचुभ्यान् कथं श्रारामकीर्तनम् ॥५६॥  
 असमाप्त विहायाद्य गन्तव्यं स्वामिनं प्रति । तेष्वेव केचिदृचुस्ते पालनीया तु सेवकः ॥५७॥  
 प्रभोरात्राऽद्य चास्माभिनोचेनः पातक स्पृशेत् । केचिदृचुरिदं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥  
 स्वाम्याज्ञाभंगदोषदं कथं त्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदृचुः कीर्तनस्थानश्रुत्वाऽस्मान्स सुखी भवेत् ॥५९॥  
 इति संदिग्धचित्तास्ते न तदा राघवं यमुः । ततो लक्ष्मणदूतास्ते रामं वृत्तं न्यवेदेयन् ॥६०॥  
 ततः किंचित् क्रोधयुक्तः सौमित्रिं प्राह राघवः । भत्कीर्तनसमाप्तकान्नाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥  
 तथाप्येतम् योग्यं हि किंचिच्छिक्षां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः श्रुत्वा चहिः प्रभुः ॥६२॥  
 विमानं प्राह गच्छाद्य चहिः पुर्याः स्त्रियं प्रति । तथेति रामवाक्येन ययौ तन्नगराद्रहिः ॥६३॥  
 यत्र साऽतिविलाप स्त्री करोति सरयूतटे । तामजननिभां नारीं रुदतीं राघवोऽव्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदस्वाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् । इति रामवचः श्रुत्वा सा रामं वाक्यमववीत् ॥६५॥  
 चिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन । अद्य श्रुतं त्वया राम किंचित्पुण्यचयान्मुनेः ॥६६॥

वहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी । तब सेवकोंको बुलाया । उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । तब पहरेदारोंको पुकारा, कितु उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और विमानके ऊपरवाली धैठारीसे लक्ष्मणको पुकारा । रामचन्द्रकी आवाज उमिलाको सुनायी दी और उसने तुरन्त लक्ष्मणको जगाया । जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आवाज सुनी और तत्काल उनकी बातका प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥४८-५३॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना । “हे, यह क्या है !” यह कहकर वे बड़े विस्मित हुए ॥५४॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब बृत्तांत सुनाया । लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था । लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूतोंसे कहा—चलो, रामचन्द्रजी कबसे तुम सबको बुला रहे हैं । उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए अधूरा छोड़कर हम सब केसे आयें । उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥५५-५७॥ यदि उनकी आज्ञा न मानेंगे तो हमको पातक लगेगा । उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है । अब इसको छोड़कर कहाँ जायेंगे ॥५८॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कीर्तनमें आया सुनेंगे तो प्रसन्न होंगे ॥५९॥ इस प्रकार असमञ्जसमें पढ़कर वे लोग रामके पास नहीं आये । इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया ॥६०॥ तब किंचित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मम सेवकोंको दण्ड नहीं दे सकता ॥६१॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ । इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥६२॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है, तुम उसके पास चलो । ‘बहुत अचला’ कहकर विमान चल पड़ा और सरयूके तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी । अञ्जनके समान उस काली-कलूटी स्त्रीको देखकर रामने पूछा—॥६३॥ ६४॥ तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम कौन हो और वयों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा—॥६५॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्रानाम्नी त्वहं प्रभो । दत्तं तेन मम स्थानं कुम्भकण्ठे चिरं सुखम् ॥६७॥  
 यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो रणे । ततो नष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥  
 तेन त्वां प्रेषिता राम ततः प्राप्ता त्विमां पुरीम् । सीमाचारभवादस्यां नगर्यां न गतिर्मम ॥६९॥  
 अत्रैव सस्थिता राम शोचन्ती सरयूतटे । मे स्थानं वद रामाद्य यत्र स्थास्याम्यहं सुखम् ॥७०॥  
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा गधवो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥  
 निद्रे शृणु वचो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । पापात्मानो नरा भूम्यांये श्रृण्वन्ति हि कीर्तनम् ॥७२॥  
 पुराणश्रवणं वेदपठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत् कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥  
 तेषु त्वं तिष्ठ मद्भाक्याद्वानदेवनरेष्वपि । जडे वालेऽथ गुर्विष्ण्यामुपवासोत्तरोऽशिवे ॥७४॥  
 तथा विद्यार्थिनि थांते वाते जागरकामुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोहय मद्भरात् ॥७५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणनाम तम् । ययौ रामः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥  
 तदारम्य पुरोक्तेषु वासं निद्राऽकरोत्सुखम् । पापात्मनामतो निद्रा वाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥  
 तदारम्य सेवकेषु नरेष्वप्यवनीतले । निद्राग्रस्तेषु पुण्यात्मा सहस्रेष्वपि कश्चन ॥७८॥  
 शुश्राव तत्कीर्तनादि चकार पूजनादिकस् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि कथां सीतायश्चस्करीम् ॥७९॥

कुम्भकर्णस्य पुत्रस्य निकुम्भस्य च गुर्विणी । प्रभूत्यर्थं वितुर्गेहं गता द्वोपात्तरं प्रिया ॥८०॥  
 रावणादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौङ्ड्रकः । मायापुर्यां शतशिराः शतद्रयकरः पुरा ॥८१॥

हे प्रभो ! यह बहुत समयकी बात है कि जब ऋग्वाने मुझे बनाया था । मेरा नाम निद्रा है और ऋग्वाने मुख्यपर दया करके कुम्भकर्णकी देहमें रहनेका स्थान दिया । तब मैं वडे आनन्दसे उसमें रहने लगो ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला । मेरे रहनेका एक ज्ञापड़ा था, उसे भी आपने उजाड़ दिया । ऐसी अवस्थामें रोती-कल्पती हुई मैं ऋग्वाके पास गयी और उन्हें अपनी गाथा सुनायी । उन्होंने मुझे आपके पास भेजा और मैं इस जगह आ पहुंची । सीगारक्षकोंके भयसे इस नगरीमें बुसनेका साहस नहीं हुआ । इसलिए इसां सरयूके किनारे बेठी-बैठी विलाप किया करती हूं । हे राम ! अब आप कृपा करके मेरे रहनेके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहाँ मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रको पहले दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्सा आ गया और निद्रासे बोले—॥ ७१ ॥ हे निद्रे ! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूं । जो पापी मनुष्य मेरा कीर्तन सुनने जायें और वे पुराणश्रवण, वेदपाठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने लगें, उनमें तुम अपना डेरा जमाओ । जो लोग हीन प्रकृतिके हों, वे चाहे देखता हों, वा मनुष्य, जड़, बालक, गर्भिणी स्त्री, व्रतोत्तर भोजन करनेवाले, विद्यार्थी और थके हुए मनुष्योंमें तुम रहो । जो लोग ज्यादा जागते हों, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनेके लिए स्थान देता हूं । मेरे बरदानसे तुम हन्तीपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७५ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उसने भगवान्-को प्रणाम किया । उबर रामचन्द्र भी अपनी नगरीमें लौट आये और रातमर खूब अच्छी तरह सोये ॥ ७६ ॥ तभीसे उपर कहे हुए लोगोंमें निद्रा निवास करने लगी । इसीलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा सताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्राने सेवकोंपर अपना मोहजाल फैलाया । सहस्रों निद्रालु मनुष्योंमें कहीं एक मनुष्य भी मुश्किलसे ऐसा मिलेगा, जो शब्दण्कीर्तन आदि शुभ कर्म करनेवाला पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—अब मैं सीताके यशसे भरी एक दूसरी कथा सुना रहा हूं ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके बेटे निकुम्भकी गर्भिणी स्त्री बच्चा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्वीपमें हुमेंवाले अपने पिताके बर गयी थी ॥ ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण बैश समेत नष्ट हो

श्रोणानदीतटे चासीद्रावणः क्षीरसागरे । सहायातपौङ्कस्तस्योद्देजयित्वा विभीषणम् ॥८२॥  
 शताननेन वै साथं लंकाराज्यं चकार सः । ततो विभीषणो रामं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥८३॥  
 सीताविभीषणाभ्यां वै रामो लंकां ययौ द्रुतम् । निहत्य रावणं सीता युद्धे रामे जितेऽथ तम् ॥८४॥  
 विभीषणाद तां लंकां हत्वा तं पौष्ट्रकं ददौ । अर्थकदा सभासंस्थं रावणं स विभीषणः ॥८५॥  
 ययौ विषणः सचिवैश्वतुभिः ससुतः स्त्रिया । नत्वा रामं साश्रुनेत्रश्च॒सन् कपिताधरः ॥८६॥  
 उवाच सकलं वृत्तं लंकायाः प्रस्खलद्गिरा । राम राजीवपत्राक्ष त्राहि माँ शरणागतम् ॥८७॥  
 मूलक्षें कुम्भकणेन जातः पुत्रः पुरा बने । दूतैस्त्यक्तो दृक्षमूले चालकस्तत्र वर्धितः ॥८८॥  
 मधिकाभिः स्ववमनजलस्य विंदुभिर्मुद्दुः । सोऽधुना तरुणः श्रुत्वा त्वत्कृतं स्वकुलक्षयम् ॥८९॥  
 तपसा तोष्य ब्रह्माण तद्वरेणातिगर्वितः । पातालस्थै राक्षसैश्च लंकायां समुपागतः ॥९०॥  
 मया तेन तु पण्मासं कृतं युद्धं महत्तमम् । माँ जित्वा स पूरीं यातस्तदाऽह सचिवैः स्त्रिया ॥९१॥  
 सपुत्रो गुप्तमार्गेण भूमिजेन पलायितः । शनैर्विवरमार्गेण लंकाया योजनोपरि ॥९२॥  
 रात्री बहिर्विनिर्गत्य विवाराच्चां समागतः । मूलक्षें यः समृत्यवस्तरमूले विवर्द्धितः ॥९३॥  
 मूलकासुरनाम्नाऽतः परां रुथातिं गतोऽधुना । संगरे तेन मामुक्तमादौ त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥  
 हत्वा लकापुरीं प्राप्य ततो गच्छामि राघवम् । भत्पिता निहतो येन निहतं सकलं कुलम् ॥९५॥  
 तं राम संगरे हत्त्वाऽनुष्टुपं गच्छाम्यहं पितुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धं रघुनन्दन ॥९६॥  
 इदानीं यद्दितं चाग्रं तत्कुरुम्ब रघूत्तम । तत्स्य सकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥  
 लक्षणं प्राद वेगेन पार्थिवान् जगतातले । स्वस्वराज्यस्थितान्सर्वान्दूरं राकारयाधुना ॥९८॥

गया तो उस गम्भीरे पौष्ट्रक नामका पुत्र जायमान हुआ ॥ ८१ ॥ श्रोणानदीके तटपर मायापुरी नामकी नगरी-में एक सौ सिरवाला रावण रहता था । उसके २०० भुजाये थीं । पौष्ट्रकने उस रावणकी सहायतासे विभीषण-को परास्त कर दिया और शतानन रावणके साथ लंकाका राज्य स्वर्यं करने लगा । उस समय विभीषण रामके पास गये और उन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ मिश्रकी उस दुःखभरी कहानीको सुनकर राम सीता और विभीषणके साथ लंकाको चल दिये । वहाँ पहुंचकर उन्होंने उस सौ मुँहवाले रावण तथा पौष्ट्रको मारा और फिर विभीषणको लंकाके सिहासनपर विठालकर अयोध्या लौट आये । इसके बाद एक दिन राम अपनी सभामें बैठे थे । तब अपनी स्त्री, पुत्र तथा मंत्रियोंके साथ विषण भावसे बैठे हुए विभीषणने कहा—हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष ! मैं आपकी शरणमें हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ॥ ८४-८५ ॥ बहुत दिनों-की बात है, जब मूल नक्षत्रमें कुम्भकणके एक पुत्र हुआ था । कुम्भकणने दूतों द्वारा उस लड़केको जल्लमें छोड़वा दिया । वहाँ मधुमविस्थयोंने उसके मुँहमें मधुकी एक-एक दूँद टपकाकर उसकी रक्षा की । वह इस समय बढ़ा हुआ है । जब उसने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रामने भेरे पिता तथा कुदम्बियोंका नाश किया है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ तब उग्र तपस्या द्वारा उसने ब्रह्माको संतुष्ट करके वर प्राप्त कर लिया । वरके प्रभावसे गर्वित होकर पातालनिवासी राक्षसोंको सहायतासे उसने लड्डापर चढ़ाई कर दी । मैंने छः महीने तक उसके साथ घमासान युद्ध किया । अन्तमें उसने हमें परास्त करके लड्डापर अधिकार कर लिया । ऐसी अवस्थामें मैं आधी रातको अपने पुत्र, स्त्री एवं मंत्रियोंके साथ एक सुरज्जुके रास्तेसे भागा ॥ ९०-९२ ॥ एक योजन दूर भाग आनेपर छहर गया, जब रात्रि व्यतीत हो गयी । तब आगे बढ़ा और आपके पास आ पहुंचा । वह मूल नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृक्षोंके नीचे उसका पालन-पोषण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलकासुर कहते हैं । युद्ध करते-करते एक बार उसने मुझसे कहा था कि इस रणभूमिमें पहले तुझको मारकर लड्डापर अधिकार कर लेने-के बाद मैं उस रामके पास जाऊंगा, जिसने मेरे पिता तथा मेरे कुलका संहार किया है ॥ ९३-९५ ॥ संग्रामभूमिमें रामको मारकर मैं अपने पितृऋणसे उक्षण हो जाऊंगा । हे रघुनन्दन ! मैं जहूतक जानता हूँ, शीघ्र ही वह आप-से भी युद्ध करनेके लिए आयेगा ॥ ९६ ॥ ऐसी अवस्थामें आप जो उचित समझें सो करें । विभीषणका हाल

तथेति रामचनाहृतानाज्ञापयत्तदा । लक्षणस्तेऽपि वेगेन गत्वा दृताः समागताः ॥१०॥  
 प्रोचुः समायां श्रीरामं नृपाणां वचनानि ते । केचिन्नृपाः पालयन्ति तवाज्ञां रघुनन्दन ॥१००॥  
 केचिच्च पालयन्त्याज्ञां तव तत्कारणं शृणु । चंपिकायाः सुमन्याश्च स्वयवरसमुद्भवम् ॥१०१॥  
 दुःखं हृदयसंस्थं यत्तदद्यापि गतं न हि । यूकेतुशराधातभिन्नमर्मस्थलाः पुनः ॥१०२॥  
 स्मृत्वा मदनसुन्दर्यां दुःखं कांत्युद्भवं नृशः । आज्ञां न पालयन्त्यद्य तव राघव सत्प्रभो ॥१०३॥  
 पालिता यस्तवाज्ञा ते सुग्रीवाद्या नृपोत्तमाः । स्वस्वकोटिवल्लैर्युक्ताः समायाताः सहस्रशः ॥१०४॥  
 तदृदृतवचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । प्राह माणधातांस्ते स्पृहयन्ति नृपाधमाः ॥१०५॥  
 आदौ हृत्वा कौमुक्णिं तान्गच्छामि ततस्त्वद्वहम् । इत्युक्त्वा सुदिने रामः सेनया वंशुभिर्जवात् ॥१०६॥  
 मूलकासुरवातार्थमादौ पुर्या वहियेयौ । किंचित्सैन्ययुतं पुर्या यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥१०७॥  
 छुश्चाद्याः सप्त वालास्ते रामेण सह निर्ययुः । विमाने सकलां सेनां स्थापयामास राघवः ॥१०८॥  
 तावत्ते पार्थिवाः सर्वे नानावाहनस्तस्थिताः । वेष्टिताः स्वस्वसैन्यैश्च नत्वा रामं पुरः स्थिताः ॥१०९॥  
 तान् रामः स्थापयामास विमाने सैन्यसयुतान् । अष्टादशपदमितैः कपिभिः कपिराह् ययौ ॥११०॥  
 आरुरोह विमानाग्रं कपिभी राघवाज्ञया । ततः सीतां विना रामः स्वयं स्थित्वा तु पुष्पके ॥१११॥  
 पश्यज्ञानाविधान् देशान्ययौ लङ्कां विहायसा । यात्राकाले यथा यान्तरचताऽसीत्वा पुनः ॥११२॥  
 ततो रामं समायातं श्रुत्वा स मूलकासुरः । ययौ लङ्कावहियोद्धु राघवेण वलीयसा ॥११३॥  
 दशकोटिमितां सेनां विभ्रन् स वरदर्पितः । ततस्ते राक्षसाः पद्मिनिहन्युः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥  
 वानरा राक्षसांश्चापि निहन्युस्तान्दृपञ्चगः । एवं वभूव तद्युद्धं तु मुल दिनसमक्षम् ॥११५॥

सुसकर राम बड़े विस्मित हुए ॥१७॥ तुरन्त लक्षणसे उन्होंने कहा कि संसारमें जितने राजे हैं, उनके पास दूत भेजकर शीघ्र बुलवा लो ॥१८॥ लक्षणने रामके आजानुसार दूत भेजे । दूतोंने शीघ्र लौटकर रामसे कहा—हम लोग सब राजाओंके पास हो आये । उनमें कुछ राजे तो आपकी आजाका पालन कर रहे हैं और कुछ नहीं ॥१९॥ १००॥ इसका कारण यह है कि चम्पिका और सुमति के स्वयंवरके समय उनके हृदयमें जो क्षोभ उपजा था, वह अब तक उयों का त्यों बना है । फिर यूपकेतुकी मारसे उनका हृदय अलग विदीर्ण हो चुका है ॥१०१॥१०२॥ जब वे मदनसुन्दरीकी उस अनोखी शोभाको याद करते हैं तो उनका क्लेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है । इन्हीं कारणोंसे वे आपकी आजाका पालन नहीं करना चाहते ॥१०३॥ जिन सुग्रीव आदि नृपतियोंने आपकी आजाका पालन किया है, वे अपने दलबल समेत अयोध्या आ रहे हैं ॥१०४॥ दूतकी बात सुनकर रामचन्द्रने कहा—वे नीच राजे अबतक हमारे साथ ईर्ष्याभाव रखते हैं? अस्तु, पहले कुम्भकणके बेटे मूलकासुरको मारकर उन लोगोंपर भी चढ़ाई करूँगा । इस प्रकार निश्चय करके रामने शुभ दिन और मुहूर्तमें अपनी विशाल सेना तथा लक्षण-भरत आदि भ्राताओंके साथ मूलकासुरको मारनेके लिए अयोध्यासे प्रस्थान कर दिया ॥१०५॥१०६॥ पुरीके बाहर आकर उन्होंने कुछ सेनाके साथ यूपकेतुको अयोध्याकी रक्षाके लिए छोड़ दिया और वाकी कुश आदि सात लड़कोंको अपने साथ ले गये । रामने यात्राके समय सारी सेनाको पुष्पक विमानपर विठा लिया ॥१०७॥१०८॥ रास्तेमें रामके अनुगामी राजे भी अपनी अपनी सेनाके साथ आकर रामसे मिल गये ॥१०९॥ उन लोगोंको भी रामने विमानमें विठा लिया । इस यात्रामें सुग्रीव अठारह पद्म वन्दरोंके साथ आये थे ॥११०॥ उनको भी रामने पुष्पकपर विठाल लिया । इसके अनन्तर सीताको छोड़कर राम विमानपर बैठे । आकाशमार्गसे अनेक देशोंको देखते हुए वे लङ्काकी ओर बड़े और अल्प समयमें ही निर्दिष्ट हथानपर पहुँच गये । उधर जब मूलकासुरने यह समाचार सुना तो रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए इस करोड़ सेना लेकर लङ्काके बाहर बाले मैदानमें आ डटा ॥१११-११३॥ उस समय ब्रह्माके वरदानसे वह बड़े घमण्डमें था । फिर क्या कहना था, रासक्षण बानरोंको लातोंसे मारने लगे । बानरयूथने पहाड़के बड़े-बड़े टुकड़ों तथा वृक्षोंसे

तत्र ये ये मृता युद्धे वानरास्तान्स मारुतिः । द्रोणाचलं समानीय जीवयामास पूर्ववत् ॥११६॥  
 ततः सा राक्षसी सेना चतुर्थीशावशेषिता । तान्नष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्टा क्रोधयुतस्तदा ॥११७॥  
 मंत्रिणश्चोदयामास तथा सेनापतीन् वलैः । तानागतान् रणभुवं रामवीराः सहस्रशः ॥११८॥  
 शनघनीभिर्हस्तयंत्रैर्मिन्दपालमुशुष्ठिभिः । परिधैः पद्मिशैः शूलैः कुंतैः खड्डैविंमर्दयन् ॥११९॥  
 तेऽपि तालैस्तमालैश्च हिंतालैश्च दृष्टनगैः । शालैः शिलाभिः श्रीरामवीरान् संपर्दयन् रणे ॥१२०॥  
 पुनयुद्धं महावासीत्तुमुलं रोमहर्षणम् । ततस्तान् मंत्रिणः सर्वास्तथा सेनापतीनपि ॥१२१॥  
 रामवीराः क्षणेनैव चक्रः संयमनीगतान् । तान् सर्वान्निनहतान् श्रुत्वा क्रोधेन मूलकासुरः ॥१२२॥  
 स्वयं दिव्यरथे स्थित्वा किञ्चिवत्सैन्ययुतो ययौ । तमागतं नृपा दृष्ट्वा ययुयोद्धं सहस्रशः ॥१२३॥  
 ववर्षुः शरजालैश्च चक्रुद्दुन्दुभिनिःस्वनान् । तान्सर्वान् राक्षसेन्द्रः स चक्रार भुवि मूर्छितान् ॥१२४॥  
 तान् मूर्छितान्नृपान्दृष्टा योद्धुं तेन पुनर्युः । सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च राघवस्याज्ञया वलैः ॥१२५॥  
 तान्सर्वान्मूर्छितान् वाणीश्चकार मूलकासुरः । मूर्छितान्मंत्रिणो दृष्टा कुशाद्या वालका ययुः ॥१२६॥  
 ततो वभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । ततः कुशः स्ववाणीघैलैकायां मूलकासुरम् ॥१२७॥  
 प्राक्षेपद्धद्वमध्ये स पपात पुनरुत्थितः । ततोऽभिचारिकं होमं रथशस्त्रार्थमुत्तमम् ॥१२८॥  
 कतुं विवेश स गुहां चदुष्वा द्वाराण्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमधूमं निरीक्ष्य च ॥१२९॥  
 राघवं कल्पवृक्षाधः संस्थितं घंघुवेष्टितम् । होमं करोत्ययं दुष्टः प्रेषयस्त्र कपीन्पुनः ॥१३०॥  
 होमे समाप्तेऽजेयः स भविष्यति महासुरः । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा ययौ रामं सुरैर्युतः ॥१३१॥  
 नत्वा तं राघवश्चापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राघवं ब्रह्मा वरस्त्वस्मै मयाऽपितः ॥१३२॥

प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इस तरह सात दिन तक उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस संग्राममें जो जो वानर मरते थे तो हनुमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतवाली औषधि लाकर उन्हें जीवित कर दिया करते थे ॥ ११६ ॥ आठवें रोज राक्षसोंकी एक चौयाई सेना रह गयी, जेष सब मार डाले गये । मूलकासुरने जब देखा कि अब योड़ेसे राक्षस बचे रह गये हैं तो क्रुद्ध होकर अपने मन्त्रियों, सेनापतियों और सेनाको भेजकर उसने बड़ी बीरताके साथ लड़नेको ललकारा । उधर जब रामदलके बीरोंने देखा कि राक्षसोंकी और भी सेना आ गयी है और वे अपनों तोपों, तलवारों, बन्दूकों आदिसे भेरी सेनाको मारकर ढेर किये दे रहे हैं तब वे भी ताल, तमाल, हिताल आदि वृक्षों तथा पर्वतकी बड़ी-बड़ी बट्टानोंको लेकर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और योड़ी ही देरमें शत्रुके मन्त्री, सेनापति तथा सेनाको यमपुर पहुंचा दिया ॥ ११७-१२१ ॥ जब मूलकासुरने सुना कि वह सेना भी साफ हो गयी तो मारे क्रोधके तमतमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा योड़ी-सी सेना साथ लेकर लड़नेको चल पड़ा । रामके पाश्वर्वर्ती राजाओंने जब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों राजे भी परिकर बौद्ध-बौद्धिकर मैदानमें आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लोगोंने दुन्दुभीकी घनधोर गर्जनाके साथ उस राक्षसपर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी, लेकिन मूलकासुरने अणभरमें उन लोगोंको मूर्छित कर दिया ॥ १२४ ॥ जब राजाओंको मूर्छित देखा तो रामचन्द्रकी आज्ञासे सुमन्त्र आदि मन्त्री अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए जा डटे । मन्त्री भी वेहोण हो गये तो कुश आदि बालक जाकर लड़ने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ कुश आदिके पहुंचनेपर वहाँ भीषण युद्ध हुआ । कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मूलकासुरको उठाकर फेंक दिया और वह लड्डाकी बाजारमें जा गिरा । किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करनेकी इच्छासे एक कन्दरामें धुस गया, द्वार बन्द कर लिया और वहाँ आभिचारिकी क्रियाके अनुसार हवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हवनके घुर्णेको देखा तो भाइयोंकी मण्डलीमें कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम ! वह दुष्ट कन्दरामें बैठा हवन कर रहा है । अतएव फिर वानरोंको भेजिए । यदि कहीं हवन सम्पन्न-हो गया तो फिर वह किसीसे भी नहीं जीता जा सकेगा । इसी बीचमें बहुतसे देवताओंके साथ

यदा वीरान्न मे मृत्युभवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥  
 अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । स्त्रीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥  
 अन्यतु किञ्चित् प्रवक्ष्यामि कारणं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥  
 सीताचंडीनिमित्तेन जातो मे हि कुलश्चयः । इति यन्निष्टुरं वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥  
 तेष्वेकस्तं मुनिः क्रोधाददौ शापं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता साऽद्यैव त्वां मारयिष्यति ॥३७॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तद्भीत्या मुनयः सर्वे तृष्णीभूताः स्थिता पुरा ॥१३८॥  
 तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृतिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥  
 अतः सीतां समानीय तयैनं जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममामंत्रं ययौ वेधा निजं पदम् ॥१४०॥  
 रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥  
 सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गरुडं प्राह रामः पुष्पकमस्तितः ॥१४२॥  
 अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मद्गिरा । तामत्रानय वैदेहीं स्वपृष्ठे तां निवेश्य च ॥१४३॥

समंततस्तां दुष्टेभ्यः पथि रक्षतु मारुतिः ।

तथेति रामवचनमुररीकृत्य सादरम् । तावुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्नमतुः ॥१४४॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
 शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( राम-सीताविरह )

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्या सा हृदि राघवम् । स्मरन्त्यासीत्तद्विरहादुशाकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामने उनको प्रणाम करके विविवत् पूजन किया । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! बहुत दिनोंको वात है, मूलकासुर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमें माँगनेपर मैने उसे यह वरदान दिया था कि तुम किसी वीरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा ॥ १३४ ॥ एक कारण यह भी है कि एक बार शोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंडलीके समझ कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निपुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझे भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके डरसे शेष ऋषि चुपचाप बैठे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अघमको मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माकी बातें सुनकर विभीषणसे कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विज्ञ डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जब सीता यहाँ आ जायें, तब वानरोंको उसके यज्ञमें विज्ञ डालनेकी आज्ञा दी जायगीं । फिर राम गरुड़से कहने लगे—तुम जाओ और सीताको अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ ले जाओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दुष्टेसे उनकी रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित् 'योत्त्वा' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उघर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके विषयसे व्याकुल रहा करती थी । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्थौ कदा प्रासादमृधीनि । कदा द्राक्षामंडपाधः कदा संन्यस्तभूषणा ॥ २ ॥  
 वारस्त्रीणां कदा उत्थं ददर्श जनकात्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूज्यत् ॥ ३ ॥  
 कदाऽकरोच तुलसीशिवाश्वत्थान् प्रदक्षिणाः । मन्युसूक्तानि विप्रैश्च पाठयामास जानकी ॥ ४ ॥  
 गोमयेनाजनेयं सा कुब्यां कृत्वाऽर्घ्यं जानकी । अकरोत्प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः ॥ ५ ॥  
 शतरुद्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं नित्यं चकार नियतत्रता ॥ ६ ॥  
 गणेशं मारुतिं शम्भुं स्थणिडले स्थाप्य ग्रेमतः । चकार वदृध्वा द्वाराणि गताक्षैः सेचयज्जलम् ॥ ७ ॥  
 कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । मंचके राघवेन्द्रस्य पूजयामास सवदा ॥ ८ ॥  
 कदा सखीमध्यगा सा त्यक्तालंकारमण्डना । जलयंत्रांतिके निद्रां नाप तद्विरहाग्निना ॥ ९ ॥  
 कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमाह विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥ १० ॥  
 तद्वित्वं गच्छ वेगेन नो चेदत्र स्थिरो भव । तत्सीतावचनं श्रुत्वा काकस्तूडीय वेगतः ॥ ११ ॥  
 तेन किञ्चित्समाश्वस्ता पवनं प्राह जानकी । स्पृष्टा त्वं राघवांगानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥  
 कदा चंद्रं निशि प्राह त्वं स्पृष्टा शीतलैः करैः । श्रीरामं मां स्पृशस्वाद्य स्वकरैः सुखकारकैः ॥ १३ ॥  
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलंकारमण्डता । स्नात्वा प्रासादशिखरात्सखीभिः परिवेष्टिता ॥ १४ ॥  
 अपश्यच्छशिनं हर्षादेनं रामोऽद्य पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य संयोगो मां भवेदिति ॥ १५ ॥  
 रामे गते कदा सीता हरिद्राकज्जलादिकैः । नात्मानं भूषयामास द्विप्रिपत्न्यपिंतं विना ॥ १६ ॥  
 चंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशश्यां विदेहजा । नाशीचकार श्रीरामविरहानलपीडिता ॥ १७ ॥  
 शकुनान् सा ददर्शार्थं श्रीरामदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभृच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामसमागमः ॥ १८ ॥

वे कभी अटारीपर, कभी छतपर और कभी अंगूरोंकी जाहोमें अपने वस्त्राभूषण उतारकर बैठी रहती थीं ॥ २ ॥ कभी वेद्याओंके नृथं देखकर जी वहलाना चाहतीं और कभी रामचन्द्रको विजयकामनासे कार्तवीर्य भगवान्‌का पूजन करती थीं ॥ ३ ॥ तुलसी-पीपल आदिके वृक्षोंकी प्रदक्षिणा करती थीं । ग्राहणों द्वारा मन्यु-सूक्तका पाठ करवाती थीं । कभी पृथ्वीपर गोवरसे हनुमान्‌जीकी प्रतिमा बनकर पूजन करतीं और हर रोज एक अंगुल उनकी पूँछ बढ़ाया करती थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी जयके लिए ग्राहणों द्वारा सौ-सौ लद्दीका पाठ करवातीं और दुर्गाजीकी पूजा करती थीं ॥ ६ ॥ गणेश, मारुति तथा शिव, इनको जलमें विठालकर दरवाजे बन्द कर लेतीं । फिर सिंडीसे उनपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके मंचपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा-सर्वदा उनका पूजब करती थीं ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठी बैठी अपने अलंकारोंको फेंक देतीं और सखियाँ उन्हें फौवारेके पास ले जाकर सुलानेकी चेष्टा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थीं ॥ ९ ॥ कभी अटारीपर बैठे हुए कौएको देखकर सीता कहने लगतीं—“यदि मुझे शीघ्र रामचन्द्रके दर्शन होनेवाले हों तो ऐ कौए ! तू-यहाँसि उड़ जा, नहीं तो बैठ” सीताकी बात सुनकर कौआ उड़ जाता । उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ दाढ़स बेंध जाया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहती—“हे पवन ! तुम पहले रामचन्द्रजीका स्पर्शं करके मुझे स्पर्शं करो तो बड़ा उपकार हो” ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे विनय करती—हे चन्द्रदेव ! तुम अपनी ठंडी किरणोंसे रामचन्द्रके शरीरका स्पर्शं करके उन सुखदायिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षको द्वितीयाको सीता विविध प्रकारके बस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सखियोंके साथ प्रासादके ऊपर जातीं और इस भावनासे चन्द्रदेवका दर्शन करतीं कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेंगे तो शीघ्र ही हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरमें त हल्दी लगायी, न अंखोंमें काजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रके विरहानलसे पीडित सीताने चन्दन, पुष्प, फूलकी मालाएँ, फूलकी शव्या आदि कुछ श्रीः नहीं अङ्गीकार किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे वे सदा शकुन उठाया करती थीं । यदि

भवेदिति सखीयुक्ता ददौ सर्वान्सुर्शकराः । कदा परगृहं सीता न यथौ राघवं विना ॥१९॥  
नैका तस्थौ क्षापि सीता स्वाम्यगोद्वर्तनं जहौ । न मिष्ठानं न ताम्बूलं न गीतं केशवंधनम् ॥२०॥  
अंगीचकार श्रीरामविरहानलदीपिता । सभापणं स नान्देन पुरुषेणाकरोत्कदा ॥२१॥  
नाकरोत्सम्मितं वक्त्रं नोर्ध्वाद्यःऽन्यं ददर्थं सा । अन्याक्षिणोचरः नाथून्न मंतुष्टाऽभवत्कदा ॥२२॥  
पर्यंके शयनं सीता नाकरोद्राघवं विना । मुकुरे न ददशेत्यं मुखं विरहपांडुरम् ॥२३॥  
न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकां दधौ । न तस्थौ द्वारदंडे सा देहल्यंगणभूमिषु ॥२४॥  
न यथौ सरयूं स्नातुं यथौ नोपवनं वनम् । आरामं न यथौ सीता न तथा पुष्पवाटिकाम् ॥२५॥  
न चकार स्वतो दूरं मांगल्यानि विदेहजा । वस्तुनि द्विजपत्नीस्तैस्तोपयामास जानकी ॥२६॥  
नियमानकरोन्नाना देवीनां च पृथक् पृथक् । नियमैश्च व्रतंस्तस्यौ स्वयं नित्यं विदेहजा ॥२७॥  
वटकानां महामालामर्पयामि हनूमते । मोदकान् गणगजाय दास्यामि पूरणान्वितान् ॥२८॥  
सिद्धान्नेनापि नैवेद्य ते दास्यामि गणाधिप । दुर्गं त्वां बलिदानं च करिष्यामि प्रसीद मे ॥२९॥  
चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्तं जिह्वोऽङ्गवं त्वहम् । सुष्टुवन्न माषमयुक्तं बलिदीपसमन्वितम् ॥३०॥  
शीघ्रं रामो जयं प्राप्य शिशुभिर्यातु वै पुरीम् । मंदवारे करिष्यामि पंच चोपोपणान्यहम् ॥३१॥  
नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्याम्यहं वृतम् । मासमेकं करिष्यामि व्रतान्येवं सविस्तरात् ॥३२॥  
कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां वा महेश्वरि । किञ्चित्किञ्चिन्मासि मासि तिलबृद्धिं विधाय च ॥३३॥  
गुडेनाहं तिलान्भोक्ष्ये यावच्छ्रीरामदर्शनम् । भविष्यति कुशाद्यैश्च लक्ष्मणाद्यैश्च वंधुभिः ॥३४॥  
सत्वरं नवरात्रं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रभुदर्शने ॥३५॥

शकुन अच्छा उठ जाता तो वडा हृपं होता था । वे समझतीं कि शीघ्र ही रामचन्द्रजीका दर्शन होगा । इसी खुशीमें सखियोंको वे मिठाईयाँ बाँटती थीं । जबसे राम परदेश गये, तबसे वे किसीके घर नहीं गयीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीसे सीता कभी अकेली नहीं बैठतीं, शरीरमें उबटन नहीं लगतीं, मिठाई नहीं खातीं, ताम्बूल नहीं चवातीं और अपने केशोंको भी नहीं संवारती थीं । जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुरुषके साथ संभापण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ कभी किसीसे मुस्कुराकर नहीं बोलीं, ऊपर मुँह उठाकर किसीकी ओर नहीं निहारा, कभी किसी पुरुषने उन्हें नहीं देख पाया और कभी भी उनकी आत्माको चैन नहीं मिली ॥ २२ ॥ रामके विरहमें पीडित सीताने कभी शाय्यापर शयन नहीं किया और विरहसे पीले पड़े हुए अपने मुखमण्डलको शोशेमें नहीं देखा । न उन्होंने कभी रङ्ग-विरङ्गे कपड़े पहने और न रङ्ग-विरङ्गी चोली ही धारण की । तबसे वे कभी दरवाजेके चौकटपर नहीं खड़ो हुईं ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरयू-स्नान करनेको नहीं गयीं और किसी बन या उपवनमें सैर करने नहीं गयीं । किसी बगीचे तथा पुष्पादिकामें भी नहीं गयीं ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मांगलिक कार्य नहीं किया । अनेक प्रकारकी वस्तुएं दे-देकर उन्होंने काहूणियोंको प्रसन्न किया और कितने हा तरहके व्रत करके अनेक देवियोंकी पूजाएं कीं । इस तरह बहुतसे व्रतोंको करके वे अपने उन तीरस दिनोंको विताती रहीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इन तरह मनोती मानती थीं—हे देवियों और देवताओं ! यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने भाइयों और उन्हों समेत शीघ्र अवोध्या वापस आयें तो हे हनुमान्जी ! मैं वडा भारी माला बनवाकर आपको पहनाऊंगा । हे गणेशजी ! आपको पूरी और लड्डूका भोग लगाऊंगी । अनेक प्रकारके पकवान बनवाकर आपको समर्पण करूँगी । हे दुर्ग ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ । यदि राम लौट आएं तो आपके लिए बलिदान करूँगी । हे चण्डिके ! मैं आपको विविध प्रकारके स्वादिष्ट अन्नोंतया बलिदीपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊंगी ! यह मञ्जलवारका व्रत करूँगी । एक महीने तक मिठाई और घो न खाऊंगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! कृष्णपक्षकी तृतीया तथा चतुर्थ्यांको थोड़े-योड़े गुड़के साथ तिल खाऊंगी । यह व्रत तब तक चलता रहेगा, जब उक्त मुझे लक्ष्मणादि आताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिलेंगे ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तत्र । हृथं दिने दिने सीता नियमानकरोत्तदा ॥३६॥  
 ब्राह्मणैरध्यदानं च काश्यामास जानकी । न सा सुष्ठाप रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥३७॥  
 एवं दिने दिने सीता श्रीरामविरहातुरा । न शमाप क्वापि देशे श्रीरामापितमानसा ॥३८॥  
 एवं ता उमिलाद्याश्च चंपिकाद्यापि वै ख्यिः । स्वस्वस्वामिवियोगाग्निज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ३९॥  
 न सुखं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतापितमानसाः । सर्वास्ता लुलुदुर्नर्थो मणिभूमौ मृगीदशः ॥४०॥  
 काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । शुकं न पाठयत्यन्या पञ्जरस्थं कुतूहलात् ॥४१॥  
 लालयेन्नकुलं नान्या नालापयति सारिकाम् । अपराऽतीव संतसा नैव खेलति सारसैः ॥४२॥  
 मेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मंदिरे । सखीभिरुचिरे नालं वीणावाद्यं न शुश्रुतुः ॥४३॥  
 कल्पद्रुभप्रसूतं यद्रववत्तत्सुधोपमम् । मंदारकुसुमामोदं न पुरुमधुरं मधु ॥४४॥  
 योगिन्य इव ता मुवधा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यध्यानसंधानाः स्वनाथापितमानसाः ॥४५॥  
 चंद्रकांतमणिच्छन्ने स्वद्वारिकणद्रवैः । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयत्रेक्षणं क्वचित् ॥४६॥  
 रचयन्ति क्षणं शश्या दीर्घिका भोजिनीदलैः । वीज्यमानाः सखीभिस्ताः श्रीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥  
 हृथं युगसमां रात्रिं दिनं ता मेनिरे सदा । कथञ्चिद्वारणां कुत्वा विहृलाः सज्जराः स्थिताः ॥४८॥  
 एतस्मिन्नंतरे सीता नियमैश्च ब्रतादिभिः । समानीतावाङ्नेयगरुडावीयतुः पुरीम् ॥४९॥  
 प्रासफुरच्च झुजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिहं मन्यमाना सा किंचित्तुष्टाऽभवत्तदा ॥५०॥  
 अथ तौ कंपनोद्भूतगरुडौ सदसि स्थितम् । अयोध्यायां यूपकेतुं वृत्तं कथयतो जवात् ॥५१॥  
 तच्छ्रुत्वा यूपकेतुः स वृत्तं सीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

शीघ्र मेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपनी सहेलियोंके साथ नवरात्रका व्रत करूँगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे सूर्य भगवान् । प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । इस प्रकार रामके वियोगबाले दिनोंमें सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी मनोती माना करती थीं ॥ ३६ ॥ वे ब्राह्मणोंसे अध्यंदान कराती रहती थीं । रात-दिन कभी नहीं सोती थीं । इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उमिला और चम्पिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपों अग्रिमसे दग्ध होकर व्याकुल रहती थीं । वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिमयी भूमियोंपर लोट-लोटकर दिन काटती थीं । उन्हें संसारके किसी भी प्रदेशमें आनन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन्होंने न कोई क्रीडामयूर नचाती, न पिजरेमें वैठे हुए तोतेको पढ़ाती, न पाले हुए नेवलेको प्यार करती, न मैना पढ़ाती और न कोई स्त्री सारसोंके साथ खेलवाड़ ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुखका उपभोग नहीं किया । महलोंमें उन्होंने आनन्द नहीं लिया । वे न अपनी सहेलियोंके साथ हैंसी-दिल्लगी करती थीं, न वीणा बजातीं और न सुनती थीं ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पृथ्वीसे उत्पन्न कृसुमकी अमृतसरीखी सुगन्धिका भी उपयोग नहीं करती थी ॥ ४४ ॥ वे नारियाँ योगियोंसे समान अपनी हृषि नासाग्रभागमें रोककर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका छान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने पतियोंको अपूर्ण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे झरोखेमें लगे हुए चन्द्रकान्त मणिके समीप, जिसमें सदा रातके समय जलकी बारा बहा करती थी, वही बैठकर कुछ देर उसीको निहारा करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी कमलके पत्तोंकी शश्यापर सोतीं और सखियोंसे केलेके पत्तोंका पंखा झलवाती थीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-एक रात्रिको युगके समान मानकर बड़े सन्तापसे विहृल होकर समय विताती थीं । जब सीता इतनी कठिन यंत्रणा भोग रही थीं, उसी समय गरुड़ और हनुमानजी वहाँ आ पहुँचे । सहसा सीताकी बायीं आँख तथा भुजा फड़कते लगीं । इसे शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुईं ॥ ४८-५० ॥ थोड़ी देर बाद गरुड़ और हनुमानजी राजसभामें वैठे हुए यूपकेतुके पास पहुँचे और उन्होंने रामका सन्देश सुनाया ॥ ५१ ॥ उसे सुनकर यूपकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ ब्राह्मणों, पुरोहितों

रामवाक्यादासुरोह गृहडं वेगवत्तरम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य ऋत्विग्निभश्च पुरोधसा ॥५३॥  
 पति विनाऽग्निना नारी सीमामुललघ्यं न ब्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतोद्योगो विहायसा ॥५४॥  
 भये प्राप्ते प्रवासोऽपि खीणामुक्तोऽग्निभिः सह । पतिना रहितानां च न दोषः कथ्यते ऽत्र हि ॥५५॥  
 भूमिगैर्ब्राह्मणाद्यैश्च न देवचरितं चरेत् । ततः स रक्षयामास मारुतिस्तां समंततः ॥५६॥  
 पश्यन्ती विविधान् देशान् सीता लंकां ययौ मुदा । ददर्श कल्पबृक्षाधः पुष्पकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥  
 ननाम शिरसा भक्त्या साऽत्ररुद्ध खगाधिपान् । तां दृष्ट्वा राघवः प्राह सीते तेऽय मुखं कथम् ॥५८॥  
 विवर्णमंगयष्टिस्ते कृशाऽद्य परिलक्ष्यते । तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी सस्मितानना ॥५९॥  
 विलज्जंती विनोदेन राघवं प्राह सादरम् । स्वामिस्त्वद्विरहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥  
 न निद्रामि न जागर्मि नाशनामि न पिवाम्यहम् । ध्यायाम्यहं केवलं त्वां योगिनीव वियोगिनी ॥६१॥  
 निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनन्दि सर्वथा यन्मे मंदभाग्या विलोकये ॥६२॥  
 त्वदाननप्रतिनिधिविंधुविंधुरथा मया । उदितोऽपि न चालोकि तापं वै त्यक्तुकामया ॥६३॥  
 त्वदालापसमालापं कलयन् किल काकलीम् । कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णिना लक्ष्मीर्णकर्णया ॥६४॥  
 ननामस्त्रंस्त्रप्तुरु । भवत्पृष्ठिभ्यरा भया । नान्निलोऽपि प्रयत्निंति व्यवचिदिश्रांतया भृशम् ॥६५॥  
 नाना यमाश्च नियमा जयार्थं तव राघव । कुर्वत्या मम नैवाभृत्सुखं त्वद्विरहाग्निना ॥६६॥  
 ततो विहस्य श्रीरामस्तामलिंगं पुनः पुनः । कराम्यां तत्स्वनौ स्पृष्ट्वा पपौ विवाधरामृतम् ॥६७॥  
 अथापरदिने रामः स्नात्वा स्नातां विदेहजाम् । अस्त्रविद्यां शस्त्रविद्यामस्त्राद्वानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निको साथ लेकर गृहडपर जा वैठो ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री विना अग्निके अपने गाँवकी सीमाको लौधकर कहीं नहीं जाती । अग्निको साथ ले लेनेसे वह दोष नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक जगह शास्त्र यह भी आज्ञा देता है कि यदि किसी प्रकारके खतरेका अवसर आ जाय तो अग्निको साथ लेकर वह प्रवास भी कर सकती है । यदि उस समय वह पतिसे वियुक्त हो तो उसको ऐसा करनेपर कोई दोष नहीं लगता ॥ ५५ ॥ मत्यंलोकनिवासियों तथा ब्राह्मणोंको चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न करें । अस्तु, सीता गृहडपर सवार हुई । हनुमान्द्रजी सीताकी रक्षा करने लगे और सीता रास्तेके अनेक देशोंको देखती हुई लड्डाकी तरफ चलीं । इस प्रकार वहुत शीघ्र लड्डामें पहुंचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुंचों तो उतरकर उन्होंने रामचन्द्रको प्रणाम किया । रामने कहा—साते ! मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुँह कुम्हलाया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है । रामकी बात सुनकर मुस्कराती हुई सीता लज्जाके साथ कहने लगी—हे स्वामिन् । यह सब आपके विरहका प्रभाव है ॥ ५८-६० ॥ मुझे न नीद आती है, न जाग ही पाती हूँ और न खाती-पीती हूँ । आपसे वियुक्त होकर योगिनीके समान सदा आपका ध्यान किया करती हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी दरिद्र मेरी आँखें स्वप्नमें आपके ही मुखको देखा करती हैं । उसीमें इनको आनन्द मिलता है ॥ ६२ ॥ आपके मुखका प्रतिनिधिस्वरूप चन्द्रमा भी उदित होता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता । सन्तापको दूर करनेकी कामनासे भी उसकी ओर निहारनेको मन नहीं करता ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बोलोंकी तरह कोकिलकी बोल होती है, किन्तु वह भी सुननेकी इच्छा नहीं होती । उसकी बोल कानोंको शूलके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे अङ्गोंके स्पर्शके समान ही मधुर धूपके सुगंधसे मिली वायु भी है, किन्तु उसका भी मैंने कभी आलिंगन नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी विजयके लिए मैं विविध प्रकारके व्रतों और उपवासोंको करता रहा । आपकी विरहाग्निसे संतप्त होनेके कारण कभी मुझे सुख नहीं मिला ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हँसकर रामने बार-बार सीताको अपनी छातीसे लगाया, स्तनस्पर्श किया और होठोंको चूमा ॥ ६७ ॥ इसके बाद दूसरे दिन रामने स्नान किया, सीताको भी स्नान करवाया और सब अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति सिखलायी । कहनेका तात्पर्य यह कि उन्होंने योङ्गे ही समयमें सीताको समस्त घनुवेदकी शिक्षा दे दी । रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने रथ तैयार

शिक्षयामास सकलां धनुचिंधा सविस्तराम् । रामाज्ञया लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्ध चकार सः ॥६९॥  
 दारुकः सारथिर्यस्मिन् शत्र्याण्यस्त्राण्यनेकशः । गदापद्मं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥७०॥  
 यस्मिन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुगास्तुरगोत्तमाः ॥७१॥  
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदण्डं विराजते । यस्मिन् शुक्ले चामरे द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मजम् ॥७२॥  
 तं रथं राघवो दृष्टा जानकीं वाक्यमन्तर्वीत् । सीते स्थित्वा स्यदनेऽस्मिन् जहित्वं मूलकासुरम् ॥७३॥  
 तथेति रामवाक्याच्छायां सीता प्रचोदयत् । तामसी सार्डिषि तं नत्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥७४॥  
 आहुरोह रथं वेगादधोरा धर्षरनिःस्वना । एतस्मिन्नन्तरे रामप्रेरिता वानरोत्तमाः ॥७५॥  
 लंकां गत्वा पूर्ववच्च हवनात्तं प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥७६॥  
 ययौ स्थित्वा रथे योदूधुं क्रोधेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपातास्य मुकुटः सखलितो भुवि ॥७७॥  
 अनिवत्यसुरो गर्वाद्ययौ रणभुवं जवात् । सीताच्छायाऽपि सैन्येन ययौ सा लक्ष्मणादिभिः ॥७८॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्थे सीताविरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

### षष्ठः सर्गः

( रामके द्वारा राज्यका विभाजन )

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया टण्टक्त्य शाङ्कं तच्च महद्दनुः । ययौ रणभुवं वेगात्तां ददर्शसुरोऽपि सः ॥ १ ॥  
 करालदंष्ट्रानयनां विद्युतिपगशिरोरुहाम् । तालजंघां शूर्पपादां दरिवक्त्रां धनप्रभाम् ॥ २ ॥  
 लोमशां प्रललच्छिह्नां विदीर्णस्यां महच्छिराम् । तां दृष्टा कौमुकणिः स भीतः प्राह सखलद्विरा ॥ ३ ॥  
 का त्वं समागताऽस्यत्र किमर्थं योदूधुमिच्छसि । मम सर्वे वदस्त्र त्वं मदग्रे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

किया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं गदा-पथ उसमें रखेथे और रथके ऊपर गरुड़से अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामदाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बढ़िया छत्र लगा था और सुवर्णके दण्ड लगे दो सफेद चमर रखेथे । उस रथमें जगह-जगह सुवर्णकी कोळे लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उस सुसज्जित रथको देखकर रामने सीतासे कहा—सांते ! अब तुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरको मारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात अङ्गीकार की और अपनी तामसी छायाको प्रेरित किया । उस तामसी छायालृपिणी सांताने बार-बार रामकी प्रदक्षिणा की और धर्षर बाब्द करते हुए रथपर जा बैठी । उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लङ्घामें पहुंचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकम्बले विचलित कर दिया । फिर लौटकर वे वानर रामके पास पहुंचे और सब समाचार सुनाया । उधर मूलकासुर कुपित होकर रथपर जाँचा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४-७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गवंके साथ रणभूमिमें पहुंचा । इधर सीता भी रथपर बैठी और अपने लक्ष्मणादि वीर संनिकों के साथ रणभूमिकी ओर चल पड़ीं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयकृतज्योत्स्नाभाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्थे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके अनन्तर उस छायामयी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकोर किया और संग्रामभूमिमें जा डटीं । तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके बड़े-बड़े दाँत, डरावनी आँखें, विजलीके समान पोतवर्णके केशपाश, तालकी नाईं लम्बी-चौड़ी जाँघें, सूपकी तरह चौड़े पैर, कन्दरके समान भयावना तथा मेघके समान काला मुँह, लपलपाती जीभ और बड़ा भारी माथा था । उन्हें देखकर कुमुकणके बेटेने घबराकर कहा—॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ युद्ध करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका

यदि जीवितुमिच्छाऽस्ति न भे खोप्तस्ति दौरुप्तु । अब सा राजतीतिथ्या विमानान्मुहूरीक्षिता ॥ ५ ॥  
 तमुच्चाच तदा छाया गिरा निर्दरती गिरीन् । मूलकासुरतां शीतां चंडां मां विद्वि चडिकाम् ॥ ६ ॥  
 यन्निमित्तात्कुलं नष्टं तव लक्षा प्रधर्षिता । मत्प्रक्षपातिनं विप्रं पूर्वं त्वं हत्यानसि ॥ ७ ॥  
 तस्यानुष्यं गमिष्यामि त्वां हत्याऽथ रणाजिरे । हत्युक्त्वा चापमानम्य पंचवाणैर्जघान तम् ॥ ८ ॥  
 ततः सोऽपि धनुर्धृत्वा छायां वाणान्मुमोच ह । तद्युद्धं पार्थिवायास्ते जीविता ये हनूमता ॥ ९ ॥  
 ददृशुर्वानिराः सर्वे पुष्पकाङ्गालमस्थानाः । सीताया रघुवीरस्तु कल्पवृक्षतले स्थितः ॥ १० ॥  
 रुक्ममाणिक्यपर्यके दासीभिः परिवीजितः । उपवर्हणपृष्ठः स धृताधोकोपवर्हणः ॥ ११ ॥  
 युद्धं ददर्श तच्छायामूलकासुररोमहत् । मूलकासुरसंत्यक्ताऽवाणांश्छाया समागतान् ॥ १२ ॥  
 छित्त्वा स्ववाणजालैस्तानन्पुनर्वणान्मुमोच सा । चतुर्भिस्तुरगान् हत्वा मुकुट कवचं धनुः ॥ १३ ॥  
 सा विभेद त्रिभिर्वाणैस्तदा पद्मयां महासुरः । गत्वाऽन्यं रथमारुद्ध छायां योद्धुं पुनर्यौ ॥ १४ ॥  
 ततश्छायां मुमोचासौ वह्नयस्त्रं मलकासुरः । छाया मुमोच मेघास्त्रं तद्वह्नयस्त्रं न्यवर्तयत् ॥ १५ ॥  
 पर्वतास्त्रं कौम्भकणिस्ततश्छायां मुमोच सः । न्यथारथ्यत्तच्छाया सा पवनास्त्रेण पार्वतम् ॥ १६ ॥  
 पुनर्मुमोच वेगेन सर्पास्त्रं मूलकासुरः । गारुडास्त्रेण तच्छाया चकार विफलं क्षणात् ॥ १७ ॥  
 एवं तत्तुमुलं युद्धं वभूत दिनसप्तम् । तदा छाया महारांद्रा चडिकाऽस्त्रेण तं रिपुम् ॥ १८ ॥  
 हंतुकाया महास्त्रं तन्मुमोच मूलकासुरम् । तदा चचाल जगता मर्यादामव्यस्तदा ॥ १९ ॥  
 लंघयामास्त्र रजसा व्याप्ताश्वासंस्तदा दिशः । चण्डिकास्त्रं तु चिच्छेद मूलकासुरसच्छिरः ॥ २० ॥  
 पपात कायो लंकायां राजद्वारि महच्छिरः । हाहाकारो महानासीलंकायां रक्षसां तदा ॥ २१ ॥

उत्तर दो ओर यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हों तो मेरे आगेसे हट जाओ । हित्रियोंसे लड़नेके लिए मुझमें पुरुषार्थ नहीं है । थोड़ी ही देर बाद सीता आकाशमें रामके साथ विमानपर बैठी हूई दिखायी पड़ी ॥ ४ ॥ ५ ॥  
 वहाँ हीसे अपनी बनधोर बाणोंमें पर्वतोंको भी कौपाती हैं सीता कहन लगा—हे मूलकासुर ! इस समय उग्र रूप चारण किये मैं चण्डिका सीता हूं । जिसके कारण तुम्हारा सारा कुल नष्ट हो गया था और लंका छस्त हो गयी थी, वही सीता मैं हूं । तुमने मेरे पक्षपातो एक ब्राह्मणको मार डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके बदले आज तुम्हें मारकर मैं उसके ब्रह्मसे मुक्त हो जाऊंगा । इतना बहकर सीताने अपना बनुष उठाया और तड़ातड़ पाँच बाणोंसे मूलकासुरपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उस देखने भी अपना बनुष सम्हालकर सीताके ऊपर कई बाण चलाये । उन दोनोंके उस तुमुल युद्धको देखनेके लिए वे बहुतसे राज तथा वानर पुष्पक विमानपर बैठे थे, जिनको हनुयानजीने संजीवनी बूटास जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ थोड़ी देर बाद वानरोंने देखा कि राम सीताके साथ कल्पवृक्षको छायामें स्वर्णजटित आरानपर बैठे हैं ॥ १० ॥ दासियाँ पंखा झल रही हैं और उनके आगे-पांछे तकिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी वहोस बड़-बैठे छायामयी सीता तथा मूलकासुरका युद्ध देखते रहे । सीता मूलकासुरकी ओरसे आये बाणोंको शोषिताके साथ काट-काटकर अपने बाणोंको उसके ऊपर छाड़ती जाती थी । चार बाणोंसे सीताने मूलकासुरके रथम जुते थाढ़ो और तीनसे उसके माथेका मुकुट, बनुष तथा कवच काट डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऐसी अवस्थामें वह पैदल दोड़ता हुआ गया और एक दूसरे रथपर सवार होकर फिर सीतासे युद्ध करनेके लिए आ डटा ॥ १४ ॥ वहाँ पहुंचत ही उसने सीतापर बहुधस्त्र छोड़ा । सीताने मेघास्त्रका प्रयोग करके उसके वह्नयस्त्रका शान्त कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीतापर पर्वतास्त्र छोड़ा । सीताने पवनास्त्र छोड़कर उसका निवारण किया । इसके अनन्तर वेगके साथ उसने सर्पास्त्र चलाया । सीताने गरुडास्त्र छोड़कर उसे व्यर्थ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और मूलकासुरमें सात दिन पर्वन्त महान् युद्ध होता रहा । तदनन्तर कुपित होकर सीताने मूलकासुरका नाश करनेके लिए अपना एक महान् अस्त्र चलाया । जिससे पृथ्वी डगमगाने लगी और सुदूर अपनी मर्यादाको लाँघकर बड़ी-बड़ी लहरें उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ दसों दिशाएँ धूलसे व्याप्त हो गयी और उन चण्डोरूपवारिणी

निनेदुदेववाद्यानि देवाश्राकाशसंस्थिताः । ववपुः ऊमैश्छायां रामं सीतां सुहुषुङ्गः ॥२२॥  
 ततो निवर्त्य सा छाया ययौ सीतांतिकं पुनः । नत्वा रामं च सीतां च सीतादहे लयं ययौ ॥२३॥  
 तदा निनेदुवर्द्यानि नवतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुयुर्मगधाद्याश्र जगुर्गीतं नटादयः ॥२४॥  
 ततः सुरगणैः सर्वेऽधाः श्रीराघवं ययौ । नत्वा रामं च सीतां च तुष्टाव जानकीं मुदा ॥२५॥

ब्रह्मावाच

जनकात्मजे राघवप्रिये कनकभासुरे भूमिपालिके ।  
 दशरथात्मजप्राणवल्लभे तव पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२६॥  
 भूलकासुरप्राणघातके रामरक्षिते रामसेविते ।  
 राममोहिनि स्वंदनस्थिते त्वत्पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२७॥  
 राममञ्चकाधिष्ठिते रमे रामनीजिते रामलालिते ।  
 रामसंस्तुते रामरजिते त्वत्पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२८॥  
 लोकपावनि श्रीरजे वरे भूमिकन्दके लोकपालिके ।  
 पद्मलोचने धरात्मजे परे त्वत्पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२९॥  
 कंजलोचने नागगामिनि स्वीयसत्सुखे रम्यरूपिणि ।  
 रुक्मभूषिते मौक्तिकांकिते त्वत्पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३०॥  
 जलरुदानने चित्रवासिनि त्वमवसि सर्वदा स्वीयसेवकान् ।  
 मुनिरिपून् सदा दुःखदायिके त्वत्पदावुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३१॥

सीताके उस भहान् अस्त्रने बातको बातमें भूलकासुरके मुण्डको शरीरसे अलग कर दिया ॥ २० ॥ उसका घड़ लंबाके राजद्वारयर जा गिरा । इस घटनासे लक्ष्मनारीके दैत्योंमें हाहाकार मच गया ॥ २१ ॥ उधर देवताओंने प्रसन्न होकर अपनो दुन्दुभी बजायी, अपने-अपने विमानोंपर वैठकर वे आकाशमें आये और राम तथा सीतापर उन्होंने पुष्पवृष्टि की ॥ २२ ॥ इसके बाद सीताको छाया रणांगणसे लैटकर रामके समीप पहुंची । वहाँ वह राम तथा सात्यिकी सीताको प्रणाम करके उन्होंके स्वरूपमें लग हो गयी ॥ २३ ॥ उस समय फिर देवताओंने अपने मंगलवाद्य दजाये और अप्सराएँ नाचने लगीं । मागव-वन्दीजनादिकोंने सीताकी स्तुति की और नटोंने उनका यशोगान किया ॥ २४ ॥ थोड़ी देर बाद ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास पहुंचे और उनको तथा सीताको प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे । ब्रह्माने कहा-हे जनकात्मजे ! हे सुवर्णहश दमकनेवाली भठ्ठमूर्तिवरिणी सीते ! हे राघवप्रिये ! हे भतोंका पालन करनेवाली माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रेयसी ! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भीरा बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे भूलकासुरघातिनि ! हे रामरक्षिते ! हे रामसेविते ! हे रामको मुग्ध करनेवाला ! हे रथपर आरुद्ध होकर दुष्टोंका दर्पं दूर करनेवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदैव तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २७ ॥ हे रामके साथ दिव्य सिंहासनपर वैठनेवालो ! हे लक्ष्मी ! हे रामजीविते ! हे रामलालिते ! हे रामसंस्तुते ! हे रामरज्जिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे श्री ! हे अजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्दके ! हे पद्मलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका मधुकर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे गजगामिनि ! हे स्वीयसत्सुखे ! हे रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकांकिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणोंका भीरा बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सरोबे मुखवाली सीते ! हे वित्रवसने ! तुम सदा अपने भतोंकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राक्षसोंको दुःख देनेवाली है सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भूज्ञ बना रहे ॥ ३१ ॥

त्वन्मुखेक्षणाद्रक्षमा पतिः प्राप संक्षयं रामसत्प्रिये ।  
 त्वददृगेक्षणालुजिता मृगी त्वत्पदांवुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३२॥  
 कुशलवांविके जलरुहानने जलरुहेक्षणे पापदाहिके ।  
 मधुरसुखने नपुरस्वने त्वत्पदांवुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३३॥  
 ग्राणमुत्तमं ते दिभतानने तेऽधरः शुभो विंशतिभः ।  
 अद्य वै त्वया मूलज्ञासु भी मारितो रणे तात्त्वा वयम् ॥३४॥  
 ब्रह्मणेरितं नवकमुत्तमं भास्करोदये पठायि यः पुमान् ।  
 सर्ववांछितं लभति सोऽत्र नाप्राप्नुयात्सुखं रामसन्निधिम् ॥३५॥

इति स्तुत्वाऽमर्त्रवीक्षा चत्वार्लक्षारमण्डनैः । सीतां रामं च संपूज्य राघवेणापि पूजितः ॥३६॥  
 प्रययौ राममामञ्च सत्यलोकं यनोरमम् । ततो विभीषणः ग्राह लंकायां न त्वया पुरा ॥३७॥  
 समागतमिदानीं त्वं मां कृतार्थं कुरु प्राप्तो । तथेति प्रतिनिद्याथ तद्वाक्यं रघुनन्दनः ॥३८॥  
 विमानेन ययौ लंकामध्ये मित्रयुहं प्राप्त । ततो विभीषणं राज्ये लंकायां त्वभ्यगेचयत् ॥३९॥  
 तदा महोत्सवश्चाषीललंकामां एवाङ्ग्रहः । ततो विभीषणो रामं सीतां तेऽलक्षणादिकान् ॥४०॥  
 वस्त्रैराभरणै रत्नैः पूजयादाय सादरः । अर्द्यामास सर्वस्वं स्वीयं रामाय राक्षसः ॥४१॥  
 तदा कपिलवाराहमूर्ति राज्यापूजिताम् । रामस्तां रोचयागासु सोऽपि रामाय तां ददौ ॥४२॥  
 मनसा कपिलेनैव पुरा मूर्तिविनिर्भिता । चिरकालं तमाराध्य लब्धा भवता तु या ॥४३॥

हे रामसत्प्रिये ! तुम्हें देखते हैं दक्षसोका राजा मूलकासुर नष्ट हो गया । तुम्हारी आँखोंकी शोभा देखकर मृगी लजिजत हो जाती है । इस प्रज्ञार नुन्दर-स्वरूपवाली है सीते ! हमें यही आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका त्रमद बना रहे ॥ ३२ ॥ हे कुश-लवकी माता ! हे कमलके समान मुखबाली ! हे कमलके समान आँखोंबली ! हे पापोंको नष्ट करनेवाली ! हे मीठे स्वरवाली ! हे तूपुर सदृश मधुर स्वरवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलोंका भौरा बना रहे ॥ ३३ ॥ हे मुस्कुराहट भरे मुखबाली सीते ! तुम्हारो नासिका बहुत सुन्दर है । विवफलके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ है । आज तुमने संग्रामभूमिमें मूलकानुश्को मार डाला । इससे द्रमलोगोंका उद्धार हो गया ॥ ३४ ॥ श्रीरामदासने कहा-जो प्रातःकालके समय ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये गये इन नी शरोकोंका पाठ करता है, उसकी समग्र कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्त समयमें उसे रामचन्द्रजीके समोप स्थान गिलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह जहाने स्तुति करके विविध प्रकारके दस्त्राभूषणोंसे राम और सीताकी पूजा की । रामने भी ब्रह्माजीका विधिवत् पूजन किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रामसे आज्ञा लेकर समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने लोकको लौट गये । तब विभीषणने भगवान्‌से प्रार्थना की कि पहले जब आप रावणको मारनेके लिए लंकामें आये थे तो पिताकी आज्ञा न होनेके कारण आपने नगरीमें प्रवेश नहीं किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पवारकर मुझे कृतार्थ कीजिए । रामने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुष्टक विमानपर बैठकर लंकामें अपने मित्र विभीषणके भवनमें पधारे । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिषेक करके लंकाके राजसिंहासनपर बिठाला । उस समय लंकामें बड़ा उत्सव मनाया गया । इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्षणादिका विविध रत्नों और वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति रामको अपेण कर दी ॥ ३८-४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिमेंसे रामको कपिलवाराहकी मूर्ति अच्छी लगी । जिसकी पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामको वह मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विषयमें ऐसा सुना जाता है कि कपिल भगवान्‌ने अपनी मनःशक्तिसे उस मूर्तिकी रचना की थी । वहाँ दिनों तक कपिल मुनिने स्वयं उसकी पूजा की । उसके बाद वह इन्द्रके हाथ लग गयी ।

तं जित्वा रावणेनैव समानीता निजां पुरीम् । यां सदा पूजयामास लंकायां रावणश्चिरम् ॥४४॥  
 विभीषणेन सा दत्ता राघवाय दृष्टन्मयी । ता मूलि स्थापयामास विमाने रघुनन्दनः ॥४५॥  
 ततः सीताऽध रामेण देवरैर्यालिक्ष्मीदा । अशोकवृन्दानिकां शत्वा शिंशपावृक्षमुक्तमद् ॥४६॥  
 दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कनिष्ठिकाम् ॥४७॥  
 घृत्वा दक्षिणहस्तस्य सीता वशाम तद्वनम् । स्नानासनांदकं पूर्वं यत्र यत्र कृतं वने ॥४८॥  
 रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततस्तां प्रिजटां सीता वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४९॥  
 कृत्वाऽतितुष्टां रामाग्रे सामां वाक्यमनवीत् । अनग्ना रक्षिता पूर्वं राक्षसीग्रहभीतिः ॥५०॥  
 मत्तुच्छ्या माननीयेयं सर्वदा सरमे त्वया । इत्युक्त्वा सरमाहस्ते त्रिजटाकर्मर्पयत् ॥५१॥  
 ततो वासस्थल सीता ययौ रामेण सा शनैः । एवं निकुमिलादीनि द्वया नानास्थलानि हि ॥५२॥  
 पुष्पकस्थो ययौ रामो विभीषणसमन्वितः । विभीषणस्य सचिव लंकायां संन्यवेशयत् ॥५३॥  
 रामः करे धनुर्धृत्वा लंकायाः परितस्तदा । प्रदक्षिणोपमं वैगाङ्गामयामास सादरम् ॥५४॥  
 ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दनः । राक्षसेन् भवा चापं रक्षार्थं भ्रामितं तव ॥५५॥  
 ततो रामो विमानेन ययौ शीशं विहायसा । विभीषणस्त रक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥  
 मच्चापरेखाऽप्यन्वेषां दुःखोत्तीर्या भविष्यति । अमुं वाणं मया दत्तं त्वं गृहण विभीषण ॥५७॥  
 मम नाम्नाकिंतं तीर्णं तव प्राणस्य रक्षकम् । चापरेखा वाणहस्तं देयं त्वां धर्येयिष्यति ॥५८॥  
 मद्भाणहस्तं त्वां कविच रिपुर्धर्पयिष्यति । इत्युक्त्वा तं ददी वाणं विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥  
 प्रणनाम मुदा रामं वाणहस्तो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पदयन् देशान् मनोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रसे संग्राम करके उन्हें पराजित किया । तब रावण उस मूर्तिको इन्द्रसे छीन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभीषणने रामको अपेण कर दिया । रामने बड़े प्रेमसे उसे अपने पुष्पक विमानपर रखका ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति राम और लक्ष्मणादि देवरों तथा कुश आदि वच्चोंके साथ सीता उस शिशापा वृक्षके नीचे पहुँचीं, जहाँ रावणके हर ले जानेपर बहुत दिनों तक रह चुकी थीं । वहाँ पहुँचकर सीताने बतलाया कि यह वही स्थान है, जहाँ आपसे वियुक्त होकर मैं बहुत दिन तक रही । इसके अनन्तर रामके दाहिने हाथकी उँगली पकड़कर सीता अशोकवाटिकामें इवर-उघर धूमती हुई उन स्थानोंको दिखलाने लगीं, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थीं । घमती-धूनती सीता त्रिजटाके स्थानपर पहुँची और विविध प्रकारके वस्त्राभूपणोंसे त्रिजटाका सत्कार किया ॥ ४६-४९ ॥ जब त्रिजटा प्रसन्न हो गयी तो विभीषणकी स्त्री सरमासे सीताने कहा—जिस समय राक्षसियाँ अपना भयानक मुँह दिलाकर मुझे डराती-बमकाती थीं, तब यह त्रिजटा ही मेरी रक्षा करती थी । हे सरमे ! मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वदा तुम मेरी ही तरह इसका सम्मान करना । इतना कहकर सीताने त्रिजटाका हाथ सरमाके हाथोंमें घम्हा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह धूम-फिरकर राम सीताके साथ डेरेपर पहुँचे और लंकामें मन्त्रीको राज्यकी देख-भाल करनेके लिए छोड़कर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही अयोध्याको प्रस्थान कर दिया । अपने भक्त विभीषणके प्राचंना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए अपना धनुष उठाकर बड़े वेगके साथ लंकाके चारों ओर बुमाया और इस प्रकार कहने लगे—हे राक्षसेन्द्र ! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये यह धनुष बुमाया हूँ । मेरे धनुषकी यह रेता शत्रुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह वाण भी दे रहा हूँ, इसे ग्रहण करो ॥ ५२-५७ ॥ इसमें मेरा नाम लिखा हुआ है । यह सदा तुम्हारे प्राणोंका रक्षक होगा । एक बात और भी है । वह यह कि तुम इस वाणको लिये हुए मेरे धनुषकी इस रेताको लांधोगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगी ॥ ५८ ॥ मेरा वाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपना वाण विभीषणको दे दिया ॥ ५९ ॥ वाणको हाथोंमें लेकर विभीषणने रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वनगरीं यथौ । तदा निनेदुवाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६१॥  
 प्रत्युज्जगाम श्रीरामं यूपकेतुः सनागगः । प्रासादशिखरारुढाः पौरनार्यः सहस्रशः ॥६२॥  
 सीतां रामं निरीक्ष्याथ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो विवेश श्रीरामः सभां तां पार्थिवैः सह ॥६३॥  
 विवेश स्त्रीयगेहं सा जानकी तुष्टमानसा । गेहे कपिलवाराहमूर्तिं रामो न्यदेश्यत् ॥६४॥  
 एकदा राघवस्तुष्टः शत्रुघ्नाय हि तां ददौ । सीताऽपि सा पुण्यान्वयमाँश्च नियमादिकान् ॥६५॥  
 सङ्कल्पयामास सर्वास्तांश्चकार यथाविधि । उद्यापनान्यनेकानि मवेषां साऽकरोन्मुदा ॥६६॥  
 एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः । आजम् राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षमः ॥६७॥  
 कृत्वाऽग्ने तु मुनिश्चेष्टुं भार्गवं च्यवनं द्विजाः । असंख्याताः संशिष्यास्ते रामादमयकांश्चिणः ॥६८॥  
 तान् पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोद्धाः । उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमडलम् ॥६९॥  
 करवाणि मुनिश्चेष्टाः किमागमनकारणम् । धन्योऽस्मि यदि युयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः ॥७०॥  
 सुदृष्टरं वा यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । आज्ञापयन्तु मां भृत्यं त्राहणा दैवतं हि मे ॥७१॥  
 तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टच्यवनो वाक्यमत्रवीत् । मधुनामा महादेव्यः पुण्य राम कृते युगे ॥७२॥  
 आसीदतीव धर्मात्मा देवत्राद्यणपूजकः । तस्मै तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुच्चमम् ॥७३॥  
 तं ग्राहानेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति । रावणस्यानुजा तस्य भार्गा कुम्भीनसी स्मृता ॥७४॥  
 तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः । आवीद्दुर्गात्मा दुर्घटो देवत्राद्यणहिंसकः ॥७५॥  
 मधुः स तव हस्तेन मृतः पूर्वं यतस्तदा । यधुशूदननामाऽभृत्युवातदव्यूतम् ॥७६॥  
 पीडिता लवणेनाद्य वयं त्वां शरणं गताः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भीरो मुनिषुंगवाः ॥७७॥

वेठे और अनेक देशोंको देखते हुए अयोध्याको चल पड़े ॥ ६० ॥ रास्तमें अनेक राजाओंको भेटोंको स्वीकार करते हुए वे अपनी नगरीमें पहुँचे । रामके वहाँ पहुँचनेपर नाना प्रकारके वाजे बजे और अप्सराएँ नाचीं ॥ ६१ ॥ यूपकेतु बहुतसे लोगोंको साथ लिये हुए रामकी अगवानी करने पहुँचे । अयोध्यानिवासिनी नारियोंने कोठेपर चढ़कर सीता और रामका दर्शन करके उनपर पुण्योंकी वृष्टि की । इसके बाद राम अनेक महिलाओंके साथ अपने सभाभवनमें गये । सीता अपने महलोंमें चली गयीं । वादमें रामचन्द्रजीने वहाँ कपिलवाराह मृत्युकी स्थापना की ॥६२-६४॥ एक दिन रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर वह मूर्ति शशुद्धको दे दी । सीताने रामके वियोगकालमें जिन व्रतों और नियमोंकी मनोती मानी थी, उनको बड़े विधि-विधान समेत सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी यत्नके साथ किया ॥६५॥६६॥ एक दिन यमुना तटपर रहनेवाले सब ऋषि लवणासुर नामक राक्षसमें भयभीत होकर रामके पास आये ॥ ६७ ॥ उन लोगोंने भार्गव च्यवन लृष्टिको अपना अगुका बनाया और हजारोंसे अविक संलग्नमें एकत्रित होकर रामके पास जा पहुँचे ॥ ६८ ॥ रामने उन लोगोंका विधिवत् पूजन किया और उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे थेषु मुनिगण ! आप लोग किस कार्यसे मेरे पास आये है ? आपकी जो आज्ञा हो, उसे पूर्ण करनेके लिये मैं तैयार हूँ । मैं अपनेको घन्य समझता हूँ जो आप सब मुझे देखनेके लिए मेरे यहाँ पवारे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ यदि कोई अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा तो मैं उसे भी करनेके लिए वरावर प्रस्तुत हूँ । क्योंकि ब्राह्मण मेरे लिए देवता सदृश हैं । आपलोग दिना जिसी अड़चनेके मुझ सेवको आज्ञा दीजिए ॥ ७१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उनमेंसे च्यवन नामक ऋषि गद्याद होकर कहने लगे—हे राम ! वहुत दिन हुए, मधु नामका एक महादेव्य हुआ था । वह ब्राह्मणोंका पूजक एवं बड़ा धर्मतिमा था । उसकी इस सहृदयतासे प्रसन्न होकर यिवर्जीने उसे एक विशूल दिया और कहा—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तुम इस त्रिक्लूरे जिसे मारोगे, वह भस्म हो जावगा । रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णकी कुम्भीनसी नामकी भाक्षी थीं । उससे लवण नामके एक राक्षसकीं उत्पत्ति हई । जो बड़ा भारी दुरात्मा, दुर्घटं तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके लिए दुखदारी है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सत्यशुगमें आपने मधुनामके राक्षसको मारा था । इसोलिए बाप्ति मधुसूदन नाम पड़ा था । मधुके समान ही आज लवणासुरसे अकुलाकर हुम आपकी शरणमें आये

लवणं नाशयिष्यामि गच्छतु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥  
 अद्य त्वामभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमत्रवीत् ॥७९॥  
 नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मा निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामीति ते मुहुः ॥८०॥  
 तत्स्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघूत्तमः । तथैव भरतं प्राह न सोऽप्यङ्गीचकार तत् ॥८१॥  
 ततो रामः सुवाहुं च यूपकेतुं द्विजैर्नृपैः । अभिषिच्यावृत्तिद्वाक्यं शत्रुघ्नं पुरतः स्थितम् ॥८२॥  
 इत्वा तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्गितं शुभम् । अनेनैव हि वाणेन लवणं लोककंटकम् ॥८३॥  
 हनिष्यसि क्षणादेव वृत्रं देवपतिर्यथा । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥  
 भक्षणार्थं हि जंतूनां घातं कर्तुं समुद्यतः । स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥  
 तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्युकः । योत्स्यते स त्वया क्रुद्दस्तदा वाणेन घातय ॥८६॥  
 अनेनैकेन वाणेन क्षणादेव मरिष्यति । तं हत्वा लवणं क्ररं तद्वने मधुसंज्ञिते ॥८७॥  
 निर्माय मथुरानाम्नी नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुवाहुं वै पत्नीम्यां वालकैः सह ॥८८॥  
 यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिष्पुदन । संस्याप्य दयिताम्यां च सैन्येन वालकैः सह ॥८९॥  
 ततो ममान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिष्पुदन । अश्वानां पंचसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥९०॥  
 गजानां घट्चतान्येव पत्तीनामयुतत्रयम् । आगमिष्यन्ति त्वत्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥  
 आगते त्वयि पश्चाद्वि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गंतुमिच्छामि तस्मात्वं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥  
 इत्युक्त्वा मूर्ख्यवद्वाय शत्रुघ्नं रघुनन्दनः । ग्रेष्यामास तैर्विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥९३॥  
 शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं ययौ । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोष्यात्मनः प्रियाम् ॥९४॥  
 अग्रे संप्रेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुवाहुयूपकेतू तौ स्वस्वस्त्रीम्यां च वालकैः ॥९५॥

है । मुनिश्रेष्ठ च्यवनवी वात सुनकर रामने कहा—हे ऋषियों ! आप लोग मत डरे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आधमको जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणासुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले—शत्रुघ्न ! आज मैं तुम्हारा अभिषेक करके तुम्हें मथुरा राज्यको भेजूँगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे अपने चरणोंसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही वात भरतसे कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८-८१ ॥ तब रामने सुवाहु और यूपकेतुको तैयार करके अनेक ग्राहणोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नको अपने नामसे अङ्गिकृत बाण देते हुए कहा कि लोगोंके लिए कांटकस्वरूप लवणासुरको तुम इसी बाणसे ज्ञान भरमें उसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्हने वृत्रासुरको मारा था । वह लवणासुर सदा घरमें उस त्रिशूलका पूजन करके जङ्गलमें पशुओंको मारनेके लिए चला जाया करता है । सो तुम ऐसे ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह बनको चला गया हो । उसके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह बनसे न लौट आये । जब वह आये तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके युद्ध शुरू कर दो । वह भी तुरन्त कोधातुर होकर लड़ने लगेगा । तब तुम इसी बाणसे उसे ध्यानभरमें मार डालोगे । उस दुष्ट लवणासुरको मारकर मधुवनमें ॥८२-८७॥ यमुना नदीके तटपर मथुरा नामकी नगरी बसा तथा उसमें स्त्री-बच्चों समेत सुवाहुको बिठालकर विदिशा नगरीमें बच्चों तथा सेनाके साथ जाकर यूपकेतुको राजगहीपर बिठा देना । यह सब काम करके हे शत्रुनिष्पुदन ! तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पांच हजार घोड़े, ढाई हजार रथ, छः सौ हायियाँ और तीस हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजता हूँ । जब तुम वहाँसि लौट आओगे, तब मैं एकदा फिर राजाओंको जोतनेके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८-९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका मार्या सूधा और अनेकशः आशीर्वाद देकर उन ग्राहणोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रामकी दी हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने उच विप्रोंके द्वाय

प्रेषयामास सैन्यैश्च दासीदासैश्च गोधनैः । शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥  
हत्वा तं लवणं वेगान्मयुरामकरोत्पुरीम् । स्फीतान् जनपदांश्चके मायुरान्दानमानतः ॥९७॥  
मयुरायां सुवाहुं तं स्थाप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्युपकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥  
संस्थाप्य सैन्यैः शत्रुघ्नो मयुरायां कियदिनम् । स्थित्वा सुवाहवं मूर्तिं तदा तुष्टो ददी सुखम् ॥९९॥  
अद्यापि मयुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते । शत्रुघ्नोऽपि ततः सैन्यैः शीघ्रं रामांतिकं ययौ ॥१००॥  
सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामास सादरम् । अथैकदा स भरतः कैकेयीनन्दनो महान् ॥१०१॥  
युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽग्रात्ससैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गंधर्वनायकान् ॥१०२॥  
तिष्ठः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः । पुष्करं पुष्करात्वत्यां पूर्वमेवाभिषेचितम् ॥१०३॥  
अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सेनया । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दासदासोजनार्थैः परिवेष्टितम् ॥१०४॥  
ततो मृहूर्ते भरतस्तथं तक्षशिलाहृये । नगरे स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥  
अयोध्यायां पूर्वमेव महामंगलपूर्वकम् । स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थी तक्षशिलाहृये ॥१०६॥  
उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गत्वा मछान्विनिजित्य दुष्टान्सर्वापिकारिणः ॥१०७॥  
पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥  
द्वावंगदचित्रकेतु महामञ्चपराक्रमौ । मयाभिषेचितीं वीरौ स्त्रीभ्यां पुत्रवलैर्युतौ ॥१०९॥  
द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नके । स्थापयित्वा तयोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥११०॥  
रामाज्ञां स पुरस्कृत्य गजाश्ववलवाहनैः । गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् गजाश्वऽङ्गदनामकः ॥१११॥  
धनरत्ने चित्रकेतु स्थापयामास देहजौ । स्वस्वस्त्रीभ्यां वालकेशं दासीदासर्वलान्विती ॥११२॥  
सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः समाहृय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे-आगे शत्रुघ्नको और पांच्च स्त्रियों-वाल्यों समेत सुवाहु एवं यूपकेतुको उपर्युक्तसंस्थिक सेनाके साथ भेज दिया । वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नने ठीक बैसा ही किया, जैसा रामने कहा था । इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणासुरको मारकर मयुरा नगरी बसायी । मयुरावासियोंको अनेक प्रकारका दान-मान देकर मयुराको कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगरी बना दी । शत्रुघ्नने एक विशाल सेनाके साथ सुवाहुको वहाँकी गदीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रों समेत यूपकेतुको अपने साथ लेकर विदिशा नगरीको प्रस्थान कर दिया ॥९४-९५॥ वहाँ पहुँचकर यूपकेतुको गदीपर बिठाया । इसके बाद फिर मयुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे । एक रोज प्रसन्न होकर शत्रुघ्नने वह कपिलवाराहकी मूर्ति सुवाहुको देदी । आज भी मयुरामें वह मूर्ति विद्यमान है । इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाके साथ रामके पास अयोध्या आये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको मयुराका सब समाचार सुनाया ॥९६॥१००॥ एक समय कैकेयीनन्दन भरत अपने मामा युवाजितके बुलावेपर रामकी आज्ञासे बहुतेरे सैनिकोंके साथ ननिहाल गये । वहाँ गन्धवोंको मारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विभक्त करके दो पुरी बसायी । वहाँपर पूर्वसे ही अभियक्त पुष्करको राजगदीपर बिठाला । तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥१०१-१०४॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामकी नगरोंमें अभियक्त करके बिठाला । यह सब काम करके भरत अयोध्या लौट आये और फिर पहलेकी तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे । इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ । वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मल्लोंको जातकर अंगद तथा चित्रकेतु इन दोनों बेटोंकी, जिनका अभिषेक मैं पहले ही कर चुका हूँ, वहाँकी गदीपर बिठाल दो । वहाँ दो पुरी बसाकर गज-वाजि तथा बनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥१०५-११०॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनों पुत्रोंको साथ लेकर बहुतेरी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और बातको बातमें

अथवा जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत् । ततस्तंगेणकेद्दत्तो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥  
तं श्रुत्वा तान् पुनः पूज्य वर्वान् रामो व्यसज्जयत् ।  
ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं लक्षणं पुरतः स्थितम् ॥११५॥

अवनिस्थान्तपान् जेतुं सोऽहं गच्छामि पाथिवैः । विमानेनैव भच्छामि सेनां चोदय सत्वरम् ॥११६॥  
नानाशख्खाणि यंत्राणि वाहनानि समंततः । स्थापयस्व विमानेऽद्य शतधन्यः शतशो वराः ॥११७॥  
धनधान्यत्रुणादीनां संग्रहं कुरु पुष्पके । पुरीं गोप्तुं सुमंत्रोऽस्तु सैन्येन परिवेष्टितः ॥११८॥  
एवमाज्ञाप्य सौमित्रिं श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रियर्था रामेण शिक्षितः ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
पूर्वार्द्धे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामकी भारतवर्षपर विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो रहः सीतां स्वोद्धोगमवदच्छनैः । अवनिस्थान्तपान् जेतुं पुत्राभ्यां चन्द्रुभिर्नृपैः ॥ १ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी ग्राह लज्जिता । नाहं त्वद्विरहं सोहुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥  
त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं यास्यामि जगतां प्रभो । तथेत्युक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे सर्वा उमिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥  
कर्तुं रामसमुद्गोगं पुत्राभ्यां चन्द्रुभिर्नृपैः । जानकीं ग्राशेयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥  
स्वस्वकांतवियोगं च सोहुं नैव शमा वयम् । सीता तासां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

शत्रुओंको परास्त करके गजाश्वपुरमें अङ्गदको तथा घनरलपुरमें चित्रकेतुको विठाल दिया और वहाँसे लौट-कर लक्षण फिर रामको सेवामें लग गये । इसके अनन्तर रामने ज्योतिषियोंको बुलाकर उनकी पूजा की और पृथ्वीविजय करनेके लिए शुभ मुहूर्तं पूछा । उन गणकोने भी रामको बहुत ही बड़िया मुहूर्तं बताया ॥ १११-११४ ॥ मुहूर्तं मुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्षणसे कहा—मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनेके लिए विमानसे यात्रा करूँगा । तुम जाकर सेनाको तैयार करके भेजो । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और संकड़ोंकी संहयामें अच्छी-अच्छी तोपें लेकर मेरे विमानमें रखवाओ । खर्चके लिए घन-धान्य तथा घास आदिका ठोकसे प्रबन्ध करके पुष्पक विमानमें रखवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ सुमन्त्र यहाँपर ही छोड़ दिये जायेंगे ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने रनिवासमें चले गये और लक्षण रामके आज्ञानुसार सेना आदिकी तैयारीमें लग गये ॥ ११७-११८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेज-पाण्डेयविरचितं ज्योत्स्ना'भाषाटोकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे—इसके पश्चात् राम एकान्तमें सीतासे बोले कि मैं अपने पुत्रों तथा वान्धवों-को साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी तो लज्जित होकर सीताने रामसे कहा—हे रघुनन्दन ! मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताको माँग स्वीकार कर ली ॥१-३॥ यह खबर धीरे-धारे उमिलादिक स्त्रियों तथा कुश-लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रायंना की कि आप हमको भी अपने साथ ले चलें । हम भी अपने-अपने पतियोंका वियोग सहन करनेमें असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे

रामाज्ञया तदा सर्वास्तोपयन्ती वचोऽव्रीत् । आगंतव्यं मया माकं युध्माभिनिश्चेन हि ॥ ७ ॥  
 गच्छध्वं स्वीयगेहानि सर्वास्तुष्टा गतज्वराः । एवं सीतारचः श्रुत्वा तदा ताः कंजलोचनाः ॥ ८ ॥  
 सीतां नत्वा ययुः सर्वाः सन्तुष्टा मुदिताननाः । स्वस्वगेहानि देवेन रुक्षन् पुरग्निःस्वनाः ॥ ९ ॥  
 अथ रामस्तु तां रात्रि निनाय सीतया सुखम् । ब्राह्मे मुहूर्ते श्रुत्वा स वन्दिगातं मनोरमम् ॥ १० ॥  
 रामः प्रबुद्धस्तु जवाल्कुतशौचादिस्तिक्यः । स्नात्वा नित्यांत्रेधिं कृत्वा कृत्वा शंभोः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥  
 कथां पौराणिकां श्रुत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगविधानं च संपूज्य गणनायकम् ॥ १२ ॥  
 कृत्वाऽभ्युदयिकं श्राद्धं घृतश्राद्धं सविभ्नरम् । कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुरद्रुमम् ॥ १३ ॥  
 मणिद्वयं पृथक् पूज्य संवेः कृत्वा तु भोजनम् । घृत्वा वस्त्राणि शस्त्राणि वदूध्वा मातः प्रणम्य च ॥ १४ ॥  
 ययौ स शिविकारूढः पुष्पक वन्धुभिर्नृपैः । पुत्राभ्यां सचिवैः सैन्यैः सेवकैर्वाहीनादिभिः ॥ १५ ॥

यानमारुरुहुः सर्वाः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥ १६ ॥

कौसल्याद्या मातरश्च तस्थुर्यनि यथासुखम् । यात्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुरा ॥ १७ ॥  
 ते वर्णिता मया तड्डध्युनाऽसीच्छुभा पुनः । तदा निनेदुवर्यानि तष्टुर्मार्गधादयः ॥ १८ ॥  
 ननृतुर्वर्ननार्यश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । अथ रामोऽव्रीद्यानं गच्छ पूर्वदिश प्रति ॥ १९ ॥  
 तथेत्युक्त्वा पुष्पकं तद्यात्राकाशवर्तमना । नत्वा रामं सुमंत्रोऽपि तस्थो पुर्या यथासुखम् ॥ २० ॥  
 पूर्वदेशे नृपाः संवेश्रुत्वा रामं समागतम् । प्रत्युज्जग्म राघवं द्रवद्वकरसंपुटाः ॥ २१ ॥  
 प्रणेमुस्ते रमानाथं नानोपायनपाणयः । पूजयामास श्रीरामं नीत्वा राज्यं निजं निजम् ॥ २२ ॥  
 रामाज्ञया समन्याश्च तस्थुर्यनि नृपोत्तमाः स्वकांशादीनि रामाय समर्प्य स्थिरमानसाः ॥ २३ ॥  
 मागधान् समतिक्रस्य विमानेन रघृत्तमः । पश्यन्नानाविधान् देशान् भूरिकीर्तेः पुरं ययौ ॥ २४ ॥

सलाह की । फिर रामके आज्ञानुसार संता सबको प्रसन्न करता हुई कहने लगी—तुम लंग भी मेरे साथ चलो । अब कोई चिन्ता मत करो और अपने अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो । इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल सरीखे नेत्रोंवाली उन स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहले नूपुरोंका झंकार करती हुई अपने महलोंको चली गयी ॥ ३-६ ॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ वह रात्रि मुखपूर्वक वितायी । जाह्नु मुहूर्तमें उन्होंने बन्दीजनोंके मुखसे गीत सुना तो जागे । तब शीघ्र शौचादि क्रियायें कीं और स्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् शिष्योंका विधिवत् पूजन किया ॥ १० ॥ ११ ॥ बादमें पौराणिकी कथाएँ सुनीं, अनेक प्रकारके दान दिये और अनेक उपचारोंसे नणवतिकी पूजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक श्राद्ध तथा घृतश्राद्ध करके कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं पारिजात वृक्ष तथा दोनों मणियोंका पूजन किया । इसके बाद अपनी समस्त माताओंका प्रणाम करके कपड़े पहने, अनेक प्रकारके शस्त्र बांधे और बन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ पालकोंमें सबार होकर पुष्पक विमानके पास जा पहुंचे ॥ १३-१५ ॥ वहाँ आगे पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा बाहनों समेत विमानपर पहले सीतादि स्त्रियाँ और कौसल्यादि माताएँ सवार हुईं । रामदासने कहा—हे शिष्य ! यात्राकाण्डमें मैं जिस प्रकार यानकी रचना कह आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ठीक उसी तरह इस यानका भी रचना थी । उनकी यात्राके समय अनेक प्रकारके बाजे बजे और माघव तथा बन्दीजनोंने स्तुति की, वेश्यायें नाचीं और गायकोंने गाने गाये । इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनेकी आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब पुष्पक रामके आज्ञानुसार आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला । रामको प्रणाम करके सुमन्त्र अद्योद्यापुरीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ जब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आये हैं तो वहाँके बड़े बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुंचकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और अनेक प्रकारकी भेंटें उनकी सेनामें उपस्थित कीं और विधिवत् पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त काश आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तेनातिपूजितो रामः अनैयानेन दक्षिणाम् । यथाविधितटेनैव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥  
 कृष्णातोरप्रदेशांस्तान् पश्यन् रामः शनैः शनैः । कांति यथौ विमानेन कंचुकंठोऽपि राघवम् ॥२६॥  
 पूजयामास विधिवत्कोशाद्यैः सुहृदं निजम् । आरवारं महादेशं तथा तच्चोलमण्डलम् ॥२७॥  
 समतिक्रम्य श्रीरामस्तत्रस्थैः पूजितो नृपैः । यथौ स केरलान् देशानांत्रं कर्णाटकं यथौ ॥२८॥  
 पूजितो विजयेनापि विजयापुरवासिना । कोकणस्थान्नृपान् जित्वा महाराष्ट्रं यथौ प्रस्तुः ॥२९॥  
 दुर्गं देवगिरिं नाम चकार स्ववशं क्षणात् । तथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्यकरोद्दिष्टुः ॥३०॥  
 कृत्वा विराटदेशं च देशान् विध्याचलाश्रितान् । पश्यन् यथौ स रेवायास्तीरणोकारमीश्वरम् ॥३१॥  
 मालवस्थान्नृपान् जित्वा यथौ रामः स उज्याम् । उग्रवाहुं रणे जित्वा यथौ हैहयपत्तनम् ॥३२॥  
 जित्वा प्रतीपं श्रीरामः स यथौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्नन्तरे सोमवंशजास्ते त्रयो नृपाः ॥३३॥  
 पुरुरवास्तथागच्छाल्पसैन्येन वै पुरात् । रामेण संगरं कर्तुं नानाचाहनसंस्थितः ॥३४॥  
 यद्युववधुः शख्ताणि पुष्पकस्थं रघूत्तमम् । युद्धं बभूव तैः साकं त्रिदिनं रोमहर्षणम् ॥३५॥  
 तदासीद्रक्तपूर्णा सा जाह्नवी पापनाशिनी । चतुर्थं दिवसे रामस्तान् जित्वा तत्पुरं यथौ ॥३६॥  
 सुषेण वानराणां च वैद्य वानरसेनया । गजाह्नये पुरे स्थाप्य तांस्त्रीन् सोमान्वयोद्भवान् ॥३७॥  
 कारागृहस्थितान् कृत्वा सुग्रीवाद्यं रघूत्तमः । यथौ स मथुरां द्रष्टुं सुवाहुपरिपालिताम् ॥३८॥  
 दृष्ट्वा सुवाहुं राज्यस्थं विदिशानगरं यथौ । यूपकेतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥  
 कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहायसा । मरुं च समतिक्रम्य यथौ गुर्जरमुत्तमम् ॥४०॥  
 प्रभासं च ततो गत्वा मल्लदेशं यथौ ततः । गजाश्वनगरे दृष्ट्वागदं राज्यपदस्थितम् ॥४१॥  
 धनरत्नेश्चत्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । आनते स यथौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

अपनी सेनाके साथ पुष्पके विमानपर सवार होकर रामके साथ-साथ चले ॥ २३ ॥ मगध देशको लांघकर राम रास्तेके अनेक देशोंको देखते हुए भूरिकीति नामके राजाकी राजधानीमें पहुँचे ॥ २४ ॥ उनसे पूजित होकर विमान द्वारा धीरे-धीरे दक्षिण दिशाको चले और समुद्रतटसे चलकर द्रविड़ देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥ कृष्णा नदीके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए राम कांतिदेशमें जा पहुँचे । वहाँ कम्बुकण्ठ नामके राजाने उनका आदर-सत्कार किया और फिर वहाँसे आरवार महादेश और चोलदेशको लांघकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ वहाँकि राजाओंसे पूजित होते हुए केरल देशको गये । वहाँ विजयपुरमें रहनेवाले विजय नामके राजासे पूजित होकर कोंकणदेशमें रहनेवाले राजाओंको परास्त करके महाराष्ट्रमें पहुँचे ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ देवगिरि नामके किलेको क्षणभरमें अपने अधीन करके और भी वहुतसे किलोंको अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विराट देशमें जाकर विध्याचलके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए रेवातटसे ओंकारेश्वर पहुँचे । वहाँ मालव देशके राजाओंको जीतकर उज्जयिनों गये । वहाँपर राजा उग्रवाहुको जीतकर हैहयनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतकर श्रीरामचन्द्र हस्तिनापुरी पहुँचे । तभी सोमवंशी तीन राजे तथा पुरुरवा नामक राजा थोड़ासो सेना लेकर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए आ पहुँचा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँ पहुँचते ही पुष्पक विमानपर वैठे हुए रामके ऊपर उन लोगोंने शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी । तब उनके साथ रामने तीन दिन तक लोमहर्षण युद्ध किया । उस समय जाह्नवी रत्तसे पूर्ण हो गयी थी । चौथे दिन रामने उनको परास्त करके उनकी पुरीपर अधिकार कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुरीमें वानरोंके वैद्य सुषेणको गढ़ीपर विठाकर सोमवंशी राजाओंको जेलमें ठैस दिया और वहाँसे सुवाहु-परिपालित मथुरा पुरीको देखनेके लिए गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुवाहुको राज्यगढ़ीपर आसीन देखकर विदिशा नगरीको गये । वहाँ यूपकेतुने रामका विधिवत् आदर-सत्कार किया । वहाँसे कुरुक्षेत्र-पुष्कर आदि तीर्थोंको देखकर आकाशमार्गसे रामचन्द्रजी मरुदेशको लांघते हुए गुजरात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मल्लदेश गये । वहाँ उजाएवपुरमें अङ्गदको राज्यासनपर देखकर धनरत्न नामक नगरके राज्यासनपर वैठे हुए चित्रकेतुको देखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्थं पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाहृये ॥४३॥  
 तक्षं दृष्टा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युधाजिता पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥  
 ययौ विहायता शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जित्वा यवनदेशस्थान्त्रपान् सर्वान् रघृत्तमः ॥४५॥  
 पश्यन्नानाविधान् देशांस्ताम्रदेशं ययौ ततः । ततो मायापुरीं गत्वा कलापग्राममाययौ ॥४६॥  
 नरनारायणौ दृष्टा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपासकं नारदं च वर्षं भारतसंज्ञके ॥४७॥  
 तान्नत्वाऽर्च्य रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेशं रणे हत्वा नत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥  
 भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुण्यदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविस्तृतम् ॥४९॥  
 अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां सहस्राभ्यां रम्यं विपुलमुत्तमम् ॥५०॥  
 त्रिसप्तिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥  
 दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
 भारतवर्षजयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( रामद्वारा जम्बुदीप-विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिसिद्धराममूर्तिदेवतोपास्य-  
 विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह वाच दर्शितनाकौतुकस्तद्वर्षनृप-  
 समूहपरिवेष्टिः पुष्पकसमधिष्ठितो नववाद्यस्वनपुरःसरः पुरतोऽनुसमार ॥ २ ॥ अथ हेमकूट नाम  
 पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

इसके बाद आनंद देशको गये । वहाँवालोंने रामका अच्छी तरह सल्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-  
 के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-  
 कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युधाजितने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके  
 बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके  
 देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी होते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके  
 उपास्य नरनारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम  
 करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत  
 पुण्यदेश ( पूना ) को गये ॥ ४७-४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार  
 योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताको भी वहाँका कौतुक  
 दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-  
 विरचित “ज्योत्स्ना”भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किम्पुरुष नामक देशको गये ।  
 जहाँ बहुतसे देवताओं तथा हनुमानजीकी मूर्तिके साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस  
 देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे-बैठे आगे  
 बढ़े ॥ २ ॥ जातेन्जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत

शिखरविराजमानं पुष्पकसमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम ॥ ३ ॥ अथ त्रृतीयं वर्षं नाम नवसहस्र-  
योजनपरिमितं नृसिंहोपास्यप्रह्लादोपासकविराजमानमतिकमनीयं दशरथतनयः समनुययौ ॥ ४ ॥  
तद्वर्षवासिनृपवर्द्धन्दत्तमुलसंग्राममम्यादितजयश्रीरिपुकोशादिपूजितनृपदयिताराऽर्थातिकनीराजितजनक-  
जादशितमानकौतुकध्वजपताकातोरणधंटाकिंकिणीविराजमानपुष्पकमधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपज-  
गाम ॥ ५ ॥ अथ निषधं नाम पर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं नवतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स  
रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार ॥ ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमंतरश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम  
चतुर्थं वर्षं चतुर्खिंश्चत्सहस्रयोजनपरिमितं स रघुनायक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वाव मेरोराश्रय-  
भूते मेरोर्देखणदिक्षिते मेरुमदरपर्वतेऽतिविराजमाने समुन्नतजंबृक्षमतिविशालं जंबृद्धीपाख्यसूचकं  
सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचंद्रोऽवनिदुहित्रे दर्शयामास ॥ ८ ॥

ततो मेरुपश्चिमतो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विराजमानकदंबृक्षमतिसमुन्नतमतिविपुल-  
मतिकमनीयं पुष्परंजितं स रघुनायको नेत्रविषयं चकार ॥ ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतस्तस्याश्रयभूते  
कुमुदनाम्नि पर्वते विराजमानमतिसमुन्नतं वटबृक्षमतिविशालमतिस्थूलं स कौसल्यानन्दनो नृपसमूह-  
विराजितो जनकजाये दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतस्तस्याश्रयभूते मंदरपर्वते विराजमानमति-  
विशालमतिसमुन्नतमतिस्थूलं सहकारबृक्षमतिकमनीयं सुपकमधुरघटतुल्यफलभारविनग्रं पश्यन्स  
रघुवंशभूपणो जनकजाजानिः ॥ ११ ॥ तत्रेलावृते विराजमानसंकर्षणोपास्यरुद्रोपासकं स रघुनायको  
दयितासहायः शिरसा प्रणनाम ॥ १२ ॥ तद्वर्षवासिनृपप्रवद्धकरकमलशिरोवंदितपदजलरुहद्वंद्वः स  
रघुनायकः पूर्वदिशमनुजगाम ॥ १३ ॥ अथ स गंधमादनपर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं चतुर्खिंश्चत्सह-  
स्रयोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्राश्र्वं नाम पञ्चमं वर्षमेकत्रिंश्चत्सहस्रयोजनदीर्घं  
हयग्रीवोपास्यभद्राश्र्वोपासकसमधिष्ठितं स रघुनायक उपजगाम ॥ १५ ॥ तत्र कचित्संग्रामस्तद्वर्ष-  
विराजमाननृपसमूहेभ्यः कचिच्छरणागतप्रवद्धकरयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्लभमानः स

तथा इक्यासी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रकारकी घातुयें विद्यमान् थीं। जिसके ऊंचे-ऊंचे शिखर  
आकाशसे बातें कर रहे थे ॥ ३ ॥ उसके आगे तोसरे देशमें गये, जो नृसिंह भगवान् के भक्त प्रह्लादका वसाया  
हुआ था ॥ ४ ॥ उस देशके राजाओंसे तुमुल संग्राम करके राम विजयश्री लाभ करते हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति  
अपने अधीन करके सीताको मार्गमें विविध प्रकारके कीनुक दिलाए हुए कितने ही छंडा, पताका, तोरण,  
धंटा और किंकिणीसे सुशोभित पुष्पकविमानपर बैठे हुए आगे बढ़े ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार  
योजन विस्तृत तथा नौ हजार योजन लम्बे अति सुन्दर निषध पर्वतपर पहुंचे ॥ ६ ॥ उसके आगे चारों  
ओर सुवर्णपर्वतोंसे परिवेष्टित इलावृत नामक चतुर्थं देशमें गये। जो चौवालिस हजार योजन लम्बा-  
चौड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ सीताको सुमेरु पर्वतके दक्षिण ओर खूब ऊंचे और अनिशय विशाल जम्बू-  
द्वीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भारी जामुनके बृक्षको दिखाया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर  
सुपाश्र्वं पर्वतपर बड़े भारी कदम्ब बृक्षको देखा, जो बहुत ऊंचा और फूलोंसे लदा हुआ था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर  
मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सर्वस्थूल एक वटबृक्ष सीताको दिखाया ॥ १० ॥  
मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बे चौड़े, खूब पके तथा घड़के बराबर फूलोंसे  
लदे एक आच्छबृक्षको देखा ॥ ११ ॥ उस इलावृतमें बलरामजीके पूज्य रुद्रभगवान् को सीताके साथ रामने  
प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाओंने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम वहाँसे  
आगे पूर्व दिशाकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥ तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर पहुंचे, जो दो हजार योजन  
चौड़ा तथा चौतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्राश्र्व नामक पांचवें देशमें पहुंचे, जो एक-  
तीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्र्व भगवान् रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजाजानिरुपययौ परिवृत्त्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवंतं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्ख्निशत्सहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स जनकजारज्जनो नयनगोचरं चकार ॥ १७ ॥ तत्पश्चिमतः केतुमालं नाम षष्ठं वर्षं एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्ख्निशत्सहस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुजगाम ॥ १८ ॥ तद्वर्षनृपसमूहसुकुटावंतसपरागपूजितचरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकस्थोऽतिमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार ॥ २० ॥ अथ रम्यकं नाम सप्तमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उपजगाम ॥ २१ ॥ तत्रस्थैरवनिपालैः स्वकोशादिपूजितः स रघुनायकः सीतांरञ्जयन् पुरतोऽनुससार ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स स्वलोचनविषयं चकार ॥ २३ ॥ अथ हिरण्मयं नामाष्टमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं कूर्मोपास्यार्यमोपासकमधिष्ठितमतिकमनीयं स समनुययौ ॥ २४ ॥ तद्वर्षवासिनृपदयिताशिरोभूषणमणितेजोदापितजानकीचरणारविंदयुगलमीक्षमाणः स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्तं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिसप्ततिसहस्रयोजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अथोत्तकुरुवर्षं नवमं नवसहस्रयोजनपरिमितं वाराहोपास्यभूम्पुशासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रस्तमनुययौ ॥ २७ ॥ तद्वर्षचारिरणत्कंपितावयवनृपमहावंतममणिमुक्ताविराजितपदजलरुहद्वंद्वः स रघुनायको मुदमवाप ॥ २८ ॥ अथ रामो लत्रं जम्बूद्वीपतिं करिष्यामीति निश्चित्य कियदिनं तदधिकारे विजयं नाम स्वमन्त्रिणं स्थापयामास ॥ २९ ॥ एतेषां जम्बूद्वीपांतर्गतवर्षणां तथा सर्वद्वीपांतर्गतवर्षणां यानि यानि नामानि

राजाओंके साथ रामने संग्राम किया और वहुतोंको शारणमें आ जानेपर क्षमा प्रदान किया । तदनन्तर सबसे कर लेते हुए वहांसि लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर बढ़े ॥ १६ ॥ इसके बाद मेरु पर्वतके पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौतीस हजार योजना लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुमाल नामक छठे देशमें पहुँचे, जो इकतीस हजार योजन विस्तृत एवं चौतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी उपासिकाएँ रहती थीं ॥ १८ ॥ जब उस देशके राजाओंने अपना मुकुटविभूषित मस्तक रामचन्द्रजीके चरणोंपर रख दिया तो सीता तथा रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेरु पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा नव्वे हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रमणक नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नौ हजार योजन विस्तृत था । वहाँ मत्स्यभगवान् के बहुतसे उपासक लोग रहा करते थे ॥ २१ ॥ वहाँके राजाओंने अपना कौश आदि देकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताकी प्रसन्न करते हुए आगे बढ़े ॥ २२ ॥ उसके उत्तर ओर रामने श्वेत पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा इव्यासी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्मय नामके आठवें देशमें पहुँचे, जहाँ अधिकांश कूर्म भगवान् तथा सूर्य नारायणके उपासक लोग रहा करते थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंने जब जानकीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजाको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा तिहत्तर हजार योजन लम्बे शृङ्गवान् नामक पर्वतको देखा ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर नवें देश उत्तर कुरुमें पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौड़ा था । वहाँ विशेष करके वाराह भगवान् के उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थीं ॥ २७ ॥ जब उस देशके राजे संग्रामभूमिमें भयसे कौपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहांसि लौटकर अवोध्या पहुँचनेपर लदको जम्बूद्वीपका अधिपति बनाऊँगा । तबतक कुछ दिनोंके लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँकी देख-भाल करनेके लिए छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब श्रिवक्रत नामक राजाके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियत्रतनृपपौत्रनामस्तुचितानि सन्ति । तेषु ये ये नृपा जायंते ते तद्वर्षनामस्तुचिता एव भवत्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नोच्यन्ते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराभ्यां लक्ष्योजनपरिमितमतिकमनीयं समवर्तुलं पुष्करपत्रोपमं नववर्षमणिडतं स रघुनायकः स्ववशं चकार ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिव्यालानां संति । तत्पालकाः सुराधीशवह्नियपनिर्णतिवरुणवायु-कुवेरेशास्ते सर्वे ममाज्ञां परिपालयन्त्विति निश्चित्य स रघुनायकस्तान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥ ता अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्वद्विसहस्रयोजनपरिमाणेनायामविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥ मेरुलक्ष्योजनमुक्तो मूर्धिन द्रात्रिशत्सदस्योजनविततो मूले पोडशसहस्रयोजनविततश्चाधः पोडश-सहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रनिष्ठतुरशीतिसहस्रयोजनमितो भूम्या वहिर्घर्त्तरपुष्पवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥ तत्र मेरुपर्वताग्रेऽष्टदिव्यालपुरीणां भूम्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥ सर्वे वर्षमयदीभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनसमुच्चता ज्ञातव्याः ॥ ३६ ॥ वर्षदीर्घता पर्वतसमाना ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपस्योपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशंति ॥ ३८ ॥ सगरात्मजरथान्वेषण इमां अर्हां परितो निखनद्विरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणकः अंदरहरिणः पाञ्चजन्य सिंहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लंकां विना सप्तसु यदा यद्यत्समीपं तदा तत्र तत्र गत्वा तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् श्रीरामचन्द्रः स्ववशान्वकार ॥ ४१ ॥ भारतेलाभृतवर्षाभ्यां विना सप्तसु वर्षेभ्यसंख्याता नद्यो गिरयश्च संति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥ ४२ ॥ अथेलाभृतवसंस्थिता मुख्यनद्य एवोच्यते ॥ ४३ ॥ अरुणोदाजबुनदीपयोदधिवृतमधुगुडान्नांवर-शश्यासनाभरणसंज्ञा नदास्तदा पञ्च मधुधारानद्यस्तथा सीताऽलकनंदाचच्छुभृद्रेति मेरोरघश्चतुदिक्षु पतिता जाह्नवीभेदाश्रत्वार एवमिलाभृतनद्यः ॥ ४४ ॥ तासु सीता पूर्वसमुद्रं चच्छुभृद्रा पश्चिमसमुद्रं भद्रोचरसमुद्रमलकनंदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षे जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

ये । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विद्यात था । इसीलिये सबका अलग-अलग नाम मैं नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बे-चौड़े, अतिशय सुन्दर एवं वर्तुलाकार कमल-पत्रके समान विराजमान जम्बूद्वीपको उन्होंने जीत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे आठ लोकपालोंको आठ पुरियाँ हैं । वे सब भी भेरी आज्ञाका पालन करें । इसी विचारसे रामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ वे आठों पुरियाँ अलग-अलग अहाई-अहाई हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं । मेरु पर्वत एक लाख योजन उँचा है और उसकी चोटीपर बत्तीस हजार योजन लम्बी-चौड़ा मैदान है । नीचे सोलह हजार योजन विस्तार है और सोलह ही हजार योजन वह पृथ्वीके भीतर समाया हुआ है । चौरासी हजार योजनकी लम्बाई-चौड़ाईवाला वह पर्वत घतूरके फूलकी ज़रह दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पूरियोंमें ज्ञाहापुरीकी लंबाई-चौड़ाई विस्तारमें ठीक दस हजार योजन है ॥ ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर वे आठों पुरियाँ हैं, वे प्रत्येक पर्वत दस-दस दजार योजन ऊचे हैं ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए ॥ ३७ ॥ जंबूद्वीपके भी आठ उपद्वीप हैं ॥ ३८ ॥ जिस समय महाराज सगरके साठ हजार पुत्र समुद्रको खोद रहे थे, तब उन्होंने ही इन द्वीपोंकी रचना की थी ॥ ३९ ॥ उन आठों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्र, आवर्त, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर शेष सब द्वीपोंमें जाकर वहाँके राजाओंको रामने अपने वशमें कर लिया ॥ ४१ ॥ भारत और इलावर्तको छोड़कर सातों देशोंमें असंख्य पर्वत और नदियाँ हैं, जिनका विस्तार बतलानेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४२ ॥ इलावृत द्वीपमें जो मुख्य-मुख्य नदियाँ हैं, उन्हें ही हम बतलाते हैं । वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणोदा, जंबुनदी, दूध, धी, मधु, गुड़, अश्व, वस्त्र, शश्या, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पांच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें सदा मधुकी धारा बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा तथा जाह्नवी ये पांच नदियाँ निकली हैं

वर्षे सरिच्छैलः सन्ति वहवः ॥ ४६ ॥ तदथा मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटः ऋषमः कुटकः सह्यो देवगिरिकृष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधरो विष्णुः शक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रेवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितं प्रभवा नदा नद्यश संत्यसंख्याताः ॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्त्विनी शक्तरावता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी निविन्ध्या पयोध्णी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिः ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृष्ट्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुधन्वा वितस्ता असिकनी विश्वेति महानद्यः ॥ ४८ ॥ एवं शिष्य रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्ववश कृत्वा लक्ष्योजनविस्तीर्णं जंबुद्वीपपरिखोपमं समुच्छलं ध्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे  
पूर्वार्द्धं जंबुद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्ष्योजनमितं सप्तवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥  
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च हुपामकाः । द्वीपाख्याकुच्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्यमयः ॥ २ ॥  
यथाऽरामाद्विज्ञेयाः परिखाश्च समंततः । जंबुद्वीपाच्च क्षारोदाद्विद्वीपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमें से सोता पूर्व समुद्रमें, चक्षुभंद्रा पश्चिम समुद्रमें और अलकनन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती है ॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं ॥ ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधर, विष्णु, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रेवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पर्वत हैं, जिनकी तलाईं से बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं। जैसे— ॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्त्विनी, शक्तरावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निविन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती । सिंधु और शोण ये दोनों महानद हैं। वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृष्ट्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुधन्वा, वितस्ता, असिकनी और विश्वा ये महानदियाँ हैं ॥ ४८ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत लवणसमुद्र, जो कि जम्बुद्वीपको खाईके समान था, उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक दूसरे द्वीपमें जा पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्द्धं अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र अतिशय भनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे ॥ १ ॥ वहाँ सबके आराध्य देवता सूर्य और देवाराष्ट्रक ब्राह्मण थे। वहाँ सुवर्णका एक बड़ा-सा प्लक्ष ( पाकड़ ) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम पढ़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर खाई बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

मेरोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवाङ्गयम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहायसा ॥ ४ ॥  
 नदी यत्राकुणा नाम्नी सर्वपापप्रणाशिनी । तस्यां स्नात्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षं ययौ ॥ ५ ॥  
 तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमासीत्सुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चमासैश्च तैश्च पार्थिवसत्तमैः ॥ ६ ॥  
 पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकूटाचलं ययौ । वज्रकूटं महाश्रेष्ठं द्रुयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥  
 परस्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श मः । तं गिरिं पृष्ठुतः कृत्वा वर्षं यवयसं ययौ ॥ ८ ॥  
 नृम्णानदीजले स्नात्वा ययौ यावयसेश्वरम् । तेन संपूजितो रामस्ततस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥  
 सहितः पुष्पकेनैवमुषेद्देनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठुतस्तं सुभद्रं वर्षमाययौ ॥ १० ॥  
 आंगीरसीनदीतोये स्नात्वा स रघुनायकः । वर्षाधिपेन कोशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥ ११ ॥  
 ज्योतिष्मन्तं गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठुतः क्षणात् । शांतिवर्षेऽथ सावित्रीनदीतोये विगाह्य च ॥ १२ ॥  
 तद्वर्षेण नृपं जित्वा तथा तद्वर्षसंस्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥ १३ ॥  
 ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नात्वा रामः क्षेमपेन स्वकोशैः परिपूजितः ॥ १४ ॥  
 हिरण्यष्टीवनामानं गिरिं रम्यं विलंघ्य च । वर्षेऽमृते तन्त्रपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥ १५ ॥  
 ऋतंभरानदीतोये चकार स्नानमादरात् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठुतः पुष्पकेण हि ॥ १६ ॥  
 वर्षेऽभये तन्त्रपतिं क्षणाजित्वा रणे प्रभुः । सत्यंभरानदीतोये स्नात्वा स रघुसत्तमः ॥ १७ ॥  
 सुचंद्राख्यं नृपं प्लक्षद्वीपेशं तीक्ष्णसंगरैः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्वद्वीपपार्थिवैः ॥ १८ ॥  
 मणिकूटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणात् । इक्षुरसोदनामानं द्विलक्षयोजनं वरम् ॥ १९ ॥  
 तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्षस्य परिखोपमम् । तथा च शालमलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥ २० ॥  
 द्वीपाख्याकुच्च यत्रास्ति शालमली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्च सोमोऽस्ति तत्रस्यास्तदुपासकाः ॥ २१ ॥  
 विस्तारद्वीपमानानि दीर्घतायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कर्व्यंते पूर्ववन्मया ॥ २२ ॥

लवण-समुद्र घेरे हुए था ॥ ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्व ओर प्लक्षद्वीपमें शिवजीके नामका एक देश था । रामचन्द्रजी क्षणमात्रमें आकर्षमार्गसे वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥ वहाँपर सब पापोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी । जिसमें उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये ॥ ५ ॥ उस राजाके साथ रामका भवद्वार युद्ध छिड़ गया । पाँच महीनेतक धमासान युद्ध होनेके पश्चात् वहाँका राजा रामके वशमें आ गया और उसने उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकूटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनों देशोंकी सीमाका काम कर रहा था । उसको लौधिकर यवयस नामक देशको गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये । उसने रामकी पूजा की । इसके बाद रामने वहाँकी भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर विठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे । उसे देखकर वे सुभद्र देशको गये ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँ आंगिरसी नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहाँके राजासे मिले । उसने बहुतसे घनका व्यय करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका सत्कार किया ॥ ११ ॥ फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लौधिकर वे शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्णं पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका विधिवत् पूजन किया ॥ १२-१५ ॥ इसके अनन्तर ऋतंभरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लौधिते हुए राम अभय देशमें पहुँचे । वहाँके राजाको क्षणमात्रमें जीतकर सत्यंभरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा, जो प्लक्षद्वीपका शासक था, उसे भयानक युद्धमें हराकर वहाँके बहुत-से राजाओंको अपने साथ लेकर इक्षुरसोद नामके भयंकर समुद्रको पार किया । वह प्लक्षद्वीपकी साईंके समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शालमली द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था ॥ १६-२० ॥ वहाँ एक विशालका शालमली (सेमर) का

मेरोः पूर्वदिगारभ्य सर्वत्र क्रम उच्यते । सुरोचनं सौमनस्यं तथा रमणकं शुभम् ॥२३॥  
 देववर्षं पारिभद्रनामाप्यायनमनुन्तमम् । अविज्ञातं सप्तमं च, सप्त वर्षाणि वै क्रमात् । २४॥  
 अनूमती सिनीवाली तथैव च सरस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दः राका नद्य प्रकीर्तिः ॥२५॥  
 शतश्रुंगो वामदेवो कुंदश्च कुमुदस्तथा । पुष्पवर्षः पश्चमश्च सहस्रश्रृतिरुच्चमः ॥२६॥  
 स्वरसः पर्वताः सप्त ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु वर्षपालान् विजित्य सः ॥२७॥  
 जित्वा द्वीपेश्वरं रामः सुवाहुं मुदमाययौ । सुरोद च चतुर्लक्षमितं तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥  
 कुशद्वीपमष्टलक्षमितं रासो ययौ क्षणात् । तत्रोपास्यो जातवेदाः सर्वेषां द्वीपवासिनाम् ॥२९॥  
 द्वीपाख्याकुच्च यत्रास्ति कुशस्तवः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि कीर्त्यते सप्त वै मया ३०॥  
 वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सत्यव्रतं विविक्तमुन्तमम् ॥३१॥  
 वामदेवं सप्तमं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा नदी शुभा ॥३२॥  
 श्रुतिविन्दा देवगर्भा तथा चैव घृतच्युता । मंत्रमाला क्रमेण्य नद्यः सप्तसु वै क्रमात् ॥३३॥  
 चतुःशृङ्गश्च कपिलश्चित्रकूटो मनोरमः । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक ईरितः ॥३४॥  
 एते सीमासु वर्षाणां गिरयः सप्त वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु संस्थितान्पार्थिवोत्तमान् ॥३५॥  
 राघवः संगरे जित्वा लब्ध्वा चानुन्तमं यशः । कुशद्वीपपतिं जित्वा महासेनं तुतोप सः ॥३६॥  
 अष्टलक्षमितं तीर्त्वा घृतोदं सागरोत्तमम् । क्रौंचद्वीपं ययौ रामः पुष्पकेणातिभास्वता ॥३७॥  
 कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकुच्च यत्रास्ति क्रौंचनामा गिरिर्महान् ॥३८॥  
 यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिस्तद्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यतेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥  
 आमं मधुरुहं मेघपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधामानं च आजिष्ठं लोहितार्णं वनस्पतिम् ॥४०॥

वृक्ष था । इसीलिए वह देश शालमली द्वीपके नामसे विल्यात था । वहाँ चन्द्रदेव सबके आराध्य देवता हैं और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करते हैं । पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार कह आये हैं, उन्हींके अनुसार वह भी विस्तृत था । वहाँके जो देश हैं, अब उनको बतलाता हैं ॥२१॥ २२॥ मेरुके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहूँगा । जैसे—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥२३॥ २४॥ वहाँपर अनूमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ये नदियाँ हैं ॥२५॥ शतश्रुङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं, जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं । इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥२६॥ २७॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर बार लाख योजनके लगभग लम्बे-चौड़े सुरासमुद्रको लांघकर वे सुवादुके पास पहुँचे ॥२८॥ फिर क्षणमात्रमें राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लांघकर कुशद्वीप गये । उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके उपासक हैं ॥२९॥ द्वीपके नामको स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुशका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ है । अब वहाँके जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं—॥३०॥ वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विविक्त और सातवाँ वामदेव नामक देश है । उन सातों देशोंमें रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतिविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियाँ हैं । चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण और चक्र ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥३१-३४॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामक राजाको भी उन्होंने जीत लिया । इससे रामको प्रसन्नता हुई ॥३५॥ ३६॥ किर आठ लाख योजन विशाल घृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देवीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा क्रौंचद्वीप गये ॥३७॥ कुशद्वीपको अपेक्षा वह द्वीप दुगुना लम्बा-चौड़ा है । वहाँ उस द्वीपका नाम सार्थक बननेके लिये एक विशाल क्रौंच पर्वत है ॥३८॥ वहाँके समस्त निवासी वर्णके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

एतानि सप्त वर्षाणि ज्ञातव्यान्युत्तमानि हि । वर्द्धमानो भोजनश्च तथोन्वर्हणो महान् ॥४१॥  
 नन्दश्च नन्दनश्चेष्टः शर्वतोभद्र एव च । शुक्ला सप्ताचलाः प्रेक्षा सीमासु परमाः शुभाः ४२॥  
 अमृता अमृतौषा च तथा चैवार्थका शुभा । तथा तीर्थवती रम्या वृत्तिरूपवती तथा ॥४३॥  
 पवित्रवती सुपुण्या वै शुक्लेति सप्त कीर्तिः । सप्तवर्षेषु नवश्च स्नानात्पातकनाशनाः ॥४४॥  
 एतेषु सप्तवर्षेषु पार्थिवेभ्यो निजं प्रभुः । करमारं पृथगलब्ध्वा तैः सर्वैः परिपूजितः ॥४५॥  
 क्रौंचद्वीपपतिं युद्धे जित्वा तं कञ्जलोचनम् । दस्त्युप्रथतुरगः कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥  
 स्तुतो मागधवयैश्च नितर्वा शुदमाप सः । ततस्तीत्वा तु क्षीरोदं क्रौंचद्वीपसमं शुदा ॥४७॥  
 शाकद्वीपं ययौ रामो द्वात्रिशङ्खभसंमितश् । दीपाख्याकुच्चयत्रास्ति शाकवृक्षोऽतिरञ्जनः ॥४८॥  
 यत्रोपास्यो वायुरुपी हरिस्तद्वद्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥४९॥  
 पुरोजवं नाम वर्षं तथा तच्च मनोजवम् । पवमानं महच्छ्रेष्ठं धूम्रानीकं मनोमम् ॥५०॥  
 बहुरूपं चित्ररूपं विश्वाधार तथा स्मृतम् । एवं सप्तसु वर्षेषु नवश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥५१॥  
 अनघा च तथाऽयुर्दा चोभयसु इरेव च । तयाऽपराजिता पुण्या शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥  
 सहस्रश्रुतिरन्या सा प्रोक्ता निजश्रुतिस्तथा । एवं सप्तसु वर्षेषु सप्त नवः शुभावहाः ॥५३॥  
 उरुशृङ्गो बलभद्रस्तथान्यः शतकेसरः । सहस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानसः ॥५४॥  
 ईशानाः पर्वताः सप्त सीमास्वेते प्रकीर्तिः । एवं सप्तसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमैः ॥५५॥  
 पूजितो रघुनाथः स शाकद्वीपपतिं रणे । सुन्दराख्यं तृष्णं युद्धे सप्ताहोमिर्महावलम् ॥५६॥  
 जित्वा संपूजितस्तेन बादयामः स दुन्दुभीष् । तीत्वा तं दधिमण्डोदं द्वात्रिशङ्खभसंमितम् ॥५७॥  
 चतुःषट्टिलक्ष्मितं पुष्करद्वीपमापयौ । मेखलावत्तस्य मध्ये पर्वतं कंकणोपमम् ॥५८॥  
 मानसोत्तराचलाख्यं तं ददर्श रघुद्धहः । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्ते पूर्वे रमणकं शुभम् ॥५९॥

वहाँके देवता हैं । उस द्वीपमें भी बड़े-बड़े सात देश हैं । उन्हें बतलाते हैं—॥ ३९ ॥ आम, मधुरह, मेघपृष्ठ,  
 सुधामा, भाजिष्ठ, लोहिताण और बनस्पति ॥ ४० ॥ ये हो क्रौंचद्वीपके सात देश हैं । वर्द्धमान, भोजन, उपवर्हण,  
 नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र और शुक्ल ये सात दिशाल पर्वत चारों ओर से उस द्वीपको घेरे हुए हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥  
 अमृता, अमृतौषा, आर्यका, तार्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और पुण्या ये पवित्र नदियाँ उन सातों देशोंमें  
 बहुती हैं । जिनमें स्नान करनेसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंसे  
 रामने अलग-अलग कर लिया और उन राजाओंने रामकी पूजा की ॥ ४५ ॥ तदनन्तर रामने क्रौंचद्वीपके  
 अधीश्वरको संग्रामभूमिमें परास्त किया और उससे बहुतेरे हाथी, धोड़े, रथ, ऊट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए  
 ॥ ४६ ॥ वहाँपर बन्दीजनोंने रामकी राति की, जिससे रामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनामक  
 समुद्रको पार करके क्रौंचद्वीपके समान ही बत्तीस लाख योजनके लगभग विस्तृत शाकद्वीपमें गये । जहाँपर  
 द्वीपके नामको चरिताथं करतेदाला एक बड़ा भासी शाकवृक्ष है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर वायुरुप धारण करनेवाले  
 विष्णुभगवान्‌के उपासक रहते हैं । वहाँ यही सात देश हैं, जिन्हें कह रहा हूँ—॥ ४९ ॥ पुरोजव, मनोजव,  
 पवमान, धूम्रानीक, चित्ररूप, बहुरूप और विश्वाधार ये ही सात देश हैं । अनघा, आयुर्दा, उभयद्विषि,  
 अपराजिता, पञ्चपदी सहस्रश्रुति तथा निजश्रुति ये नदियाँ उन सातों देशोंमें बहुती हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र,  
 शतकेसर, सहस्रोत, देवपाल, महानस और ईशान ये सात पर्वत उन देशोंको सीमापर स्थित हैं । उन सातों  
 देशोंके राजाओंने रामका पूजाकी और मुन्दरनामक शाकद्वीपके अधीश्वरको उन्होंने सात दिन पर्यन्त  
 युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०-५६ ॥ इसके बाद उसने भी रामकी पूजा की । रामके इस सुकृत्यसे प्रसन्न होकर  
 देवताओंने दुन्दुभी बजायी । तत्पश्चात् राम बत्तीस लाख योजन विस्तृत दधिमण्डोद नामक समुद्रको पार  
 करके चौसठ लाख योजन दिस्तृत पुष्करद्वीपमें पहुँचे । जिसके मध्यमें मेखलाके समान मानसाचल

अपरं तद्रातकीत्याख्यातं ते कंकणोपयम् । तद्वर्षपौ नृपौ जित्वा ततो दीपेश्वरं नृपम् । ६०॥  
उत्तरांगाहृयं रामः परां मुदमवाप सः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वीपाख्याकारकं वरम् ॥६१॥  
कमलासनस्य यज्ञेयं ब्रह्मणः परमासनम् । तत्र कर्मसयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽच्यत् ॥६२॥  
वर्षयोर्वहुला नद्यः पापनिष्ठकुंतनक्षमाः । दशसाहस्रमानेन प्राशुज्ञेयः स पर्वतः ॥६३॥  
तस्मिन् गिरौ पूर्वभागे पुरी मध्यवतः शुभा । देवधानीति नाम्ना सा मनोजा ज्वलनप्रभा ॥६४॥  
गिरौ तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संयमनी पुरी । यमराजस्य सा ज्ञेया मनोजा ज्वलनप्रभा ॥६५॥  
पश्चिमे वरुणस्याथ पुरी निम्लोचनी स्मृता । उत्तरस्यां तु कौवेरी पुरी ख्याता विभावरी ॥६६॥  
भिक्षाः पुर्यस्त्वमा ज्ञेया मेरुस्याभ्यःशुभावहाः यथा नृपस्य स्थानानि ह्यनेकानि तथा त्विमाः ॥  
सर्वे सीमापर्वतास्ते विस्तीर्णाश्च पृथक् स्मृताः । द्विसहस्र्योजनैश्च प्रोच्चतां ते वदाभ्यहम् ॥६८॥  
सर्वेषां दशसाहस्र्योजनैः प्रोच्चतेरिता । उत्तरांत्वा तु शुद्धोदं पुष्करद्वीपसंमितम् ॥६९॥  
सीतायाः कौतुकार्थं हि म जगाम रघुनन्दनः । उदारार्थं स्वावलोकात्तत्रस्थानां नृणामपि ॥७०॥

ततोऽग्रे भूमि सार्वसप्तलक्षोत्तरसार्द्धकोटि ( १५७५०००० ) परिमितां क्वचित् प्राणिसहितां रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिवासिभिः संपूजितो रघुनन्दनो मैथिलींजनार्थमग्रे जगाम ॥ ७२ ॥ सैकचत्वारिंशत्सहस्रसप्तलक्षोत्तरं सार्द्धकोटि ( १५७४०००० ) योजनपरिमितं मेरुमान-सोत्तराचलयोरतराले मानं ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदर्शनलोपमां कांचनीं भूमि देवैरधिष्ठितां चैकोनचत्वारिंशत्लक्षोत्तरकोष्ठए ( ८३९०००००० ) परिमितां दृष्टा देवैः संपूजितः श्रीरामचन्द्रो मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लोकालोकपर्वतं सार्द्धद्वादशकोटि ( १२५००००००० ) परिमितं विस्तीर्णोचितया भूमिप्राकारोपमं केनाप्यविलंघ्य स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ यस्मिन्नष्टदिङ्गु द्विरदपत्यः ऋषमः पुण्डरीकः पुष्करचूडः कुमुदो वामनः पुष्पदंतेऽपराजितः सुप्रतीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

पर्वत विद्यमान है, उसे रामने देखा । उस द्वीपमें दो प्रधान देश हैं—पहला रमणक देश और दूसरा धातकी । ये दोनों देश उस द्वीपके कङ्कणके समान हैं । रामने उन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी उत्तरांगकी जीत लिया, जिससे उन्हें वहें प्रसन्न हुईं । इसके अनन्तर उस द्वीपके नामका सार्वक करनेवाले पुष्कर सरोवरको देखा ॥ ६६-६१ ॥ वह सरोवर ब्रह्माका एक विशेष आसन है । यहांपर कर्ममय ब्रह्माकी मूर्तिको लोग पूजते हैं ॥ ६२ ॥ उन दोनों देशोंमें लापको नष्ट करनेमें समर्थ बहुत-सी नदियाँ वहती हैं । वह पर्वत इस हजार दोजनके लगभग ऊँचा है । उसपर पूर्वी ओर इन्द्रकी देवधानीपुरी है । पश्चिम ओर वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है । उत्तर ओर कुबेरकी अलकापुरी है ॥ ६३-६६ ॥ मेरु पर्वतपर देवताओंकी जो पुरियाँ हैं, उनके आसाराएँ इन्हें समझना चाहिए । जैसे राजाके एक नहीं, अनेक स्थान होते हैं, उसी तरह इनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥ ६७ ॥ उसके आस-पास जितने सीमापर्वत हैं । वे सब अलग-अलग दो-दो हजार योजन ऊँचे हैं । इस तरह सब मिलाकर इस हजार दोजन उनकी ऊँचाई है । इसके बाद रामचन्द्रजों शुद्धोद नामक सायुदको पार करके सीताके कौतुक या यह कहिये कि उस द्वीपके निवासियोंको अपने दर्शनोंने जृतार्थं करनेके लिय आगे बढ़े ॥ ६८-७० ॥ डेढ़ करोड़ साड़े सात लाख योजन विस्तृत भूमाग जहाँ कही-कहीं भनुष्योंकी आवादी धी, उस देशको देखा ॥ ७१ ॥ वहाँके निवासियोंने सीतारामकी पूजा की और ये लोग आगे बढ़े ॥ ७२ ॥ मेरु और मानसोत्तराचलके बीचमें डेढ़ करोड़ साड़े सात लाख एकतालीस हजार योजन परिमित अन्तराल है । इसके अनन्तर रामने शाश्वेतके समान चमकतीं कांचनमयी भूमि देखी, जहाँ कि देवताश्शेष रहते हैं । जिसका विस्तार आठ करोड़ उनतालिस लाख योजन है । वहाँके भी निवासियोंने रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर साड़े बारह करोड़ योजन परिमित विस्तीर्ण तथा ऊँचे लोकालोक नामक पर्वतको देखा, जिसे कि आजतक कोई नहीं लाँघ सका है ॥ ७३-७५ ॥ जहाँकी

सकललोकस्थितहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः सकललोकहिताय आस्ते ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एवं पञ्चशत्कोटिगुणिता भूगोलको ज्ञेयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकालोकमध्यवर्तिनां स रघुनन्दनः स्ववशां कृत्वाऽऽकाशपथा परिवर्त्य सर्वान् द्वीपान् पूर्ववत्पश्यन् जंबुद्वीपे भारतवर्षमध्यगतां स्वां राजधानीमयोध्यां सप्तद्वीपनृपपरिवेष्टितोऽनुययौ ॥ ८० ॥ ततो रामोऽयोध्यानिकं गत्वा दृतैः स्वागमनं सुमन्त्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्रं श्रुत्वा स मंत्रिसत्तमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाभ्वजतोरणैः ॥ ८२ ॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पौरेजीनिषदैः सह । प्रत्युद्गम्य रामचन्द्रं नत्वाऽयोध्यां निनाय सः ॥ ८३ ॥ तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ॥ ८४ ॥ रामागमनमाकर्ण्य पौरनार्यः सुभूषिताः । प्रासादशिखरारुढा वर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ८५ ॥ राजद्वारं विमानेन शनैः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ॥ ८६ ॥ यथौ यानादवरुहा समायां निज आसने । तस्थौ समन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिवेष्टिः ॥ ८७ ॥ ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दधिश्रादादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥ ८८ ॥ आत्मानं सकलान्पृथ्वीस्थितान् जित्वा समुद्रतान् । ततस्त्वैः सप्तद्वीपस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥ ८९ ॥ रामः स्वआतरं विप्रैर्भरतं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥ ९० ॥ आदावेव वसिष्ठेन द्युक्तं भरतनाम तत् । विचित्येदं भावि दृचं जातकर्मणि निश्चितम् ॥ ९१ ॥ पूर्वमाज्ञापितं स्वोयसेवकं भरतस्य च । रक्षणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥ ९२ ॥

बाठों दिशाओंमें अृषभ, पुण्डरीक, पुष्करचूड, कुमुद, वामन, पुष्पदत्त, अपराजित और सुप्रतीक ये सभी लोकोंको अपने सिरपर धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ उसी पर्वतके ऊपर परममहापुरुष और महाविभूतिपति भगवान् समस्त संसारके हितकी कामनासे रहा करते हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे विशुद्ध योगेश्वरोंकी ही गति है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मिलाकर पचास करोड़गुना विस्तृत भूगोल है । उनमेंसे पचीसको अपने वशमें करके राम आकाशमार्गसे लौटकर रास्तेके विविध द्वीपोंको देखते हुए जम्बुद्वीपके भारतवर्षस्थ अयोध्या नामकी अपनी राजधानीमें सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ बापस आये ॥ ७९—८१ ॥ अयोध्याके सभीप पहुँचकर रामने एक दूत द्वारा सुमन्त्रको अपने आगमनकी सूचना दी । सुमन्त्रने रामका आगमन सुना तो पताका, व्वजा तथा तोरणादिकसे अयोध्याको सुसज्जित करवाया ॥ ८२ ॥ फिर एक बड़े भारी हाथीको आगे करके पुरवासी जनोंके साथ रामके समक्ष पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बजे बाजे, अप्सराएँ नाचीं, गायकोंने गाने गाये और बन्दीजनोंने स्तुति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुनकर अयोध्याकी स्त्रियाँ भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषण पहनकर अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे-धीरे पुरवासियोंकी भेटें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँचे । रास्तेमें स्त्रियोंने रामकी आरती उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँचे तो पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने सिंहासनपर बैठे । उनके साथ जो राजे आये थे, वे भी सिंहासनके चारों ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर सब मेहमानोंको ठहरनेके लिए स्थान बतलानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दधिश्रादादि कायोंमें लग गये । इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्धत राजाओंको परास्त करके रामने अपनेको कृतकृत्य समझा । इसके अनन्तर उन सातों द्वीपोंके राजाओंने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही वसिष्ठने भरतका नाम भरत रखा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवकको शामचन्द्रजीने भारत देशकी रक्षाके

जंबूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लबोऽपि विजयं स्वीकृतचिवं चाकरोन्मुदा ॥१३॥  
 नवस्वपि च वर्षेषु यातायातं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥१४॥  
 शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे भरतेनाभिषेचितः । यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥१५॥  
 चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । सप्तद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघृत्तमः ॥१६॥  
 स्वस्वकार्येषु सर्वे ते शासन् तत्परमानन्तराः । ततः सर्वान्नृपान्पूज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥१७॥  
 ततस्ते राघवं दन्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य परामर्शं सदा मुदा ॥१८॥  
 चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जंबूद्वीपपरामर्शं स चकार लवस्तथा ॥१९॥  
 सप्तद्वीपपरामर्शं रामचन्द्रः कुशेन च । लक्ष्मणेन सहेवापि स्वयमेवाकरोत्प्रभुः ॥२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्ध  
 कुशादिष्टद्वीपविजयदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

### दशमः सर्गः

( रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृग्रको दण्डदान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घवं मुहुः । राजद्वाराद्वहिः श्रुत्वा सभास्थो दूतमवीत् ॥१॥  
 कथं दीर्घस्वरेणैव श्वाङ्ग्य क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा गत्वसभावहिः ॥२॥  
 न्यवारयत्सारमेयं राजद्वारात्स्वधर्षणैः । रामं नत्वाऽन्नवाद्वाक्यं तृष्णां श्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥  
 मया निवारतो दूरं गतः स गत्वर्णातक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥  
 दृतेन पूर्ववच्चापि सारमेयो निवारितः । ततस्त्रुतीये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥  
 तदातिचकितः प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । श्वाङ्ग्यं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥१॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जंबूद्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेवकको मंत्रो बना लिया, जिसे कि रामचन्द्रजीने कुछ दिन तक भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥२॥ लव विजयके साथ कार्यवश नवों द्वीपोंमें बराबर आया-जाया करते थे ॥३॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर जमिषेक कर दिया । रामने कुशको युवराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वश्रेष्ठ मंत्री बनाया । किन्तु सातों द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥४॥ ॥५॥ ये सब लोग अपने कार्योंको बड़ी तत्परताके साथ निभाते थे । इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानेकी आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीको प्रणाम करके अपने-अपने देशको चले गये ॥६॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जंबूद्वीपका शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे थे ॥७-१०॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-‘ज्योत्स्ना’भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी आवाज सुनी तो दूतसे बोले—॥ १ ॥ देखो तो इतने ऊँचे स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार दूत कुत्तेके पास गया । उसे घमकाकर वहाँसे हटा दिया और रामसे जाकर कहा—हे रावणान्तक ! उसे मैंने दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेंगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन सुना ती दूतसे भगवाया ॥२-५॥ तीसरे दिन फिर उसका रुदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रष्टव्यं मत्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतानब्रवीत्संब्रमान्वितः ॥७॥  
 सभामाकारणीयः श्वा युध्माभिस्त्वद्य सादरम् । तथेति रामदूतास्ते सारमेयं वचोऽब्रवन् ॥८॥  
 आकारितोऽसि रामेण त्वमेहि राघवांतिकम् । त्वद्वैं कलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥  
 रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः श्वा तान्वचोऽब्रवीत् । देवगृहे यज्ञवाटहोमशालासु वै तथा ॥१०॥  
 बृन्दावने समायां च मठे पायिंवसदूगृहे । गोष्ठे पुण्यस्थले पुण्ये तीर्थे देवालयेऽपि च ॥११॥  
 पाकस्थाने रतिस्थाने स्नानसंध्यास्थलादिषु । गन्तुं नाहां वयं पापयोनिस्था वाच्यतां प्रभुः ॥१२॥  
 ततस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रवन् । राघवस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥  
 आनीयता पादुके मे त्विति दूतान् वचोऽब्रवीत् । ततस्तैरपिंते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥  
 रत्नदण्डं करे धृत्वा शनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकारत्नदारेण मणिद्रयविराजितः ॥१५॥  
 मुकुटेनावतंसेन केयूराभ्यां समन्वितः । न् पुराभ्यां कंकणाभ्यां कुण्डलाभ्यां सुशोभितः ॥१६॥  
 पदकैः श्रृंखलाभिश्च वरवस्त्रैर्विराजितः । राजद्वाराद्विदेशे सारमेयांतिकं ययौ ॥१७॥  
 कृत्वा दंडं स्वकसेऽथ किंचिद्वक्रः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वधो स्वां जंघां रामः स दक्षिणाय् ॥१८॥  
 अब्रवीत्सारमेयं तं किंचित्कृत्वा सिमताननम् । मदग्रे वद किं दुःखं सारमेय तवास्ति यत् ॥१९॥  
 मद्राज्ये सहसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिरं श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥  
 नमस्कृत्वा राघवेन्द्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदथं श्रमितोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिष्ठे ॥२१॥  
 निरपराधो यतिना ग्राव्याऽत्राहं प्रताङ्गितः । छिन्नपादोऽस्मि राजेन्द्र त्वामद्य शरणं गतः ॥२२॥  
 तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिथापि विहूलो राघवं ययौ ॥२३॥  
 दृष्टा यतिं तं श्रीरामस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन् किमर्थं युध्माभिश्छन्नः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह कुत्ता क्यों राजदरबारके समक्ष आकर रोता है । मेरे सामने बुलाकर पूछो कि उसे किस बातका कष्ट है । लक्ष्मणने भी घबड़ाकर दूतोंको आशा दी कि जाओ और आदरपूर्वक उस कुत्तेको सामने से आओ । “बहुत अच्छा” कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥६-८॥ आज पूर्वसंचित पुण्यसे तुम्हारा भाग्योदय हुआ है । चलो, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें बुला रहे हैं ॥९॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रसन्न होकर कुत्ता कहने लगा—देवालय, यज्ञशाला, हवनगृह, तुलसीका बगीचा, सभा, मठ, राजभवन, गोशाला, पवित्र तीर्थ, रसोईघर, रतिस्थान तथा स्नान-सन्ध्यादि करनेके स्थानोंपर मैं जानेके अयोग्य हूँ । क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ है । तुम जाकर रामसे कह दो ॥१०॥ ११॥ इतना सुनकर वे दूत बड़े विस्मित हुए और जैसा उसने कहा था, जाकर रामको सुना दिया । राम उसकी बात सुनकर हैस पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा खड़ाऊं ले आओ ! दूतोंने आशाका पालन किया । रामने खड़ाऊं पहिना, एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेकी ओर चले । उस समय रामचन्द्रके हाथोंमें अंगूठियाँ थीं, रत्ननिर्मित हार गलेमें था, मस्तकपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल झ़ल रहे थे, भुजाओंमें बिजायठ और कङ्कण था । गलेमें हार तथा सिकड़ियाँ शोभित हो रही थीं । इनके सिवाय और भी कई प्रकारके आभूषण और सुन्दर वस्त्र सुशोभित हो रहे थे । इस तरह सज-घजकर राम कुत्तेके पास जा पहुँचे ॥१२-१७॥ वहाँ पहुँचे तो छड़ी बगलमें दबा ली और बाएँ घुटनेको तनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥१८॥ पुचकारकर राम कुत्तेसे बोले—हे सारमेय ! तुम्हें जो कुछ कष्ट हो, वह मुझे बताओ ॥१९॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट न हो । इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकशः प्रणाम किया और हृषित होकर कहने लगा—हे दयानिष्ठे ! बापने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया, जो यहाँ पधारे । हे महाराज ! मैंने कोई अपराध नहीं किया था । फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया । इसीसे दुःखी होकर मैं आप की शरणमें आया हूँ ॥२०॥ २१॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया ।

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह रघृत्तमम् । भिक्षार्थं भ्रमतो मार्गं भिक्षान्नं स्पर्शितं मम ॥२५॥  
 शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्वे जुधितस्य च । मयाऽतः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै श्वपराधिने ॥२६॥  
 धर्षितुं चोपलः क्षिप्तेन भिन्नं पदं शुनः । तद्यतेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥  
 ज्ञानहीनः पशुथायं भक्ष्यं स्वीयं निरीक्ष्य च । स्पर्शितस्त्वां तस्य दोषो नैवायं वेद्यत्वं यते ॥२८॥  
 त्वमेवास्यस्यापराधी तदण्डं सोदुमर्हसि । इत्युक्त्वा सारमेयं तं राघवो वाक्यमन्वीत् ॥२९॥  
 यतिश्चायं तेऽपराधी तव हस्तेऽपिंतो मया । यं त्वमिच्छसि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सारमेयोऽन्वीत् प्रभुम् । शिवालयाधिपत्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥  
 तथेति रामचन्द्रोऽपि शिविकायां निवेद्य तम् । सम्बन्धचन्दनाद्यैश्च सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥  
 वाद्यघोर्नर्तनाद्यैरुत्सवैश्च शिवालयम् । नीत्वा शिवालयस्याधिपत्ये संस्थापयत्प्रभुः ॥३३॥  
 तदाऽज्ञानाद्यतिदैवं फलितं चेत्यमन्यत । ततो रामो जनैर्युक्तः स्वां सभां संविवेश ह ॥३४॥  
 तत्सर्वं कौतुकं दृष्टा पौरा: प्रोचू रघृत्तमम् । कथं शुनाऽय यतये शिक्षेद्रुक्साधिता प्रभो ॥३५॥  
 अन्नार्थं भ्रमतस्तस्य यतेर्दत्तं पदं महत् । तेनातिसाँख्यं सज्जातं यतये शिक्षितं न तत् ॥३६॥  
 तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽन्वीत् । प्रष्टव्यः श्वा तु युष्माभिर्वः सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥  
 तथेति सारमेयं तं प्रच्छुर्नागरात् तत् । तान्प्रोवाच सारमेयः शृणुश्च यन्मयोच्यते ॥३८॥  
 कृपिसञ्जातधान्यौघखलसम्मानकारिणः । शिवालयमठारामदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥  
 अनाथस्त्रीवालवित्तहारिणः क्रूरनिःस्वनाः । गोविप्रशिववित्तस्य हारिणोऽन्यायकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संन्यासी भी विहूल भावसे रामके पास आया ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे—कहिए स्वामीजी । आपने किस अपराधसे इन कुत्तेका पैर तोड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं भिक्षा लिये रास्तेसे जा रहा था । तभी इसने मेरा भिक्षान्न छू दिया । वह मध्याह्वका समय था । मैं भूम्ता था । इसके उस अपराधसे मुझे क्रोध आ गया और इसको घमकानेकी इच्छासे मैंने एक पत्थर फेंककर मारा । वह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । यतिकी बात सुनकर राम उससे कहने लगे— ॥ २५-२७ ॥ यह एक ज्ञानविहीन पशु है । यदि इसने अपना भक्ष्य पदार्थ देखकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसकी स्वाभाविक प्रकृति है । इसलिए आप ही इसके अपराधी हैं । यतिके प्रति इतना कहकर कुत्तेसे कहने लगे—यह संन्यासी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८-३० ॥ रामकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—इसे किसी शिवालयका महन्य बना दिया जाय ॥ ३१ ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और सुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सुशोभित करके एक पालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए उत्सवके साथ एक शिवालयमें ले नये और उसे बहाँका महन्य बना दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्योदय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने साथियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर कितने ही उत्सुक नागरिकोंने रामसे कहा-हे प्रभो ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड बयों दिया ? यतिने तो पत्थरसे उसकी टांग तोड़ दी और जब आपने कुत्तेको उसके कियेका दण्ड देनेके लिए कहा तो उसने दण्डके स्थानपर यतिको महन्य बनवा दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप लोग उस कुत्तेसे ही पूछ ले कि उसने ऐसा क्यों किया । वह आप लोगोंकी शङ्खाका भली भाँति समाधान कर देगा ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार उन लोगोंने कुत्तेसे पूछा तो उसने कहा—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर आप लोग सुनें ॥ ३८ ॥ खेतमें उत्पन्न अम्बरखानेवाले, शिवालय, मठ, बगीचा, दानग्राम इत्यस्यानोके अधिपति, अनाय स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गाली-गलीज करनेवाले, गो-विप्र तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, अन्याय करनेवाले, राजाके घरपर पहुँचे हुए याचकको भगानेवाले, दूसरेका धन हड्डपनेवाले, प्रायश्चित्तके

नृपगेहे प्रविष्टानां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यापहत्तरारिः प्रायश्चित्ताधिकारिणः ॥४१॥  
 विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहत्तरारथैते सर्वेऽन्यजन्मनि ॥४२॥  
 गच्छन्ति वै शुनो योनिं मत्यमेतद्वचो मम । मया मठाधिपत्याच्च लब्धा योनिः शुनः स्वयम् ॥४३॥  
 अतो मयाऽध्य यतये शिक्षितुं पदमपितम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नागराशिङ्ननसंशयाः ॥४४॥  
 ते युः स्वीयगेहानि ययौ श्वाऽपि निजस्थलम् । देहांते स यतिर्जातिः शुनो योनौ स्वकिञ्चिष्ठात् ॥४५॥  
 आप स श्वाशुभां मुक्तिं भुक्त्वादौ स्वीयकिञ्चिष्ठम् । न ज्ञेयोऽयं यतिः शिष्य साकेतेऽत्र मृतस्त्वति ॥४६  
 स्थलान्तरे मृतश्चाय गतः कार्यार्थमात्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥४७॥  
 क यतिः सारमेयत्वं क स श्वाक गतिश्च सा । गहना कर्मणश्चात्र गतिर्जेया महात्मभिः ॥४८॥  
 क यतिः सारमेयः क न्यायश्चेत्थं रमापतेः । आसीत्सत्यः सदैवात्र नान्यायस्तन्मुखेष्ठानात् ॥४९॥  
 अथैकदा तु साकेतवासिनो भूसुरस्य च । पञ्चत्वं पञ्चवर्षीयः पुत्रः प्राप्तः गिशुः प्रियः ॥५०॥  
 तदा विप्रः सप्तनीकस्तत्प्रेतमरुणोदये । राजद्वारं समानीय रुरोदोच्चैः स्वरैर्मुहुः ॥५१॥  
 अत्रवीत् पुत्रशोकेन व्यथितः क्रोधसंयुतः । सीतामालिंग्य राजेन्द्र कथं त्वं निद्रितोऽसि हि ॥५२॥  
 त्वद्राज्येऽधर्मतः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । त्वत्तोऽधर्मोऽयवान्याच्च जातोऽधर्मो न वेद्यथहम् ॥५३॥  
 नृपे पापिनि ग्रियन्ते नरा ख्यान्यायुषः श्रुतम् । यस्य राज्ये जनैः सर्वैर्योऽधर्मः क्रियते भुवि ॥५४॥  
 सोऽपि ज्ञेयो नृपस्यैव यतस्तेषां न शिक्षितम् । अतस्तेऽधर्मिणो राज्ञो राज्ये मेऽयं शिशुमृतः ॥५५॥  
 उपायं चित्यस्वास्य जीवनेऽद्य जवान्नृप । नोचेदावा चितिं चारोहावस्तनयेन हि ॥५६॥  
 स्मर बृंसं श्रवणस्य देतोर्यज्जनकाय ते । जातं शापादिकं पूर्वं तद्वदत्रापि ते भवेत् ॥५७॥

लिए दिये धनको ग्रहण करनेवाले, ब्राह्मणभोजनके लिए जुटाई सामग्रीमें से चोरी करनेवाले और बैरामानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग मरकर दूसरे जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ४६-४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं । मैंने स्वयं मठाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी योनि पायी है ॥ ४३ ॥ उस संन्यासीको उसकी करनीका फल देने ही के लिए मैंने उसे यह पद दिलाया है । इस प्रकार उसकी बात सुनकर सारे पुरवासियोंका सम्देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने घरोंको चले गये । कुत्ता भी अपने स्थानको चला गया । उस संन्यासीने मठाधिपत्यके मदमें आकर जो पाप किये, उनसे जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी योनि मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीके यहाँ दावा किया था, उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली । किन्तु वह यति जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था, अयोध्यामें न मरकर किसी दूसरे स्थानपर मरा । इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली । जो लोग अयोध्यामें शरीर त्याग करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं । कर्मकी गति बड़ी चिचित्र होती है । कहाँ वह कुत्ता होकर भी मुक्त हो गया और वह यति होकर भी कुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहाँ कुत्ता और कहाँ संन्यासी । रामने उन दोनोंका कितना अच्छा न्याय किया । सच तो यह है कि रामके राज्यमें किसीका मुँह देखकर न्याय नहीं किया जाता था । बल्कि जो न्याय थात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पंचवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सबेरा होते ही वे ब्राह्मणदम्पती बच्चेके शवको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े जोर-जोरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुत्रशोकसे कुपित होकर उस ब्राह्मणने कहा है राम ! सीताको गोदमें लेकर तुम अब भी आनन्दके साथ पड़े सो रहे हो ? ॥ ५२ ॥ तुम्हारे राज्यमें किसीके अघमसे मेरे बच्चेकी मृत्यु हुई है । इसमें तुम्हारा कोई अघम है अथवा किसी दूसरेका । यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि राजाके अघर्मी होनेसे ही उसके राज्यमें अकाल मृत्यु होती है । जिस राजाके राज्यमें अघम होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है । क्योंकि वह अपनी प्रजाको अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता । इससे यह निश्चित है कि तुम अघर्मी हो । इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव हे राजन् ! इसके लिए शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों ( स्त्री-पुरुष )

ततो विप्रप्रिया प्राह सातां प्रोच्चस्वरेण हि । कथं त्वं पतिमालिङ्ग्य निद्रिताऽसि सुखं शुभे ॥५८॥  
 त्वमप्यसि पुत्रवती मे दुःखं चात्मनः कुरु । उपायं कारवस्त्राद्य भर्वाऽस्य जीवने शिशोः ॥५९॥  
 इति तदंपतीवाक्यं श्रुत्वा सर्वे पुरौरुषः । आसन्नव्यग्रचित्तास्ते प्रेतमात्रार्य सस्थिताः ॥६०॥  
 सीतारामाचार्यि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽतिविहृलौ । विनिर्गतौ रतिशालावहिस्तद्दुःखदुःखितौ ॥६१॥  
 निवार्य वंदिगीतानि राजद्वारं तयोः पुरः । वेगेन जग्मतुः पद्मिः सीतारामौ गतश्रियौ ॥६२॥  
 दृष्टा सीतां च रामं च ती शोकं चक्रतुर्षुहुः । तावाश्वास्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्दाक्षरः ॥६३॥  
 मा शोकं कुरुतश्चोभी मद्विरं श्रुणुतस्त्वति । कृत्वोपायं हि युवयोः पुत्रं संजीवयाम्यहम् ॥६४॥  
 न जीवितश्चेद्युवयोः पुत्रस्तर्वर्पये कुशम् । गिरं सत्याभिमां चोभौ पश्यतस्त्वह मेऽद्य हि ॥६५॥  
 ततः सीता विप्रपत्नीमाश्वास्याह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिहातं कुशदानेन भाग्निनि ॥६६॥  
 अहमप्यद्य ते वच्चिम तव दुःखस्य शांतये । न जीवितश्चेद्रामेण मयाऽयं त्वच्छिशुः प्रियः ॥६७॥  
 तहि त्वद्दुःखशांत्यर्थमर्पयेऽहं लवं प्रियम् ताभ्यां कुशलवाभ्यां त्वं पुत्रदुःखं त्यजिष्यसि ॥६८॥  
 भजिष्यसि त्वं मत्सौख्यमतः शोकं कुरुष्व मा । ततः प्राह द्विजं रामस्त्वं पत्न्याऽत्र स्थिरो भव ॥६९॥  
 मा कुरुष्व मुहुः खेदं त्वत्पुत्रं जीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तेलद्रोण्यां शबं शिशोः ॥७०॥  
 निधाय कुमिदुर्गन्धदुर्मुखणप्रशांतये । स्वयं स्नात्वा नित्यविधिं चाकरोत्खन्नमानसः ॥७१॥  
 ततः सभासंस्थितः सन् वसिष्ठं प्राह राघवः । राज्यं शासति धर्मेण तत्राय वै शिशुः कथम् ॥७२॥

अपने प्रिय पुत्रके साथ चितामे जलकर भस्म हो जायेंगे ॥५६॥ अवणके वृत्तान्तका स्मरण करो । जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रवधक दुःखस दुखी होकर उसके माँ-बापन दणरथको शप देकर अपने प्राण त्याग दिये थे, वही दशा हमारी भी होगी ॥५७॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणाने जारोक साव साताका संबोधित करके कहा—हे शुभे ! तुम क्यों पतिका आलिगन करके आनन्दके साथ सा रहा हो ? तुम भी पुत्रवती हो । इस कारण मेरे दुःखकी ओर ध्यान देकर मेरे बच्चेका जिलानेके लिय अपन पात द्वारा शोष्ण कोई उपाय करवाओ ॥५८॥ ५९॥ इस प्रकार उस विप्रदम्पतीक वाक्य सुनकर वहांक सब पुरवासो व्याकुल हो उठे और उस शबको चारों ओरसे घेरकर सड़े हो गये ॥६०॥ उधर राम तथा साता दानो ब्राह्मणका बातोंसे विहृल होकर रतिशालामे बाहर निकल आये । नीचे आकर रामने बन्दाजनाका स्तुति तथा गानेवजानेवालोंक गाने-बाजे रोक दिये और वेगके साथ दौड़त हुए उन दोनोंक पास पढ़ूच । उस समय उस दुःखसंसीता तथा रामका मुख कुम्हला गया था ॥६१॥ ६२॥ महाराज राम तथा साताका दखकर वे दानों और भी जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे । उनको आश्वासन देते हुए गद्दद कण्ठसे रामने कहा कि आप लोग इतने व्याकुल न हों, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनें । मैं काई उपाय करक तुम्हारे पुत्रको जीवित करूँगा ॥६३॥ ६४॥ याद तुम्हारे बेटेको जीवित न कर सकूँगा ता मैं अपना पुत्र कुश आपको दे दूँगा । मेरी बातको सत्य समझकर आप विश्वास कर ॥६५॥ इसके अनन्तर साताने विप्रपत्नीके पास जाकर कहा—हे भाग्निनो ! तुम सुन रहा हो कि रामने वया प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे संतोषके लिए मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि याद रामचन्द्रजा आपके बच्चे को जीवित न कर सके तो मैं अपने छाटे पुत्र लबको दे डालूँगा । उन दानों पुत्रोंके पानसे तुम्हारा पुत्रशोक दूर हो जायगा ॥६६-६८॥ अब शोक मत करो । तुम्हारा पुत्र न जिया तो अभी जा सुख मैं भाग रही हूँ, वह तुमको प्राप्त होगा । इसके अनन्तर रामने ब्राह्मणसे कहा कि आप अपनी पत्नीके साथ यहाँ बैठे और किसी प्रकारका खेद न करें । मैं आपके बेटेको जीवित करूँगा । इतना कहकर रामने लक्ष्मणसे कहकर एक तेलसे भरी हुई तोका मैंगायी । जिससे शब सड़े-नले नहीं, उसमेंसे दुर्गन्ध न निकले या कीड़े न पड़ें । इस विचारसे उस शबको उसमें रखवा दिया और स्वयं खिन्न होकर सन्ध्यादि नित्यकृत्य करनेको चले गये । इसके अनन्तर सभामें बैठकर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठसे कहा कि जब मैं धर्मपूर्वक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

वाल्यत्वे पञ्चतां प्राप्तस्त्रोपायं विचित्यताम् । इति यावद्गुरुं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥  
 नारदः प्रययौ वाणां रणवन् तत्सभां जवात् । प्रत्युद्रम्याथ तं रामः परिपूज्य यथाविधि ॥७४॥  
 संश्राव्य सकलं वृत्तं पुनः पग्रच्छ तं मुनिम् । त्वयोपायोऽन्न वक्तव्यः गिशोश्चास्य प्रजीवने ॥७५॥  
 पुत्राभ्यां हि प्रतिज्ञातं द्विजाय सीतया मया । किमर्थं मम राज्येऽधो मृतस्त्वीद्धन्न वेग्यहम् ॥७६॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न कोऽप्याचरते जनः ॥७७॥  
 भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गत्वाऽद्य मद्दिग्ना । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥  
 तथापि जनशिक्षार्थं त्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्टाऽधर्मनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥  
 अधर्मोऽच्छेदनेनायं जीवयिष्यति वै शिशुः । तथेति राघवश्चोक्त्वा विसर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥  
 सीतया नागरैः सर्वैर्भातुभिर्गुरुणा सह । पुत्राभ्यां मन्त्रिभिर्वृक्तः पुष्पकं चारुरोह सः ॥८१॥  
 एतस्मिन्नन्तरे ऽग्रेऽभूत्महान्कोलाहलस्तदा । तं श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥  
 तावद्दर्शं पुरतः पौरैः सवेष्टितां स्त्रियम् । शवमप्यपरं शृङ्खवेरतश्च समागतम् ॥८३॥  
 रामं दृष्टा पुष्पकस्यं रुदती ब्राह्मणी पूरः । दीर्घस्वरूपं प्रोवाच दृस्ताभ्यां हृदि ताढ्य मा ॥८४॥  
 राम राम महावाहो ते राज्ये गतमर्तुका । अहं जाताऽस्मि त्वद्वोपान्मां दृष्टा त्वं न लज्जसे ॥८५॥  
 मद्भर्तारं जीवयैनं नोचेच्छावं ददामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः खिन्नमानसः ॥८६॥  
 अब्रवीन्मधुरं चाक्ष्यं ब्राह्मणीं तोपयन्मुहुः । क्रोधं शमय रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥  
 अस्यैव हेतोर्गच्छामि त्वं मद्गोहे सुखं वस । इत्युक्त्वाऽश्चास्य तां रामस्तच्छवंचापिपूर्ववत् ॥८८॥  
 तैलद्रोण्यां स्थापयित्वा सुमन्त्रं चाक्यमब्रवीत् । आगमिष्याम्यहं यावत्तावत्कस्यापि नो शवम् ॥८९॥

इस ब्राह्मणके बच्चेकी अकाल मृत्यु कथों हुई ॥ ६९-८२ ॥ इसके लिये कोई उपाय सोचना चाहिये । इस प्रकार रामने गुरु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इतनेमें आकाशमार्गसे बीणा बजाते हुए नारदजी उस सभाभवतमें आ पहुँचे । रामचन्द्रजीने उठकर नारदकी पूजा की और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले-है मुनिराज ! आप ही इस विश्रुतके जीवनका कोई उपाय बतलाइये । हमने तथा सीताने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि इस बालकको मैं जीवित न कर सका तो अपने दोनों पुत्र कुश तथा लव उस विप्रको अपर्ण कर दूँगा । मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु केसे हुई, यह मुझे मालूम नहीं हो रहा है ॥ ७३-७६ ॥ इस प्रकार रामके बचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें कोई भी मनुष्य किसी प्रकारका अघर्म नहीं करता । फिर भी मेरे कथनानुसार आपको यह उचित है कि अपने राज्यभरमें धूमकर देखें । यदि कहीं कोई किसी तरहका अघर्मचिरण करता हुआ दीखे तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अघर्मका मूलोच्छेद करनेपर यह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा । रामने भी नारदकी सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा करके राम सीता, कुछ नगरवासी जनों, अपने भ्राताओं, गुरु वसिष्ठ, दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंको साथ लेकर पुष्पक विमानपर आरूप हुए ॥ ७९-८१ ॥ उसी समय आगेको ओरसे जोरोंका कोलाहल सुनाई पड़ा । उसे सुनकर राम और भी विस्मित हुए और चारों ओर निहारने लगे । तबतक उन्होंने देखा कि एक स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरुषासी धेरे हुए हैं । उनके आगे शृङ्खवेरपुरकी तरफसे एक और शव लदा हुआ आ रहा है । स्त्रीने जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपने हाथोंसे छाती पीटकर कहने लगी—हे राम ! हे राम !! तुम्हारे राज्यबालमें विधवा होकर मैं यहाँ आयी हूँ । मुझे इस दशामें देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? मेरे पतिकी मृत्यु तुम्हारे ही अघर्मसे हुई है । इस कारण जैसे बने, तैसे मेरे पतिको जिलाओ । नहीं तो मैं शाप दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने खिन्न होकर मीठी बाणीसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया—हे रंभोरु ! तुम क्रोधका परित्याग करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा । मैं भी इसी कामके लिए जा रहा हूँ । तुम आनन्दके साथ मेरे भवनमें चलकर रहो । इस तरह उसे समझा-हुक्साकर रामने उस शब्दको भी पहलेके समान तेलकी नौकामें रखवाया और सुमन्त्रको संचेत कर दिया कि

त्वया वहाँ ज्यालनीयं रक्षणीयं प्रयत्नतः । सर्वानपि त्वया भृम्यां श्राव्यं दंदुभिनिःस्वनैः॥१०॥  
 त कस्यापि शब्दं दर्शनं कापि कार्यं जनैस्त्वति । तथेति राघवं चोक्त्वा दृतैः संश्राव्य तद्वचः ॥११॥  
 सुमंत्रः सकलान् भृस्थान् साकेते न्यवसत्सुखम् । रामोऽपि पुष्पकेणैव पश्चिमां चोक्तरां दिशम् ॥१२॥  
 पूर्वामपि शनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो ययो । एतस्मिन्नन्तरे योध्यापुर्या पञ्च शवानि हि ॥१३॥  
 समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुमंत्रः स्थापयामास श्रीरामस्याज्ञयाऽदरात् ॥१४॥  
 तेषु पञ्चशवेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं समानीतं सुहृजनैः ॥१५॥  
 प्रयागस्य द्वितीयं च शब्दं वैश्यस्य तत्स्मृतम् । पूर्वे वयसि पञ्चत्वात्समानीतं हि तज्जनैः ॥१६॥  
 हस्तिनापुरसंस्थं तत्तुतीयं शवमीरितम् । तैलकारस्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥१७॥  
 शब्दं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विज । लोहकारस्तुपायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥१८॥  
 उज्जयिनीस्थं पञ्चमं च शब्दं ज्ञेयं महामते । चर्मकारदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥१९॥  
 एवं पञ्च शवान्यासन् पूर्वे द्वे ब्राह्मणस्य च । सप्तायोध्यापुरीमध्ये शवान्येवं स्थितानि हि ॥२०॥  
 रामोऽपि दंडकं पश्यन् स वभ्राम समंततः । ययो विध्याचलं धीमान् रेवावारिपरिष्ठुतम् ॥२१॥  
 तत्र वृक्षे लंघमानं धूमं पातुमधोमुखम् । शूद्रं निरीक्ष्य स्वर्गेन्द्रियं त इतुं समुपस्थितः ॥२२॥  
 तदा तं राघवः प्राह भो शूद्र शृणु मद्वचः । ब्राह्मणादित्रिभिर्बिणैस्तपः कार्यं न चेतरैः ॥२३॥  
 शूद्रैश्च द्विषुश्रूपा सदा कार्याऽनिभक्तिः । द्विजकृत्यं त्वया चात्र कृतं पापात्मना जड ॥२४॥  
 इदानींत्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां त्वत्तप्यमा वरं वरय वांछितम् ॥२५॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो रामपादजः । उवाच भयभीतः सन्नत्वा रामं मुहुर्मुहुः ॥२६॥  
 राम रावणदर्पण यदि तुष्टोऽसि मां प्रभो । तर्हि ते वर्याम्यद्य येन शद्रगतिर्भवेत् ॥२७॥

जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक तुम किसी भी शबका अग्निसंस्कार न करने देना ॥ ८२-८९ ॥ साथ ही मेरे शाश्वतमें यह दुग्धी पिटवा दो कि जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक कोई भी शब न जलाया जाय । सुमन्त्रने शामकी आज्ञा स्वीकार करके दूतों द्वारा हिंदोरा पिटवाकर रामकी वह आज्ञा सब लोगोंको सुनवा दी और आनन्दपूर्वक राजकाज देखते हुए रहने लगे । उधर रामचन्द्रजी पुण्यक विमानपर बैठकर पश्चिम तथा उत्तरकी दिशाओंको धीरे-धीरे अच्छी तरह देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े । इसी बीच अयोध्यामें पाँच शब और आकर एकत्र हो गये । उन्हें भी सुमन्त्रने पूर्ववन् तेलकी नौकामें खावा दिया ॥ ९०-९४ ॥ उन पाँचोंमें एक शब मधुपुर गावेंमें रहनेवाले एक क्षत्रियका था । जिसे उसके सुहृजन रामके दरबारमें ले आये थे । दूसरा शब प्रयागनिवासी एक वैश्यका था । थोड़ी ही अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गयी थी । इसी लिए उसके घरवाले रामके पास ले आये । तीसरा शब हस्तिनापुरनिवासी एक तेलीका था । उसे भी उसके घरवाले रामके पास ले आये थे । चौथा शब हरिद्वारनिवासी एक लोहारकी पुत्रवधूका था । पाँचवाँ शब उज्जयिनीनिवासी एक चमारकी लड़कीका था और उसके घरवाले उसे अयोध्या ले आये थे । इस प्रकार ये पाँच शब तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके सब मिलाकर अयोध्यामें सात शब एकत्र हो गये ॥ ९५-१०० ॥ रामचन्द्रजी भी इण्डकारण्यमें अच्छी तरह धूमकर रेवानदीसे परिष्ठुत विन्ध्यपर्वतको ओर बढ़े । वहाँ उन्होंने देखा कि एक शूद्र उलटा टैंगा है और नीचे आगकी धूनी घधक रही है । वह शूद्र धुआं पीता हुआ मुँह बाये लटका हुआ है । इस प्रकारकी उत्तर तपस्या करके स्वर्गं चाहनेवाले उस शूद्रको राम मारनेके लिए तंयार ही गये और उसके पास जाकर कहने लगे-हे शूद्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या करनेका विवान है, शूद्रोंके लिए नहीं । उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए । अरे जड़ ! तृष्ण पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके हिंजोंके समान कर्म किया है ॥ १०१-१०४ ॥ इस समय मैं तुझे मारकर उन लोगोंको जीवित करूँगा, जो तेरे धर्मविरुद्ध आचरणसे अकालमृत्युके ग्रास बने हैं । मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ । बोल, तेरी वया कामना है ? इस प्रकार रामकी बाणी सुनकर भयभीत ही

ममापि येन कीर्तिः स्थानं वरं दातुमहसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीद्वचः ॥१०८॥  
 मम रामेति यन्नाम तच्छूद्रेः सर्वदैव हि । जपनोयं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्शुद्धुः ॥१०९॥  
 भविष्यति गतिस्तेषामनेन मत्परो भव । तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥  
 इति रामवरं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽब्रवीद्वचः । शूद्राः कलौ मंदधियो भविष्यन्ति रघूत्तम ॥१११॥  
 व्यग्रचित्ता भविष्यन्ति कृषिकर्मादिभिः प्रभो । तदा तेषां कुतो बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥  
 अतस्तदनुरूपोऽद्य वरो देयो विचार्य च । तत्स्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ॥११३॥  
 परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदंतु सर्वत्र तेन तेषां गतिर्भवेत् ॥११४॥  
 तवापीयं कथाकीर्तिः स्मरिष्यन्ति मदंध्रिजाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुण्ठं प्रति यास्यसि ॥११५॥  
 पुनर्यथाचे श्रीरामं वरमन्यं स्वकारणात् । अस्मिन् शैले सदा तिष्ठ सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥११६॥  
 अंशतस्ते पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तव दर्शनम् ॥११७॥  
 कुर्वन्ति सहितं भक्त्या मोक्षमेव ब्रजंति ते । महर्घनं विना मत्यास्त्वा पश्यन्त्यविचारतः ॥११८॥  
 तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामो भक्तिं तस्मै ददौ हरिः ॥११९॥  
 इति कृत्वा सुसंतुष्टं हत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विष्णुदीनसप्तसाकेतसंस्थितान् ॥१२०॥  
 तदारभ्यात्र शूद्रेस्तु विष्णुदासावनीतले । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्यते ॥१२१॥  
 तं हत्वा रघुवीरः स परिवृत्य मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्त्वपुरीं ययौ ॥१२२॥  
 एतस्मिन्ननंतरे मार्गे गृध्रोलूकौ निरीक्षितौ । विवदमानौ रामेण चात्मानं द्रष्टुमागतौ ॥१२३॥  
 तावुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युवामुभौ । विवदमानौ मंग्रामी मां ब्रूतस्त्वद्य विस्तरात् ॥१२४॥

और नीचा मस्तक किये हुए बार-बार प्रणाम करके उस शूद्रने कहा—हे रावणके अभिमानको दूर करनेवाले राम ! यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह वरदान दीजिये कि जिससे शूद्रजातिको भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दीनतापूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे— ॥१०५-१०६ ॥ “राम” इस पवित्र नामका जो शूद्र सदा जप, कीर्तन तथा चिन्तन करते रहेंगे, उन लोगोंको सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तपस्याको छोड़कर मेरा चिन्तन करो । तुम्हारे इस उपकारसे शूद्रोंमें तुम्हारी कीर्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके हारा वर पाकर शूद्रने कहा—हे रघुसत्तम ! आगे महाप्रचण्ड कलियुग आनेवाला है । उसमें शूद्रजातिके लोग वडे मूर्ख होंगे । वे सर्वदा अपनी खेती-चारीके काममें ही व्यस्त रहेंगे । ऐसी अवस्थामें उन्हें जप तथा कीर्तन करनेका अवसर ही कहाँ मिलेगा । इन शुभ कर्मोंकी ओर उनकी बुद्धि कैसे जायगी । अतएव उनके अनुरूप कोई वरदान दीजिए । उसकी यह बात सुनी तो प्रसन्न होकर रामने कहा कि वे लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशीषके समय “राम-राम” ऐसा कहेंगे, इसीसे उनका उद्धार हो जाया करेगा ॥१०९-११४ ॥ उस शूद्रसमाजमें तुम्हारी वडी कीर्ति होगी । आज तुम हमारे हाथों मरकर वैकुण्ठवामको प्राप्त होओगे । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर माँगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणके साथ सर्वदा इस पर्वतपर निवास करें ॥११५ ॥११६ ॥ जो लोग यहाँ आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पश्चात् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसके सिवाय जो लोग भ्रमवश विना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर लें, उनका भी उद्धार हो जाय । रामने ‘तथास्तु’ कहकर भृतिका वर दिया और उसे मारकर उन अकाल मृत्युसे मरे हुए लोगोंको जीवित किया, जो ब्राह्मण-क्षत्रियादि सात प्राणी अयोध्यामें मरे पड़े थे ॥११७-१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीतलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशीषके अवसरपर “राम-राम” कहा करते हैं । शूद्रको मारकर हर्षपूर्वक राम-चन्द्रजी सीताको रास्तेके अनेक मनोहर दृश्योंको दिखाते हुए अयोध्याके लिए लौट पड़े । उसी बीच एक गृध्र और उलूक परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोंके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोलूकोऽत्रवीत् प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं बने ॥१२५॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्ति संस्थितः । नानेन दीयते मह्यं मम गेहं रघूत्तम् ॥१२६॥  
 तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रमाह रघूद्वहः । किमर्थं दीयते नास्य त्वया गृध्र गृहं बद् ॥१२७॥  
 तदा गृध्रोऽत्रवीद्वाक्यं राघवं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृह बने ॥१२८॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तदोलूकः किरदिनम् । स्थितस्तेनापि तत्यक्तं तत्राहं संस्थितः पुनः ॥१२९॥  
 वृथाऽयं स्पर्द्धते राम मत्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेन्द्र त्वद्वशेऽभूत्र पातकी ॥१३०॥  
 तावुवाच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं तस्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥  
 विमानस्थांस्तदा सर्वात्राधवः प्राह सस्मितः । इदमप्यद्य सम्प्राप्तं दुर्घटं मां पुरस्त्वह ॥१३२॥  
 कथं न्यायोऽत्र वै कार्यः कस्मै गेहं प्रदायताम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽमन्सर्वेऽतिविस्मिताः ॥१३३॥  
 तदोलूकं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उलूकः प्राह भूत्रेयं यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥  
 तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रं रामोऽत्वलोकयत् । गृध्रः प्राह यदा चेय महानोरेऽत्वनिस्तदा ॥१३५॥  
 चूतवृक्षे कृतं विद्धि पुरा गेहं मया विभो । तदगृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राघवः ॥१३६॥  
 कथं विनाऽश्रयेणासीन्महानीरे नगस्तदा । नोक्तोऽक्षयवटः सोऽपि चृतवृक्षस्त्वया स्मृतः ॥१३७॥  
 तस्माद्वृथा त्वया गृध्र स्पर्धतेऽनेन निश्चितम् ।

मयाऽध्य तत्र वाक्येन धिक त्वां दृष्टपत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राघवो दृतैस्तं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिशूलाग्रेषु चारोप्य प्रेषयामास स्वं पदम् ॥१३९॥  
 धन्यः स गृध्रो विजेयो रामाग्रे यस्य वै मृतिः । अभूत्तदर्शनमाप यस्य देहविसर्जने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्तारपूर्वक कारण बतलाओ ॥ १२१-१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उलूकने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक धोंसला बनाया था । कार्यवश उसी समय उसे छोड़कर मुझे व्यानान्तरको चला जाना पड़ा और यह गृध्र उसमें रहने लगा । अब नेरे मौगेगर यह मुझे भेरा धोंसला नहीं दे रहा है । इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका धोंसला इसे क्यों नहीं देते ? गृध्रने तड़पकर कहा—हे राम ! पहले मैंने उस वृक्षपर वह धोंसला बनाया था । कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उलूक उसमें रहने लगा । फिर यह जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं आकर अपने घरमें रहने लगा । यह अर्थं हमसे लड़ाई कर रहा है । हे राम ! इसकी बातोंमें आकर कहीं आप अधर्म न कीजियेगा । क्योंकि आपके वंशमें कभी कोई पातकी नहीं हुआ है ॥ १२५-१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस धोंसलेको बनाया था, इसका कोई साक्षी दे सकते हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गये । क्योंकि उन दोनोंके पास कोई गवाह नहीं था । ऐसी दशामें मुस्कराते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह विकट समस्या आगे आ गयी है । इस झगड़ेका कैसे न्याय हो ? किसको वह धोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग भीचक्से रह गये । किसीको कोई युक्ति नहीं सूझी ॥ १३१-१३३ ॥ फिर रामने उलूकसे कहा कि तुमने कब अपना धोंसला बनाया था । उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना निवासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी । इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रकी ओर देखा । गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस धोंसलेको आमके वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी जलमग्न थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था । गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब वह आमका वृक्ष किसके सहारे खड़ा था । वृक्षोंमें तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया, जो किसी तरह रह भी जाता है । इसलिए मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बात झूठ है । तुम उलूकको व्यर्थं सता रहे हो । तुम जैसे दृष्ट पक्षीको धिक्कार है ॥ १३४-१३६ ॥ इतना कहकर रामने दूतों द्वारा गृध्रको शूलीपर चढ़ाकर उसे अपना परम पद दे किया । वह गृध्र धन्य था, जिसकी मृत्यु रामके समुख हुई और रामका दर्शन करते हुए उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया । इस प्रकार उसे

दस्त्वा गेहमुल्काय ययौ रामो निजां पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाच्चगीतपुरःसरम् ॥१४१॥  
शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्तुपां तथा ॥१४२॥  
चर्मकारदुहितरं सप्ततान्ति सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समायातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥  
तुतोप नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः संपूज्यः तान् सर्वान् विसर्जी रघूद्वहः ॥१४४॥  
तदा महोत्सवशासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे पूर्वाद्दिँ  
यतिष्ठूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥



## एकादशः सर्गः

( चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥  
पश्यन् बनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आखेटन्यूहसंवृतः ॥२॥  
उपानदगृदपादश्च नीलोष्णीषी हरिञ्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥  
अश्वारुद्दः खङ्गचर्मधारी भूपैः पदातिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् ॥४॥  
सीतया जालरंध्रैश्च वारं वारं विरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गेश्च पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥  
क्रीडां तदाऽकरोत्तत्र कुंजेषु मृगयन्मृगान् । हन्यतां हन्यतामेषो मृगो वेगात्पलायते ॥६॥  
इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हन्ति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥  
उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति कचित्पश्यन् वनस्थलीम् ॥८॥

दण्ड देकर घोंसला उलूकको दे दिया और वहांसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े । अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहां नाच-गान हो रहे हैं । ज्ञात्यणका लड़का, मधुरपुरवाला ज्ञात्यण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पतोहूं तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको खड़े हैं । उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए । वहां पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की ओर रामने भी उनका सत्कार करके उनके ग्रामोंको भेज दिया । उस समय अयोध्या भरमें चारों ओर उत्सव ही उत्सव दीखता था । इस तरह राम अनेक प्रकारका लीलायें करते रहते थे ॥ १३६-१४५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितं 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वाद्दिँ दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनेके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिको साथ लेकर वनमें गये । मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इघर-उघर धूम रहे थे । उस समय उनके साथ शिकार खेलनेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था । रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी मस्तकपर बैधी थी, हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोधांगुली उँगलियोंमें बैधी थी । हाथमें धनुष-वाण धारण किये थे ॥ १-३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलबार और ढाल बगलमें झूल रही थी । बहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पड़ा था । इस प्रकारका वेश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे । उस समय सीता पालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको दूँढ़ते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे । कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते । यदि कोई उसे मारनेको नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे । एक

विटपोहीनसंत्रस्तलीनकेकिकुलाङ्कुलाम् । हरिणीगणसंत्रस्तां धावच्छापददिङ्गमुखाम् ॥९॥  
 कचित्पेरवफृत्कारझिल्लोरावविभीषिताम् । स्खङ्गयुथैः कचिल्लक्ष्मीं दधानामिव दंतिनाम् ॥१०॥  
 क्वचित्कोटरसंविष्टशुकां नादविनादिनीम् । मृगारिपदमुदाभिरुद्रितां च क्वचित् क्वचित् ॥११॥  
 शार्दूलनखनिभिन्नरोहिदक्तारुणां क्वचित् । पीवरस्तनभारात्सुस्तिनग्धमहियोगणैः ॥१२॥  
 अवरोधाजिरक्षोणि सूचयन्तीमिव क्वचित् । क्वचिद्वृक्षघनच्छायां वनपुष्पसुगंधिनीम् ॥१३॥  
 कचिल्लतागृहद्वारभूमंडलसतोरणाम् । अर्घनिःसृतनिमोक्नागभीममहद्विलाम् ॥१४॥  
 वृत्तास्याजगरैव्याप्तिं क्वचिन्निर्मुक्तसर्पिणीम् । क्वाचिदाचानलज्वालाशिखाव्यासमहीरुहाम् ॥१५॥  
 उवलनिकुंजनिर्गच्छद्वक्ष्याग्रवसद्वटाम् । व्यमुचंस्तु शुनां यृथं शशकेषु क्वचित् क्वचित् ॥१६॥  
 पञ्चलेषु च विश्रांतः पुनर्याति वनांतरम् । ततो मध्याह्नसमये निवासं सरसस्तटे ॥१७॥  
 कारयामास सेनायाः सीतायाश्च रघृत्तमः । स्वयं गुदाऽकरोत्कीडामाखेटव्यूहसंबृतः ॥१८॥  
 दुद्राव मृगपृष्ठेषु मुक्त्वा वाणं जवान तान् । एवं खेलति राजेन्द्रेव्याग्रवर्गेण च वै द्विज ॥१९॥  
 तत्र कोलाहलत्र स्तः पंचास्यो निर्गतो वनात् । स केसरी महावेगस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ॥२०॥  
 स्फुरदंगसमाक्रांतदुर्गमार्गमहीतलः । कदाचिद्वगनारूढः कदाचिद्भूमिगथलः ॥२१॥  
 न रयाल्लक्ष्यतां याति धन्विनां पृष्ठगामिनाम् । क्वचिद्दृष्टिपथं याति दर्शनागोचरः क्वचित् ॥२२॥  
 वक्रस्त्रोतोऽतिगंभीरं कंटकीद्रुमसंकुलम् । वृक्षव्याग्रसमाकीर्णं पर्वतेश्च भयंकरम् ॥२३॥  
 प्रविष्टो विषमारण्यं रामस्तस्य पदानुगः । दूरादूरं ततो गत्वा देशादेशं च निर्जनम् ॥२४॥

झाड़ीको छोड़कर दूसरीमें और दूसरीको छोड़कर तीसरीमें, इस तरह बार बार इघर-उघर वनस्थलीमें दोड़ रहे थे ॥ ४-८ ॥ उस समय वही वृक्षोंपर रहनेवाले मयूरके परिवार मारे डरके वृक्षोंके खोड़रोंमें छिप जाते, हरिणियाँ चकित नेत्रोंसे इघर-उघर निहारती हुई भाग जातीं, बनेले जीव कोलाहलसे त्रस्त होकर अपनी माँदसे निकल पड़ते, कहीं अपने विलसे निकलकर संपर्ण फुफकार मारते थे और कहीं झींगुरोंकी भीषण झनकार सुनाई देती थीं । कहीं गेंडोंके समान शोभाको धारण किये हुए हाथी भाग रहे थे, कहीं कोटरमें बैठे हुए तोते अनेक प्रकारकी बोलियाँ बोल रहे थे, कहीं शेरोंके पैरोंके निशान दिखाई देते थे और कहीं किसी सिंहके द्वारा मारे गये हरिणके रुचिरसे पृथ्वी रक्तवर्ण हो गयी थी । कहींकी भूमि बड़े-बड़े स्तनोंवाली भेसोंसे अन्तःपुरके आँगनसदृश मालूम पड़ती थी और कहींकी पृथ्वी धने वृक्षोंकी छायासे छायामयी हो गयी थी । कहीं वनपुष्पकी सुगन्धिसे वह स्थली सुगन्धमयी हो रही थी और कहीं प्राकृतिक रीतिसे लतामण्डप बन गया था । उसपर जो भीर मौड़रा रहे थे, वे उसके तोरण सदृश जान पड़ते थे । कहीं सौंपके शरीरसे आधी केंचुली छूटकर विलके मुखपर लगी थी । इस प्रकार बड़े-बड़े सर्पोंकी विलें दिखाई पड़ती थीं ॥ ९-१४ ॥ कहीं मुँह वाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे । कहीं सौंपोंकी केंचुलियाँ दिखायी देती थीं । कहींपर दावानल लगनेके कारण जलते हुए निकुञ्जोंमेंसे व्याघ्र-वृक आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल निकलकर भाग रहे थे । रामके साथ आये हुए शिकारी खरगोंशोंपर कुत्ते दौड़ा रहे थे । कोई तलेया मिल जानेपर वे लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जाते थे और मध्याह्नके समय किसी बड़े सरोवरपर सीता आदिके साथ आराम करते थे ॥ १५-१७ ॥ तीसरे पहर उठकर फिर शिकारमें लग जाते थे । रामचन्द्रजों किसी भी मृगको देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ते और उसे बाणोंसे मार डालते थे । इस प्रकार रामचन्द्रजों मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'सिंह आया-सिंह आया' यह कोलाहल होने लगा । सिंह इससे उड़कर और भोवेगसे चला । उसके बड़े-बड़े दाँत थे । देखनेमें वह बड़ा भयावना मालूम पड़ता था । वह बड़े वेगसे दुर्गम मार्गको तें करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था । वह कभी छलांग मारकर आकाशमार्गसे चलता और कभी पृथ्वी-पर दौड़ता चलता था ॥ १८-२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनेके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं । इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, जहाँ एक टेढ़ा-

एकाकी हयमारुढो विवेश गिरिगहरम् । सर्वे व्याधाश्च लक्ष्मणाद्याश्च वंधवः ॥२६॥  
 रामादर्शनसंभ्रांता वश्रमुस्त इतस्ततः । अथ रामः केसरिणं जघान शितपत्रिणा ॥२७॥  
 ततः स दिव्यरूपेण नत्वा प्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरश्चाहं मया भुक्ता पतिव्रता ॥२८॥  
 मुनिपत्नी हठेनैव तया शमस्त्वहं क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्त्वया मयि कृतोऽद्य हि ॥२९॥  
 अतस्त्वं मद्विरा सिंहो भवाद्यैव महावने । तदा मया प्रार्थिता सा पुनर्मामाह राघव ॥३०॥  
 चिराद्रामशरस्पशार्च्छापान्मुक्तिर्भवत्तच । अतोऽद्य त्वच्छरस्पशार्च्छापान्मुक्तश्चिरादहम् ॥३०॥  
 इत्युक्त्वा राममामंत्रं स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचंद्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥  
 तत्र तस्यौ क्षणं यावत्तावत्तद्विग्रहारे । गुहाद्वारि शिलामेकां दर्श योजनायताम् ॥३२॥  
 महतीं ताँ शिलां दृष्ट्य रामो विस्मितमानसः । घनुष्कोद्याऽक्षिपद्वदूरं गुहायां संविवेश ह ॥३३॥  
 कियद्वदूरं ततो गत्वाऽप्ये प्रकाशं दर्श सः । तत्र द्रोण्यां पर्वतस्य तपस्यंत्यः लियः प्रभुः ॥३४॥  
 दर्श रामशत्वारः किञ्चिदंतरसंस्थिताः । अस्थिचमावशिष्टैश्च देहैर्दृग्गोचरीकृताः ॥३५॥  
 शासैः संजीविताश्रेति ज्ञातवांस्ता रघूत्तमः ॥३६॥

निजरूपाणि चत्वारि कृत्वादौ तत्पुरः स्थितः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥  
 वरयच्च वरान्नार्यः प्रसन्नोऽहं रघूत्तमः । ततस्ता रामसंस्पशान्मांसरक्तादिधातुभिः ॥३८॥  
 पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयन्ननिजैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्यं तास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

मेहा नाला वह रहा था । बहुतसे कॉटीले वृक्षोंकी झाड़ियाँ उसके आस-पास उगी थीं । चारों ओरसे पर्वत-की दीवारें खड़ी थीं और भेड़िये तथा व्याघ्र आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे । ऐसी अवस्थामें भी राम उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे । उस समय रामचन्द्रजी अपने साथियोंसे विछुड़कर बहुत दूर निजंन बनमें उसके साथ निकल गये । अन्तमें वह सिंह पर्वतकी एक विशाल कन्दरामें धूस गया और रामचन्द्रजी भी घोड़ेपर चढ़े हुए उसके साथ कन्दरामें धूस गये । इधर रामके लक्ष्मणादि भ्राता, उनके दूत तथा शिकार खेलानेवाले बहेलिये घबराकर रामको इधर-उधर खोजने लगे । उसी समय रामने सिंहको एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२-२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके कहने लगा—हे राम ! मैं पहले विद्याधर था । मैंने एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हठात् भोग किया । जिससे कुपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तूने सिंहके समान बरबर मेरी आबरू उतारी है, इसलिए मेरी वाणीसे तू अभी सिंह हो जा । इस प्रकार शाप पा जानेपर मैंने उससे विनती की तो उसने कहा कि आजसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे, तब तू मारस्पर्श होते ही शापसे मुक्त हो जायगा । सो बहुत समय बाद आपकी दयासे में आज उस शापसे मुक्त हो गया । इस तरह अपना पूर्ववृत्तांत सुनानेके बाद उसने रामसे आज्ञा मार्गी और अपने लोकको चला गया । रामचन्द्रजी अपने घोड़े-पर बैठे ही बैठे थोड़ी देर वहाँ ठहरे तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर योजनों लम्बी-चौड़ी एक शिला लगी हुई है । इतनी बड़ी शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने घनुषकी कोरसे उसे दूर हटा दिया । तब वे उसके भीतर चुसे । कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें कुछ प्रकाश-सा दिखायी पड़ा । और आगे बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं । उनके शरीरमें हड्डी और चमड़ेके सिवाय मांसका नाम भी नहीं था । उनका श्वास चल रहा था । इससे उनको यह जात हुआ कि वे स्त्रियाँ अभी मरीं नहीं, प्रत्युत जीवित हैं । ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार शरीर बनाया और सबके सम्मुख जाकर कहने लगे—“हे नारियों ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मांग लो । मैं राम तुम लोगोंकी तपस्या-से प्रसन्न हूँ ।” इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनके शरीरका स्पर्श किया । जिससे उनकी सूखी देहमें रक्त-मांसादिका संचार हो गया ॥ २७-२८ ॥ शरीर भर जानेपर उन सर्वोंने अपने नेत्रोंसे रामको देखा । उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम कोटि सूर्यकी दीप्तिके समान देवीप्यमान

नार्यो चिलोकयामासुः सर्वाः श्रीरघुनायकात् । कोटिद्युर्यपताङ्गाशाशांश्चापवा नासिधारिणः ॥४०॥  
 हयारुदान्नवेषण सर्वासां पुरतः स्थिरात् । चतुमूर्तीर्थकरूपस्ता दधा कंजलोचनाः ॥४१॥  
 अतिविस्मयमापन्नास्तदोचुस्तान् पृथक् पृथक् । के युर्वा वाजिमस्या हि कुतः सर्वं सनागताः ॥४२॥  
 युयं देवा दानवा वा गम्यते क्वाभुना पुरः । अस्माकं दर्थयतां सर्वं निष्ठार्थं आपिता वयम् ॥४३॥  
 अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । जातान्यद्यमहादृत्या दुदुभिः सोडास्त वा मृतः ॥४४॥  
 इति तासां वचः श्रुत्वा राघवस्ता वचोऽव्रवात् । अहं चतुर्भिर्वैश्वर्यं रामस्तवका न सशयः ॥४५॥  
 सप्तदीपपतिः श्रीमान् सूर्यवशसमुद्गवः । मृगयार्थं सप्तायातः केमरी निहतो वने ॥४६॥  
 धनुष्कोण्या शिलां त्यक्त्वा युष्मदंतिः मागतः । स्वकरस्पर्शमात्रण शरीराणि शुभानि हि ॥४७॥  
 मया कृतानि युष्माकं वालिना दुदुभिहतः । स मया निहतो वार्णी रावगस्यान्तकारिणा ॥४८॥  
 संभापिता वरान् दातुं युयं नवां मयाऽद्य हि । नाग्रेऽस्ति नन कार्यं हि पारवत्यं पुरीं ब्रजे ॥४९॥  
 यत्पृष्ठं तन्मया चोक्तं का युयं कथयतां मम । किमश्च दुदुभिः पृष्ठः का वांछा वियतां वरान् ॥५०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा दुन्दुभिर्निहतस्त्वति । शिलां निष्कासता चापि सर्वास्तुष्ट पराययुः ॥५१॥  
 ऊचुः सर्वस्तदा राममानन्दोत्कुल्लोचनाः । वर्यं ब्राह्मणपुर्वश्च चत्वारस्त्वय पाढश ॥५२॥  
 सहस्राणि नृपाणां च वैश्यानां कन्यकाः पुरा । समानीता बलादेव तेन दुन्दुभेना प्रभो ॥५३॥  
 लक्ष्मीभिर्विवाहांश्च सर्वनिकदिने त्वहम् । करामीति मन्यमानः स्त्रीरत्नानि जहार सः ॥५४॥  
 यानि यानि जहार स्त्रीरत्नानि रघुनन्दन । अस्यां द्रोष्यां स्थाप्य तानि दत्त्वा द्वार शिला वराष ॥५५॥  
 अचलां त्वद्विनान्यैश्च स्त्रीः समानेतुमादरात् । पुनाश्वरं गतो दत्या वयमत्रैव सस्थिताः ॥५६॥

हो रहे थे और धनुष-बाण तथा तलवार लिये हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुष्यका वेश धारण करके धोड़ेपर सवार होकर एक-एक स्वरूपसे उन चारोंके सम्मुख खड़े थे और उन सब स्त्रियोंका भा समान स्वरूप था और एक ही तरहकी वेष-भूषा थी । ऐसे रामको देखकर उन स्त्रियोंको बड़ा आश्र्वय हुआ और वे कहने लगीं—“आप लोग कौन हैं ? धोड़ेपर सवार होकर कहाँस आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहाँ जायेंगे ? कृपया हमें यह भी बतलाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम लोगोंका यह जीर्ण-शीर्ण शरीर इस प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? वह दुष्ट दुन्दुभी जांचित है या मर गया ?” ॥ ४१-४४ ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनकर रामने उन सवसे कहा—“सूर्यवंशमे उत्पन्न और सातों द्वीपोंका अधिपति राम नामका मैं एक राजा हूँ । इस समय अपने एक ही रूपको चार भागोंमें विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित हूँ । मैं यहाँ जङ्गलमें शिकार खेलने आया था और इसी कन्दरामें मैंने एक सिंहको मारा है । फिर तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बी-चौड़ी शिला देखी । उसे अपने धनुषकी कोरसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप आया और अपने हाथके स्पर्शसे तुम्हारे जीर्ण शरीरको धवित्र तथा सुन्दर बना दिया है । दुन्दुभी राक्षसको बालिने मार डाला । रावणका विनाश करनेवाले मुझ रामने उस वार्णीको भा मार डाला है ॥ ४५-४८ ॥ केवल तुम्हें वरदान देनेकी इच्छासे मैंने तुमसे संभाषण किया है । अब वहाँसे आगे जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं है । इससे अपनी अयोध्या नगरीको लौट जाऊँगा । तुमने हमसे जा कुछ पूछा, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्यों पूछा ? तुम्हारा बया कामना है ? इच्छित वर मुझसे माँग लो ।” जब उन सबोंने रामके मुखसे यह सुना कि दुन्दुभी मार डाला गया और हमारे द्वारपर लगी हुई शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं और आनन्दसे प्रफुल्लित होकर उन्होंने कहा—हे राम ! बहुत दिन हुए, वह दुन्दुभी राक्षस हम चार ब्राह्मणकी पुत्रियों तथा सोलह हजार शत्रियों तथा वैश्योंकी कन्याओंको हर लाया था । उसकी यह हार्दिक इच्छा था कि मैं एक ही दिनप एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा । इसी विचारसे वह अच्छी-अच्छी कन्याओंका अपहरण किया करता था ॥ ४६-४४ ॥ हे रघुनन्दन ! वह जिन सुन्दरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दरामें डालकर दरवाजेपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वर्तन्ते उग्रे नृपाणां च वैश्यानां वालिकाः प्रभो । वायुपर्णश्चिनाः सर्वाः श्रीविष्णवर्पितमानसाः ॥३७॥  
 तत्तासां वचनं श्रुत्वा भिन्नरूपैः पुनः प्रभुः । ता उच्चाच्च त्रियः सोऽहं विष्णुरेव न संशयः ॥३८॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनस्ता राममत्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेत्सत्यवाग्नि ॥३९॥  
 ततस्ता दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि परावर्त्य रघूत्तमः ॥४०॥  
 ततस्ताः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा नेमुः स्वमस्तकैः । ततो विष्णुः स ताः प्राह वः संदेहो गतो न वा ॥४१॥  
 ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽद्य भवत्तेशा गता हि नः । कियांस्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥४२॥  
 ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वासां मध्ये जनकजापतिः ॥४३॥  
 ततो रामोऽब्रवीत्ताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामवाणेन पीडिता राघवं मुदा ॥४४॥

भव भर्ता त्वमेवाद्य गांधर्वविधिना वने ।

अस्माभिस्त्वं कुरुत्वात्र सुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥४५॥

ततो नय पुरीं स्वीयां नस्त्वं माऽन्यद्विचितय । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमवृत्तित् ॥४६॥  
 एकपल्नीवतं मेऽस्ति न वाक्यमम वै मृपा । ततस्ता विहृला भूत्वा निषेतुर्जगतीतले ॥४७॥  
 पुनस्ताः प्राह रामः स गृणुञ्च वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण युयं क्रीडां भजिष्यथ ॥४८॥  
 मित्रविदा नामजिती भद्राऽन्या लक्ष्मणाहृत्वा । एवं नामानि युष्माकं भविष्यति तदा मया ॥४९॥  
 भविष्यति विश्वाश्च सर्वासां नात्र संसयः । तदा नानाविधान् भोगान् भजञ्च वै मया सह ॥५०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा किंचित्तुष्टमनाः त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वाक्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥५१॥  
 ताभिः शनैस्ततो रामो ययौ तुरगसंस्थितः । योजनोपरि ताः सर्वाः सहस्रं पोडशाः शुभाः ॥५२॥

या कि जिसे आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्तिमें हटानेको सामर्थ्य नहीं थी । वह हम लोगोंकी इस कन्दरामें डालकर कहों चला गया है । तबसे हम ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैष्याभोंको कन्याएँ यहां पढ़ी हुई हैं । वायु तथा वृक्षोंका पत्तियाँ हमारा भोजन हैं और श्रीविष्णुभगवान्‌के चरणोंमें हमने अपने मन लगा दिये हैं । इस प्रकार उनकी बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपसे खड़े श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि जिन विष्णुमें तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूँ । रामकी बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सच कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हमें दिखाओ । इसके अनन्तर भगवान्‌ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपसे सबको दर्शन दिया । जब उन्होंने विष्णुभगवान्‌को अपने सम्मुख देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । विष्णुभगवान्‌ने उनसे पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत हुआ ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुनीत दर्शनोंसे मेरा सब नलेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जायमान सन्देहके विषयमें बधा कहना है ॥५५-५२॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपसे उनके सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बोले कि तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँगो । तब कामवाणसे पीडित होकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ गान्धवं विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक आनन्दपूर्वक इस कन्दरामें हम लोगोंके साथ विहार कीजिए । उनकी यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता । क्योंकि मैं एकपल्नीवतधारी हूँ । मैं कभी झूठ नहीं बोलता, तुमसे सच कह रहा हूँ । यह बात मूलत ही वे स्त्रियाँ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥५३-५७॥ ऐसी दशामें राम उनको समझाते हुए कहने लगे—इस प्रकार अधीर न होकर मेरी बात सुनो । अभी तो नहीं द्वापर युगमें कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा । मित्रविन्दा, नामनजिती, भद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोगोंका नाम पड़ेगा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं है । उस समय तुम सब मेरे साथ नाना प्रकारके सुख भोगोगी । रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप चाहें तो जा सकते हैं । राम उन चारों कन्याभोंके साथ धीरेधीरे आगे बढ़े । एक योजन आगे जाकर गण्डकी नदीके किनारे एक झाड़ीमें

ददर्श गण्डकीर्तीरे वृक्षपण्डे रघृद्रहः । निमीलितदृशः शुभ्कास्तपसा दग्धयौवनाः ॥७३॥  
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

### द्वादशः सर्गः

( सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका वरदान )  
श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैः सर्वाः स्पृष्टा निजकरेण ताः । कृत्वा तारुण्यपूरौघपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥  
पूर्ववत्सकलं वृत्तं सर्वाः संश्राव्य विस्तरात् । वरं वरयतां शीघ्रमित्युक्त्वा च रघूत्तमः ॥ २ ॥  
हतं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हपोत्फुल्लाननाः स्त्रियः । पूर्ववद्विष्णुरूपाणि सहस्राणि हि षोडश ॥ ३ ॥  
सन्दशितानि रामेण तावंति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता दृष्टा ज्ञान्वा विष्णुं परात्परम् ॥ ४ ॥  
तं वरान्वरयामासुस्त्वन्नो भर्ता भव प्रभो । ततो राममुखाच्छ्रुत्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥  
परस्परं ताः सम्मन्त्रय प्रोचुः सर्वा मृगीदृशः । मया वृतस्त्वया चायं त्वया वृतस्तथा मया ॥ ६ ॥  
एवं तासु च सर्वासु वदन्तीषु रघूत्तमः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तेऽविचारयत् ॥ ७ ॥  
इमा वदन्ति किं सर्वा मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । वलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मरुद्रमघवादयः सुरा ये च सिद्धमुनयः पुरातनाः ।

तेऽपि योगवलिनो विमोहिता लीलया तदवलाभिरद्वृतम् ॥ ९ ॥

योषितां नयनतीक्ष्णसायकं भ्रूलतासु दृढचापनिर्गतेः ।

धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥ १० ॥

तावदेव दृढचित्तता नृणां तावदेव गणना कुलस्य च ।

तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमतादयः ॥ ११ ॥

उन सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे सब आँखें मूँदे थीं, तपस्यासे उनका शरीर सूख गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६८-७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित् 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने अपने हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनपरिपूर्ण कर दिया तो वे भी पहलेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं । इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप दिखा तथा सोलह हजार रामरूप वरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोंने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुभगवान् जाना ॥ १-४ ॥ उन्होंने भी पहलेवालियोंकी तरह रामसे प्रार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एकपत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसमें सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । तब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी ये स्त्रियाँ वरवस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५-८ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्धमुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी अद्भुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी सायकको बनुष्ठारी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

यावदेव वनितोत्सवासर्वैर्न माद्यति द्रुतमदेन पूरुषः ।  
 मोहयंतु मदयन्तु रागिण योपितः स्वचरितैर्भनोहरैः ॥१२॥  
 मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि कैर्गुण्यः ।  
 मांसरक्तमलमूत्रपूरिते योपितां वपुषि निर्गुणेऽशुचौ ॥१३॥  
 कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामारभन्ति सुविमृद्धचेतसः ।  
 दारुणः परिकीर्तिंताऽङ्गनामासन्निधिर्विमलबुद्धिविभिः ॥१४॥  
 यावदेव न सधीपमागतास्तावदेव हि व्रजाम्यदृश्यताम् ।  
 तहिं मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमहं करोम्यहम् ॥१५॥

अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदयिताप्रियम् । इति निश्चित्य श्रीरामस्त्रत तृष्णीं स्थितोऽभवत् ॥१६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वास्तास्तं प्रोचुर्नुपोत्तमम् । द्रुतस्त्वं नूनमस्मामिनात्रि कार्या विचारणा ॥१७॥  
 एकपत्नीवतं किं ते पार्थिवस्य रघूत्तम । अस्ति चेत्पूर्णतां प्राप्तं तत्कलं भोक्तुमर्हसि ॥१८॥  
 हन्त्युक्त्वा तास्तदा सर्वा गत्वा तत्संनिधिं जवात् । सव्याप्यमव्यवन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥  
 तददृष्टा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । युष्माभिरुक्ते भद्रमनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥  
 व्रतिनस्तन्न योग्यं मे मा खेदं गन्तुमर्हथ । आकर्ष्य रामवाक्यानि तमूचुस्ताः समन्ततः ॥२१॥  
 सकामध्वनिनोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ।

योद्दशसहस्रस्त्रिय उच्चुः

**धर्माद्योऽर्थतः कामः कामाद्रुर्भफलोदयः ॥२२॥**

इत्येव निश्चयं शास्त्रे वर्णयन्ति विपश्चितः । स कामो व्रतवाहुल्यात्पुरस्ते समुपस्थितः ॥२३॥  
 सेव्यतां विविधंभांगैः स्वर्गभूमिरियं ततः । श्रुत्वा तद्वचनं तासां रामस्ताः प्राह सस्मितः ॥२४॥

मृग उस वाणसे धायल नहीं हो जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित तभी तक हृष्ट रहता है, तभी तक कुलकी मर्यादा रहती है, तभी तक तपस्यामें मन लगता है, तभी तक नियमन्यत आदि होते हैं, जबतक स्त्रियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे पुरुषका मन भतवाला नहीं हो जाता और जबतक स्त्रियाँ उनपर मोहिनी डालकर अपने मनोहारी हाव-भावोंसे पागल नहीं बना देती ॥ ११ ॥ १२ ॥ ये मुझे अपनी धर्मरक्षामें तत्पर जानकर भी अपने गुणोंसे मुग्ध करना चाहती हैं । मांस, रक्त और मल-मूत्रसे परिपूर्ण स्त्रियोंकी अपवित्र देहपर कामी पुरुष सौन्दर्यकी कल्पना करके आनन्द लूटते हैं । मेरी समझसे तो वे लोग पूरे बावले हैं । क्योंकि विमल बुद्धिवाले लोगोंका कहना तो यह है कि स्त्रियोंका संग्रह बड़ा ही दारुण परिणामकारी होता है । अच्छा, जबतक ये मेरे समीप नहीं आ जातीं । इसी बीच में यदि चल दूँ तो अच्छा हो, मेरा व्रत निर्मल रह जाय । इसके सिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं दीखता ॥ १३-१५ ॥ अच्छा, यह भी देख लूँ कि ये मेरे साथ क्या करती हैं । यह निश्चय करके रामचन्द्रजी चुपचाप बैठ गये ॥ १६ ॥ उसी समय उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि हम लोगोंने आपको अपना पति मान लिया है । अब आप किसी प्रकारका विचारं मत करिये ॥ १७ ॥ हे राम ! क्या आपने एकपत्नीव्रत पालन किया है ? यह यदि सत्य है तो अब उससे प्राप्त फलका उपभोग कीजिए ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर वे सब उनके पास पहुंचीं और दाहिनी-बायीं दोनों भुजाओंसे रामको अपने भुजपाणमें भर लेनेकी चेष्टा करने लगीं ॥ १९ ॥ ऐसी अवस्थामें रामने उनसे कहा कि आप सब जो कुछ कह रही हैं, वह ठोक ही है । किन्तु हमारे जैसे व्रती मनुष्यके लिए वह उचित नहीं है । इस लिए तुम सब किसी प्रकारका खेद न करके ऐसी दुश्मेष्टासे अलग हो जाओ । इस तरह रामकी बाणी सुनकर चारों ओरसे वे सब कहने लगीं । उस समय कामवश उनके कण्ठकी ध्वनि वसन्त श्रुतुकं कोकिलके समान मधुर सुनाई देती थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सोलह हजार स्त्रियाँ बोलीं—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है । विद्वान् लोग शास्त्रोंका यही निर्णय बतलाते हैं । वही काम आपके

श्रीरामदास उवाच

वरान् दास्यामि युष्माकं नान्यं श्रोष्यामि किंचन । इत्युक्ताः पुनरुचुस्ताः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥  
ता ऊँचुः

दिव्यौषधं ब्रह्मविषयो रसायनं सिद्धिनिधिः साधुकुला वरांगनाः ।  
मन्त्रस्तथा द्युम्भजले च धर्मतो नेमे निषेध्याः सुधिया समागताः ॥२६॥  
कार्यं तु देवाद्यदि सिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च यांति नीतिगाः ।  
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥२७॥  
सांद्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्वचित्ताः सुगिरः स्वयम्बराः ।  
कन्थाः सुरूपाः परिपूर्णयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥२८॥

क वयं भूरिसौदर्यः क्वैकपत्नीब्रतं तव । तस्मादस्मानिदार्नीं त्वं मा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥  
गांधर्वेण विवाहेन नान्यथा नोऽस्तु जीवितम् । श्रुत्वा वाक्यं तु तत्त्वासां राघवः प्राह ताः पुनः ॥३०॥  
मो मृगाक्षयः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मविचक्षणैः । धर्मशार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतत्तुष्टयम् ॥३१॥  
वथोक्तं सफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यत् पूर्वमेकपत्नीब्रतं निजम् ॥३२॥  
आस्मन् जन्मनि तन्नाहं त्यक्तुमिच्छामि भोः स्त्रियः ।

एवं श्रुत्वाऽशयं तस्य ताः समीक्ष्य परस्परम् ॥३३॥  
करात्करान् प्रमुच्यास्य जगृहृर्दिं तदाऽवलाः । अन्योन्यमंघि रामस्य भुजौ तु जगृहृश्च ताः ॥३४॥  
एवं ताभिर्वेष्टमानमात्मानं वीक्ष्य राघवः । अन्तर्धानमगात्तत्र तासां मध्ये क्षणात् प्रभुः ॥३५॥  
किं कुर्वति त्विमाः सर्वा ह्यन्तर्धानं गते मयि । एवं तासां कौतुकं हि गुपरूपो ददर्श सः ॥३६॥

ब्रह्मतकी प्रबलतासे स्वयं प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करेंगे तो इसमें सन्देह नहीं है कि यह मर्त्यलोक ही आपके लिये स्वर्ग बन जायगा । उनकी बात सुनकर चकराये हुए रामचन्द्रजी कहने कर्ये कि सिवाय वर माँगनेके मैं तुम्हारी एक बात भी नहीं सुनूँगा । रामके ऐसा कहनेपर उन स्त्रियोंने कहा— हे राघव ! आप कह क्या रहे हैं ? ॥२४॥२५॥ दिव्य औषधि, ब्रह्मको जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें, रसायन, सिद्धिके खजाने, निधियाँ, अच्छी कलायें, अच्छी स्त्री और अन्न-जल पाकर सज्जनजन कभी महीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम देवात् सिद्ध हो सकता है तो नीतिग जन उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते । फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय । व्यर्थका आडम्बर बढ़ानेका क्या आवश्यकता ? ॥ २७ ॥ गाढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कुलमें उत्पन्न, जिनका चित्त स्नेहसे आद्रं हो गया हो, जो अच्छी-अच्छी बातें करती हों, जो वरके पास स्वयं आ पहुँची हों, जिनका सुन्दर स्वरूप हो और जिनका यौवन भी पूरी तरह उभड़ आया हो । ऐसी स्त्रियोंको जो लोग पाते हैं, वे धन्य हैं । साधारण श्रेणीके लोग ऐसी स्त्रियोंको नहीं पाते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैसी सुन्दरी स्त्रियाँ और कहाँ आपका एकपत्नीब्रत । इस कारण हम फिर पीं कहती हैं कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गान्धर्व विवाह किये हम लोग नहीं जी सकेंगी । उनकी बात सुनकर रामने कहा । श्रीराम बोले—हे मृगके समान नेत्रोंवाली स्त्रियाँ ! तुम केंद्रे यह कह रही हो कि कामको प्राप्त देखकर धर्मका परित्याग कर दो । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पै चार पदार्थ हैं । यदि एकके बाद एकका अच्छी तरह साधन किया जाता है तो वह सफल होता है । अन्यथा तिष्ठल हो जाता है अथवा विपरीत फल सामने आता है । अतः जो मैंने अपने एकपत्नीब्रतका कारण बहलापा है, उसका परित्याग नहीं कर सकता । इस प्रकार रामका आशय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका पुँह विद्वारने लगीं ॥ ३०—३३ ॥ तदनन्तर हाथ छोड़कर स्त्रियोंने रामका पैर पकड़ लिया, किन्तु कुछ स्त्रियोंने हृष्णी पकड़े रखा ॥ ३४ ॥ इस तरह उन लोगोंसे अपनेको छिरा हुआ देखकर राम कहाँ ही कन्तवीन हो गये ॥

अदृष्टा राघवं सर्वास्ताः क्षणात्प्रमदोत्तमाः । दृष्टा तद्भूतं कर्म विस्मयाचिष्टमानसाः ॥३७॥  
वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुरुत्य इव कातराः । संभ्रांतनयना दीना हत्यूचुस्ताः परस्परम् ॥३८॥  
व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहामिना । ज्वलज्ज्वालानलेनैव सुखिग्नं सार्दिकाननम् ॥३९॥  
स्यजेऽजालिकां मायां कांत दर्शय सत्वरम् । स्वात्मानं नर्मणा युक्तं ग्राम्यासे मध्यिकाऽपतत् ॥४०॥

स्त्रिय उच्चः

हा कष्टं दर्शितः कस्माद्वात्रा किं रचितं त्विदम् ।  
ज्ञातं महत्तमं तापं दातुं नस्त्वं समागतः ॥४१॥  
कच्चिच्चते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।  
कच्चिच्छृष्टोऽसि हे कांत कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥४२॥  
कच्चिच्चन्नो प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मासु नो रतिः ।  
कच्चिच्छ्रिनोदयसि नः कच्चिच्चन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टु त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिच्छ्रिनोपराधं हि त्वमस्मासु प्रकुप्यसि ॥४४॥  
कच्चिच्छृष्टःखं न जानासि परेषां विप्रलंभजम् । त्वदर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर सांप्रतम् ॥४५॥  
न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वदर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नय त्वं हि यत्र नाथ गतो द्वासि ॥४६॥  
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा । पर्यन्तं न हि पश्यन्ति कस्यचित्सज्जना जनाः ॥४७॥

इत्यं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।  
रामं द्रष्टुं बने सर्वा वभ्रमुस्ता इतस्ततः ॥४८॥  
वृक्षान् बनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं पतिर्न वा ।  
एवं सर्वास्तु पप्रच्छृ रामविश्लेषसज्जराः ॥४९॥

रे रे पिष्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं ब्रवीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव वर्यं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

फिर भी ये क्या करती हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तरूपसे वहाँ लड़े-खड़े देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको अलक्षित देखकर वे बहुत चकरायीं । फिर व्याकुल होकर हरिणियोंको नाईं चखल नेत्रोंसे इवर-उघर देखती हुई आपसमें कहने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय उनका हृदय विरहामिनसे पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहामिनको ज्वालासे उस जड़लमें भी थोड़ी देरके लिए करुणाकी धारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ वे बोलीं—हे कान्त ! इस ऐन्द्रजाल ( ठगहारी ) मायाका परित्याग करके हमें शोष्ण दर्शन दोजिए । हमने आपसे हँसी की और पहले ही ग्रासमें मक्खी गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ कितने दुःखकी बात है । हे विघात ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चित्तचोर ! जान पढ़ता है कि तुम हम सबको सन्ताप देनेके लिए ही यहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ तुम्हारा हृदय ही निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ ठोली तो नहीं कर रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें बुसनेका कोई वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इतने क्यों रुठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ दूसरेको घोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जो सकेंगी और यदि जीयेंगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंको ही इच्छासे, अन्यथा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ ही ले चलिये, जहाँ आप गये हों ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ दया करके हमें दर्शन देजिए । सज्जनजन कभी किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत देरतक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रतिक्षा की । तब भी जब वे नहीं आये, तब वे उनको दूँढ़नेके लिए बनमें इवर-उघर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रास्तेके प्रत्येक वृक्ष और बनीले पशुओंसे वे रामविरहिण्या यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वया रामो निरीक्षितः । बद शब्दान्तरुग त्वं नो बने रामो निरीक्षितः ॥५१॥

त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोपि परमान् शुभान् ।

बदायं जानकीकांतस्त्वयाऽरथे निरीक्षितः ॥५२॥

भो कदंब-बद्स्व त्वं तव पृच्छामहे वयम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥

पिक त्वमुत्तरं देहि सदा शब्दान् करोपि हि । पतिर्नः श्रीपतिः सीतापतिर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥

भो वारण मदोन्मत्त चूवारणसमः प्रभुः ।

सप्तद्वौपपतिः श्रीमान् रामोऽरथे निरीक्षितः ॥५५॥

शुक नः कथयाद्य त्वं प्रभुर्दृष्टोऽथ वा न वा ।

बद पुण्ये सरिच्छ्रेष्ठे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥

नः प्रभुः सप्तद्वीपानां प्रभुरत्र निरीक्षितः ।

भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसंभ्रांतः शुशुचुर्वने । ततस्ता गंडकीतीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

स्त्रिय ऊचुः

कि प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षसाऽरण्यमध्यतः ।

स्वस्थलं हृता गौतमीतटात्तक्तुते त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥१॥

त्वद्वियोगतस्तमानसाः सर्वतो बने शोकमागताः ।

एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माऽस्तु वै रतिः ॥६०॥२॥

नो वांछामो राघव त्वचो रतिमद्य यद्दद्वत्तं भूसुरजाभ्यो वरदानम् ।

तद्वनस्त्वं पूरय कामान्वरदानैर्वांछामस्ते सेवनमग्रये जननेऽपि ॥६१॥३॥

पूछती जाती थीं कि तुमने हमारे पति रामको तो इधर कहीं नहीं देखा है ? ॥ ५६ ॥ वे कहती थीं कि हे वृक्षोंके राजा पिष्पलदेव ! हमें बताओ कि तुमने रामको तो नहीं देखा है ? हम आपकी जरणमें हैं ॥५०॥ हे तुलसी देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण ! इस वनमें तुमने कहीं रामको तो नहीं देखा है ? ॥५१॥ हे कोकिल ! तू बड़ी मोठी बाणी बोलता है, अब उसी बाणीमें हमें यह बता दे कि तूने वनमें कहीं रामचन्द्रको तो नहीं देखा है ? ॥५२॥ हे कदम्ब ! तुझसे हम सब स्त्रियाँ वहीं पूछना चाहती हैं कि तूने सीतापति रामको तो कहीं नहीं देखा ? ॥५३॥ अरे पिक ! तू सदा 'पीकहा-पीकहा' बोलता रहती हैं । अब हमें यह बता कि तूने कहीं जानकीबल्लभ रामको देखा है ? देखा हो तो बतला दे ॥५४॥ हे मतखाले गजराज ! मनुष्योंमें हाथोंके समान थ्रेष्ठ रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? ॥५५॥ हे शुक ! तूहीं बता दे कि इस वनमें कहीं रामको देखा है ? हे पवित्र नदी ! तू वयों चुप है । सप्तद्वौपके अर्द्धाश्वर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजाको तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बता दे । हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कहीं सीतापति रामको देखा है ? ॥५६॥५७॥ श्रीरामदास कहने लगे—इस प्रकार रामके विद्योगसे पगली-सी होकर वे स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती-चलती गण्डकी नदीके किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनाभरे गायन गाने लगी—॥५८॥ हे प्रभो ! जब रावण वनमें सीताका हरण करके अपनी राजधानी लङ्घाको ले गया था, तब वया उनके लिए आपने कोई जाक नहीं किया था ? ॥५९॥१॥ हे नाथ ! आपके विद्योगसे हमारा हूदय जला जा रहा है । शोकसे बालुल होकर हम सब इस वनमें आ पहुंची हैं । हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दें और वीर वरदान भी दे डालें । यदि आप हमसे प्रेम नहीं करना चाहने तो न करिए ॥६०॥२॥ हे राघव ! अबतक हम सब कामदासतामय रतिनुख चाहती थीं । अब उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार आपने लङ्घण्यकी राजधानीका वरदान दिया था, उसी

अस्माभिर्यच्चलभावादपरादं तत्सर्वं त्वं मा स्मर पूर्वं करुणातः ।  
 नः प्राणास्ते दर्शनहेतोस्तनुमध्ये तिष्ठति त्वां पदपलुवयाच्चा क्रियतेऽद्य ॥६२॥४॥  
 भो भो राघव मा रुष्ट त्वं क्रोधं मा भज दासीष्वद्य ।  
 पर्यंतं न हि पश्यतीत्थं वांछामो न हि त्वत्तः कामम् ॥६३॥५॥  
 देहि त्वं निजदर्शनलाभं जन्माग्रथेऽर्पय नो वरदानम् ।  
 पाहि त्वं शरण शूपयाताः सर्वास्तारय नः प्रणमामः ॥६४॥६॥  
 राम त्वं किं निर्दयहृदयस्त्वसि नः किं नायात्यद्य खीजनकरुणा हृदये ते ।  
 इत्थं क्रोधं त्वत्पदयुगले पतितासु कर्तु विष्णो नार्हसि वरदो भव नोऽद्य ॥६५॥७॥  
 वाले दीने खीजनविमले तनये स्वे नो कुर्वन्तीत्थं बहुविमला भविमंतः ।  
 क्रूरं क्रोधं त्वं त्यज वरदो भव नोऽद्य वारं वारं करकमलैस्त्वां प्रणमामः ॥६६॥८॥  
 हे नाथ राघव रमेश्वर रावणारे सीतापते रिषुनिषुदन कंजनेत्र ।  
 त्वं देहि राम निजदर्शनमध्य विष्णो दुःखार्णवात्यरतटं नय कामिनीर्नः ॥६७॥९॥  
 त्वत्पादपद्मवरसेवनमर्थयामो जन्मांतरे कुरु दयां करुणामसुद्र ।  
 नोचेत्तवाद्य विरहाभिजजीवितानि त्यक्ष्याम एव नियतं सहसाऽद्य नद्याम् ॥६८॥१०॥

श्रीरामदास उवाच

नारीगीतं राघवश्चापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभूत्कामिनीनामवाग्रे ।  
 दृष्ट्वा रामं ताः स्त्रियश्चातितुष्टाः प्रोत्फुलास्यास्तं प्रणेषुः शिरोभिः ॥६९॥११॥  
 नारीगीतं मानवश्चापि श्रुत्वा सर्वान् कामान्प्राप्नुयान्निश्चयेन ।  
 तस्मादेतत्सर्वदा कीर्तनाय श्लोकार्कीयं प्रापठं छन्दचित्रस् ॥७०॥१२॥

तरहु वरदान देकर हमारो भो कामना पूर्ण करें । हम किसी अगले जन्ममें ही आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥३॥ हमने करुणावण अथवा चंचलतासे कोई अपराद किया ही तो उसे आप भूल जायें । मेरे प्राण आपके दर्शनावं व्याकुल हैं । इस समय हम आपके दर्शनोंको ही भोख माँग रही हैं ॥ ६२ ॥ ४ ॥ हे राघव ! आप नाराज न हों और दासियोंपर क्रोध न दिखलायें । हम सब आपसे कामवासनाकी पूर्ति नहीं चाहतीं ॥ ६३ ॥ ५ ॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें । हम सब आपकी शरणमें हैं । आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करिए । हम आपको प्रणाम करती हैं ॥ ६४ ॥ ६ ॥ हे राम । क्या आप इष्टने निर्दयी हैं कि जो हम स्त्रियोंको इस प्रकार दुखी देखकर भी आपके हृदयमें दया नहीं आती ? हे विष्णो ! आपके पैरोंमें पड़ी हुई हम अबलाओंपर आपको इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए । हमपर दया करके हमें वरदान दोजिए ॥ ६५ ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् लोग बच्चोंपर, गरीब स्त्रियोंपर तथा अपनी सम्मानपर इस प्रकार कोप नहीं किया करते । इस कारण अपने क्रूर कोपका प्रत्याहार कीजिए । हम सब हाथ दोढ़कर प्रणाम करती हैं, हमें वरदान दोजिए ॥ ६६ ॥ ७ ॥ हे नाय ! हे राघव ! हे रमेश्वर ! हे रावणारे ! हे सीतापते ! हे रिषुनिषुदन ! हे कञ्जनेत्र ! हे विष्णो ! हे राम ! अपना दर्शन देकर आप हम कामिनियोंको दुःखसागरसे पार कीजिए ॥ ६७ ॥ ९ ॥ हे करुणाके सनुद्र ! अब दया कीजिए । हम दूसरे जन्ममें आपकी सेवा कर्लेली हस्तुक हैं । हम आपसे यही भिक्षा माँगती हैं । यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग देंगी ॥ ६८ ॥ १० ॥ रामदासने कहा—इस प्रकार चरण कामिनियोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने प्रकट हो गये । रामको प्रत्यक्ष देखकर वे स्त्रियाँ दहूत प्रसन्न हुईं और विकसित वदन होकर वार-बार प्रणाम करने लगीं ॥ ६९ ॥ ११ ॥ प्रत्येक मनुष्य इस नारोगीतको सुनकर अपनी अभिलिखित कामनाएँ पूर्ण कर सकता है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इस नारीगीतको

अथ रामो ददौ ताम्यो वरांस्तास्तोषयन् प्रभुः । युं शृणुध्वं भो नार्यः पुरा व्याप्राग्नो मया ॥७१॥

बहुत्तीहेतुना रुक्ममूर्तयः पोडशापिताः ।

तासां दानेन संतुष्टास्ते विप्रा मां तदाऽनुवृत्तन् ॥७२॥

**फलं सहस्रगुणितं** तवास्तु रघुनन्दन । अतस्तत्कलनश्चाहं द्वापरे कृष्णरूपघृक् ॥७३॥

करोमि पाणिग्रहणं युध्माकं द्वारकापुरि ।

युं नानानृपाणां च भवध्वं वालिकास्तदा ॥७४॥

**भौमासुरस्तदाऽयं वै** दुंदुभिस्तु भविष्यति । भौमासुरश्च युध्माकं पूर्ववत्स हरिष्यति ॥७५॥

तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।

ततो मया सुखेनैव क्रीडध्वं हि यथार्थच ॥७६॥

एवं ता रामावाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रमुदिताननाः ।

आनन्दोत्फुल्लनयनाः सुखमापुवेराङ्गनाः ॥७७॥

एतस्मिन्नंतरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शर्नेस्तत्राय युस्तत्र पदांकितपथा प्रभुम् ॥७८॥

पोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये हृष्टा रघूतमग् । परं विस्मयमापुस्ते प्रणेमुर्जगदोश्वरम् ॥७९॥

श्रुत्वा राममुखात्सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । सर्वं सन्तुष्टमनसस्तस्युः श्राराघवाग्रतः ॥८०॥

ततो रामाज्ञया दृताः शतशाऽथ सहस्रशः ।

वाहनान्यानयामासुः सेनावासस्थलान्मुदा ॥८१॥

तेषु ताः स्त्राः सुमंस्थाप्य वाहनेषु रघूतमः ।

शर्नेः सेनानिवासे स ययो सीतांतिके प्रभुः ॥८२॥

वरस्ता जानकीं नेषुः सीतां वृत्तं रघूतमः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥

वरस्ताः पूजयामास वस्त्राभरणं रसौ । ततो रामः स कासारं सेनावासस्थलांतिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करें ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हें स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंको पानेका इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सूखणकी सोलह स्त्रियाँ बनवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था । इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बदले सोलह हजार स्त्रियाँ प्राप्त होंगी । अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरमें कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा । उस जन्ममें तुम अनेक राजाओंकी कन्याएँ होओगी । दुन्दुभी राक्षस जिसको कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भौमासुर होगा और इस जन्मके समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भौमासुरको मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे तुम सब सानन्द हमारे साथ विहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ ७७ ॥ इसी समय रामको खोजते हुए उनके पैरोंके निशान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँचे । जब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामको देखा तो बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामको उन लोगोंने प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वास्तविक वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके आगे बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों वाहन आये । जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, वहीं कि सीताज्ञे बैठी थीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहीं पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका जो सच्चासच्चा हाल था, सो कह सुनाया ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों-आज्ञारणोंसे उनका सलार किया । बोढ़ी देर बाद रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोबर देखा, जो अपनी

ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पर्द्ययंतमपां पतिम् । घनपादपमध्यस्थं सुतीर्थसलिलं शुभम् ॥८५॥  
 विशालं विकचांभोजमधुमत्तमयुवतम् । पश्चिनीपत्रसंयुक्तं छन्नं मरकतैरिव ॥८६॥  
 स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा । चलञ्जलचरोऽङ्गिनवीचिराजिविराजितम् ॥८७॥  
 अन्तर्ग्राहगणकर्त् खलानामिव मानसम् । कच्चित्तेवालदुर्गम्य कृपणस्येव मंदिरम् ॥८८॥  
 नानाविहङ्गसर्वातिं शमयतं दिवानिशम् । उदारमिव सर्वस्वैरापन्नातिंहरं महत् ॥८९॥  
 तपयतं हिमाम्भोमिः शापदानस्वपितनिव । हरंतं सर्वसतापं हिमांशुमिव चाह्निकम् ॥९०॥

तं दृष्ट्वाऽभूतसुसंतुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।

तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥९१॥

भुक्त्वा वन्धुजनैः सर्वेराखेटगणसंवृतः । उवास सरसस्तीरे रम्याः संकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः शरासने वाणं कृत्वा रात्रौ स्थितास्तरौ ।

व्याधाः संधानमास्थाय रुद्धुः ककुभां पदः ॥९३॥

एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्य वागुराः । निशाधें निर्गतं यूथं शूकराणां सरस्तटे ॥९४॥

चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधसंकुले । राजा विद्वास्तदा कोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वरदास्ते विद्वाः पेतुर्महीतले ।

तान्दत्वा तुमुलं नादं चक्रव्याधाः सुदर्पिताः ॥९६॥

घावन्तोऽपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाय भट्टैर्भूपः सेनावासं ययौ पुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्यव स्थित्वा रामो वने सुखम् ।

भुक्त्वा नानाविधान् भोगान् सीतया स्वपुरो ययौ ॥९८॥

गहराईसे समुद्रको मात कर रहा था । उसके आस-पास घनी वृक्षावला लगी हुई थी, स्वान-स्वानपर घाट वने हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसका लम्बाई चौड़ाई भी चाड़ी नहीं थी, खिले हुए कमलके फूलोंपर भौंर गुब्जार रहे थे, फैले हुए पुरइनके बड़े-बड़े पत्ते मरकतक समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सज्जन प्राणोंके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछलियाँ उछल रही थीं । जलचर प्राणियोंके इवर-उघर चलनेके कारण बार-बार उसमें लहरें उठ रही थीं ॥ ८७ ॥ खल मनुष्यके हृदयके समान उसमें कितने ही घड़ियाल भरे थे । कहीं-कहीं कंजूस प्राणीके घरकी तरह सेवार भरे थे, इससे उसमें प्रविष्ट हाना दूभर लगता था ॥ ८८ ॥ दिनरात कितने ही पक्षों आध्य लेकर अपनी थकावट दूर कर रहे थे । इससे वह सरोवर किसी ऐसे सज्जनके समान मालूम पढ़ता था, जो अपना सर्वस्व लुटाकर गरावों तथा शरणागत जनोंको रक्षामें तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अपने ठड़े जलसे वह उसी तरह बनेले जीवोंका प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन भरके परिश्रमसे दुःखों जनोंकी समस्त पीड़ा रातमें हरमें लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरोवरको देखकर सीता तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । उसमें स्नान किया, मध्याह्न कालको नित्यक्रियायें कीं और भोजन किया । फिर सारे शिकारियोंको साथ लेकर उसी तड़ागके समीप डेरा ढाल दिया और अनेक तरहकी कहानियाँ कहते-कहते समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो वहेलियोंने अनेक सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ागको घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना घनुष-बाण ठीक करके एक वृक्षके ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याधे जाल बिछाकर तत्परताके साथ सरोवरके चारों तरफ बैठ गये और ठाक आधो रातका समय हुआ, तब बनेले शूकरोंका एक यूथ आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कन्द खाकर वह शूकरयूथ वहेलियोंके ऊपर टूट पड़ा । उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीने मार डाला और बहुतोंको वहेलियोंने समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ शणभरमें वे सारे शूकर मार डाले गये । उनको मारनेके अनन्तर व्याधोंने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ तब वहेलिये मारे खुशोंके दौड़ते हुए उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे । तब राम उन सबोंको तथा

ततो विप्रानुपान् वैश्यान् समाहृय रघृतमः ।

या यस्य दुहिता नारी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥११॥

तस्मै तस्मै ददौ तां तामेवं सर्वा व्यसर्जयत् ।

वस्त्रालंकारभृपाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥

ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजवालिकाः ।

ततः स्वं स्वं पुरं नीत्वा नृपा वैश्याः प्रपोर्णिंग ॥१०१॥

नृपुत्रैवैश्यपुत्रैस्तासां चक्रः सुमंगलम् । रामप्रसादात्ताः प्रापुः पतिसंगमुखं ख्यिः ॥१०२॥

ताश्चापि द्विजपुत्रपस्तु पितृणामेव सद्गमु ।

निन्युः स्त्रीयायुपं तत्र व्रतचर्यादिभिः सुखम् ॥१०३॥

विवाहकालातिक्रमणात्र ता उद्घाहिता द्विजैः ।

जन्मांतरेण ता सर्वाः कृष्णः पन्नीः करिष्यति ॥१०४॥

अथ रामः सुवाहोश्च पुत्रस्य मथुरां पुरीम् । विवाहार्थं सीतया स पौरीजानपद्दर्थयौ ॥१०५॥

तत्र वैवाहिकं कर्म संपाद्य रघुनन्दनः । तस्यौ तत्र कियन्कालं मथुरायां यथामुखम् ॥१०६॥

एकदा जानकीवाक्यात्कालिग्न्याः संकरे शुभे । निशायां हेमरथंके सुखं सुष्याप राघवः ॥१०७॥

एतस्मिन्ननंतरे दासीर्दीपान् दृष्टा विनिद्रितान् ।

स्त्रीरूपेणाथ कालिंदी रामांत्रि मंसपृशच्छन्नैः ॥१०८॥

ततो रामः प्रचुद्रोऽभूददर्शं पुरतः स्थिताम् ।

मूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिंदीं कंजलोचनाम् ॥१०९॥

दिव्यालंकारवस्त्राद्यां दिव्यन् पुरगाजिताम् । नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुंभपयोधराम् ॥११०॥

स्मिताननां सुरभीरु किंकिणाजालमालिकाम् ।

केयूरकुंडलाद्यां तां प्रोत्तुङ्गजघनां वराम् ॥१११॥

सैनिकोंको साथ लेकर अपने शिविरको लौट आये । इस प्रकार सात दिन बनमें रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपभोग करके राम अपनी अयोध्यापुरीको लौट पड़े ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर दुम्दुभी द्वारा हरण की हुई उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्री थी, उन-उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर दे दी और उन वालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करके विदा कर दिया ॥ ६९ ॥ १०० ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कन्याओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आजानुसार अपने-अपने घरोंको ले गये और नूपों तथा वैश्योंने अच्छै बरोके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीको कृपासे उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणकी वालिकायें थीं, वे विवाहकाल व्यतीत हो जानेके कारण विवाहन करके यूँही पिताके घरपर व्रत-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ कुछ दिनों बाद सुवाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मथुरापुरी गये ॥ १०५ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्यं सम्पादन करके कुछ दिन मथुरामें ही रहे ॥ १०६ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर सोये । उस समय वहाँके सब दासों और दासियोंको निद्रित देखकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और घोरेसे उनका पैर पकड़ा ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी जाग गये और सामने सूर्यकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोंवाली कालिंदीको देखा ॥ १०९ ॥ उस समय उसके शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण पड़े थे । पैरोंमें सुन्दर नूपुर छन्दना रहे थे । नील कमलकी पंखुड़ियोंके समान उसका रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ ११० ॥ मुस्कराता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभुदृष्टा क्षणं तृष्णीं व्यचिन्तयत् । धन्यो विधाता येनेयं कालिन्दी रचिता पुरा ॥११२॥  
इत्याश्र्यमना भूत्वा तस्सौदैव व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वदागमनकारणम् ॥११३॥  
सा प्राह तं विलजंती सर्वं त्वं वेत्सि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं चैकपत्नीव्रतं मम ॥११४॥

इह जन्मनि कालिन्दि त्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।

यावत्सीता प्रबुद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥

सा रामवाक्शरेणैव भिक्षमर्मस्थला भुवि । मृच्छामिवापत्त्रैव तां दृष्टा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥  
डचिष्ठोत्तिष्ठ कालिन्दि श्रुणु त्वं वचनं मम । द्वापरे कुण्डलपेण त्वा करिष्याम्यहं ख्यिम् ॥११७॥

विवाहेनैव गच्छाद्य तदा भोक्ष्यसि मत्सुखम् ।

इति श्रुत्वा रामवाक्यं किञ्चित्पृष्ठमना नदी ॥११८॥

नन्दा रामं ययौ तृष्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।

ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वपुरीं ययौ ॥११९॥

एवं साकेतनगरे रामः स्त्रीवंधुदेहजैः ।

चरितान्यकरोन्नाना पापद्वन्नानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वाद्वै  
योद्धासहस्राधिककालिद्यादिपञ्चस्त्रीवरदानं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

या, केलेके स्वमेकी नाईं उसकी जंघाएँ थीं । किकणी, केयूर, कुण्डल आदि आभूषण अपनी छटा दिखा रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम घोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता धन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीको रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सौन्दर्य देखते रहे । इसके अनन्तर उससे कहने लगे—तुम अपने आनेका कारण बतलाओ ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर सकुचाती हुई कालिन्दीने कहा—हे राघव ! तुम सब कुछ जानते हो । फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी ! इस जन्ममें मैने एकपत्नीश्वत धारण कर रखका है । इसलिये सीता जाग जाय, इसके पहले ही तुम यहांसि चली जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य वाणके समान उसके हृदयमें लगे, जिससे वह बहींपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । फिर रामने कहा—कालिन्दी ! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो । हापर-मुगमें मैं कृष्ण होकर तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, आज तुम लौट जाओ । जन्मान्तरमें तुम मेरे साथ विहार करके सुखी होओगी । इस प्रकारकी बात सुनकर यमुनाको कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११८ ॥ तदनन्तर रामको प्रणाम करके उनका ध्यान करती हुई वह लौट गयी । उधर राम भी अपनी सेना तबा रीताके साथ अयोध्या चले गये ॥ ११६ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकेतपुरीमें अपने पुत्रों तथा साकाके साथ अनेक लीलायें किया करते थे, जिनका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति शतकोटि-रामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपांडेयविरचित‘ज्योत्स्ना’भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वाद्वै द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं पूर्वाद्वै समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रपैणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’७भिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

( रान द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिवन्ध )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रमाजानिः सुहृद्दिः सदसि स्थितः । वीजितशामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरः कश्चित्समास्थितः । वाराङ्गनानां नृत्यादिं दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥  
 तद्वास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकायां युद्धसमये रावणस्य शिरांसि खात् ॥ ३ ॥  
 रामचाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीरामं बन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥  
 तेषां विक्रालतां दृष्ट्वा दंतादीनां रघृत्तमः । मामत्तुं हि पुनर्यान्ति शिरांस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥  
 रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरांस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्येव वारं वारं त्वरान्वितः ॥ ६ ॥  
 तद्वृत्तं राघवः स्मृत्वा किं दशास्यस्य वै शिरः । समागतं समामध्येऽत्रेति पाश्वेऽप्यलोकयत् ॥ ७ ॥  
 मायाविनो राक्षसाश्च संत्यत्रेति विचित्य च । एवं यदा यदा हास्यं स शुश्राव रघृत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे। उस समय रामपर चेवर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे। इसलिए रामकी शोभा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक बेश्याओंका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हारयको सुना तो रामको उस समयकी एक बात याद आ गयी, जब वे लंकायें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देते थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे मेरी बुद्धि ठिकाने आयी है। इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए बन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दाँतों आदिकी विकरालता देखकर रामको यह ख्याल होता था कि वे मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं। इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे। यह उपाय रामको एक दो बार नहीं—पूरे एक सी एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर ठहाका नहीं मार रहे हैं। इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायें तो क्या आश्र्य है। इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववृत्तं स्मृत्वा पाश्वे व्यलोकयत् । ततो रामः क्षुणं चित्ते चिंतयामास सादरम् ॥९॥  
 यदा यदा अ॒यतेऽत्र हा॒स्यं केनापि यत्कृतम् । तदा तदा दशास्यस्य शिरोहा॒स्यं स्मराम्यहम् ॥१०॥  
 मायाविनो राक्षसास्ते माँ विस्मार्य पुनश्चिरात् । मामत्तुमत्र यास्यंति त्विति मत्वा स्वचेतसि ॥११॥  
 अन्यच्च निदित्तं हा॒स्यं नातिशास्त्रेषु सर्वदा । अतो हा॒स्यं वर्जयामि सर्वेषां भूनिवासिनाम् ॥१२॥  
 इति निश्चित्य हृदये लक्ष्मणं वाक्यमत्रवीत् । दुंदुभिं घोष्यस्वाद्य पुर्या राष्ट्रेऽत्रनीतले ॥१३॥  
 स्मिताननो नरः कश्चिन्नारी वाऽथ सुहृच्च वा । सीता वा तनयो वंधुः स मे दंब्यो भवेदिति ॥१४॥  
 तथेति रामवाक्यात्स घोष्यामात् दुन्दुभिष् । पौरा जनपदाः सर्वे श्रुत्वा शिक्षाष्वनिं प्रभोः ॥१५॥  
 रामदण्डभयात् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वारांगनानुत्यगीते नटगीतप्रवर्तने ॥१६॥  
 स्त्रीभिः सुहृद्भिर्मित्रैश्च विनोदानुत्सवान् वरान् । मांगल्यानि च कर्माणि हा॒स्यकारीणि नाचरन् ॥१७॥  
 वंशस्तं भक्तलाभिश्च कौतुकानि हि यानि च । तूर्यघोषादिमाङ्गल्यकर्माणि विविधाः कथाः ॥१८॥  
 सांवत्सरोत्सवान् सर्वान् यात्रायज्ञोत्सवान् शुभान् । कौतुकानुत्सवांश्चैव विवाहादिषु कर्मसु ॥१९॥  
 वार्ताश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययौ नावश्यकात्कार्यादिना सदसि कः प्रभुम् ॥२०॥  
 पुराणानीतिहासांश्च न पठन्ति स्म केचन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामकर्मादिपृत्सवान् ॥२१॥  
 पौरा जानपदाः सर्वे सप्तद्वीपनिवासिनः । एतानि हा॒स्यकारीणि नानाकर्माणि भूतले ॥२२॥  
 रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डभयात् कदा । एवमासीद्वयमेकं तदा भूम्यां कदापि हि ॥२३॥  
 स्मिताननं कस्य नामीन्न चक्रुम्डनादिकम् । तदोत्साहदेवताश्च नानाकर्माङ्गदेवताः ॥२४॥  
 इन्द्राय कथयामासु स्तद्वृत्तं जगतीभवम् । इंद्रादीनां सुराणां च कर्मांगपूजनादि हि ॥२५॥  
 नासीद्यदा जगत्यां हि तदेऽकथयद्विधिषु । तदा सुरान्विधिः प्राह न रामाग्रे वलं हि नः ॥२६॥

तो उनका ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाया करता था और अपने अगल-बगल निहारने लगते थे । इस समय रामने उस हा॒स्यको सुनकर क्षणभर विचार किया और लोगोंसे कहने लगे—॥८॥९॥ जब कभी मैं किसीका हा॒स्य सुनता हूँ तो मुझे रावणकी हैसी स्मरण आ जाया करती है और यह ख्याल होता है कि वे मायावी राक्षस जिनको कि मैंने मार डाला है, घोखा देकर मुझे खानेके लिए लिए तो नहीं आ गये हैं ॥१०॥ ॥११॥ दूसरे नीतिशास्त्रमें भी हा॒स्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूतलपर रहनेवालोंको हैसनेकी मनाही करता हूँ । इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राष्ट्र तथा पृथ्यीतल भरमें डुगी पिटवाकर कहला दो कि कोई स्त्री, पुरुष, मेरा मित्र, स्वयं सीता तथा मेरे बेटे या भाई भी न हैं । जो इस आज्ञाके विपरीत चलेगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥११-१४॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार चारों और दुंदुभी बजवाकर रामकी यह आज्ञा धोषित करा दी । जितने पुरवासी अथवा देशवासी थे, उन्होंने प्रभुकी इस शिक्षाष्वनिको सुनकर दण्डके भयसे हृमेशाके लिये हैसना छोड़ दिया । वेश्याओंके नृत्य, गाने, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हैसी-दिल्लगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हैसी आनेका अन्देशा रहता था ॥१५-१७॥ उस समय बाँसपर चढ़कर नाचने आदिकी कला, तुड़ही-नगाड़े आदिके बाजे, यात्रा, यज्ञ, सांवत्सरिक उत्सव, विवाह आदि मञ्जूल कार्योंमें भी हैसी लानेवाले खेल-कूद और गप-शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विशेष कामके कोई रामकी सभामें भी नहीं जाता था ॥१८-२०॥ लोगोंसे पुराण-इतिहास आदिका भी पढ़ना छोड़ दिया । गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवोंमें हैसी न आने देनेका पूरा-पूरा ध्यान रखता जाने लगा । मतलब यह कि सारे पुरवासी एवं इणवासी हा॒स्योत्पादक कामोंको नहीं करते थे । रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हैसता था । यह व्यवस्था एक वर्ष तक चलतीरही । इस बीचमें भूतलनिवासियोंमें किसीका भी सुखमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं दीखा और किसीने भी अपना शृङ्खलार आदि नहीं किया । ऐसी अवस्थामें कितने ही कर्माङ्गदेवता और बहुतसे उत्साहदेवता एकत्रित होकर इन्द्रके पास गये ॥२१-२४॥ उन्होंने पृथ्यीतकके उस समाचारको कह सुनाया । जब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैवोपदेष्टुं योग्यः स ममापि जनकस्तु यः । युक्त्या कार्यं साधयामि येन वोऽय हितं भवेत् ॥२७॥  
 हृत्याक्षास्य सुरान् सर्वान्विष्विर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सीमायां दृष्ट्वा वेधाः सुपिष्ठलम् ॥२८॥  
 स्वयं विवेश तन्मध्ये दृष्ट्वा पांथान् जहास सः । एतस्मिन्नंतरे कश्चित्काष्ठभारवहः पुमान् ॥२९॥  
 श्रुत्वा पिष्ठलहास्यं उच्चेन दीर्घं जहास सः । ततः स भारवाहश्च ययौ हड्डे प्रभोः पुरीम् ॥३०॥  
 काष्ठभारविक्रयार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चलपत्रस्य सोऽन्युच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३१॥  
 भारवाहस्य हास्यं तद्राजदूत्य शुश्रुते । राजदूतो जहासोच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३२॥  
 राजदूतः समां गत्वा भारवाहस्य यत् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहासोच्चैर्न च्छ्रुत्वा ते सभासदः ॥३३॥  
 सभायां जहसुः सर्वे तच्छ्रुत्वा राघवोऽपि राः । उच्चैर्जहास सदसि वरसिंहासने स्थितः ॥३४॥  
 रामो विचारयामास किमर्थं हसितं मया । यज्ञिमित्तं सदा दण्डं पौरान् जानपदान्विजान् ॥३५॥  
 अहं करोमि सोऽद्याहं सभायां हसितः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽय किं मां पौरा वदंति हि ॥३६॥  
 अस्माकमेव शिक्षाऽस्ति सर्वदा राघवस्य सा । य कथं हसितश्चाय सर्वेषां पुरतः स्फुटय् ॥३७॥  
 शिक्षां करिष्यति विभोः कोऽस्य त्विति वदंति ते । मानयिष्यति नातस्ते ममाये शिक्षितं भुवे ॥३८॥  
 अमैतन्न व्रतं योग्यमिति रामस्त्वमन्यत । पुनर्जहास श्रीरामस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥३९॥  
 ततो रामोऽब्रवीत्यौरान् सभास्थान्स स्मिताननः । किमर्थं हसिता युयं येभ्यो हास्यं ममापि हि ॥४०॥  
 सभागतं सभामध्ये पौराः प्रोचुर्नुपोत्तमम् । दृष्ट्वा त्वद्रूतहास्यं हि तेनास्माकं सनागतम् ॥४१॥  
 तत् पौरवचनं श्रुत्वा दूतमाह रघूतमः । स्वया किमर्थं हसितं सोऽब्रवीद्रघुतन्दनम् ॥४२॥

के कर्माङ्ग पूजनादि सत्कारं लुप्त होते जा रहे हैं तो ब्रह्माके पास जाकर वह बात बतायी । ब्रह्माने कहा कि रामचन्द्रजोके आगे हम लोगोंमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता । नयोंकि वे मेरे पिता हैं । इसलिए मैं किसी युक्तिसे अपना कार्यसाधन करूँगा कि जिससे आप लोगोंका कल्याण हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी भूमण्डलकी ओर चल पड़े । अयोध्याकी सीमापर एक विशाल पिष्ठल वृक्षको देखकर वे स्वयं उसके भीतर प्रविष्ट हो गये और उस रास्तेसे आनेजानेवाले लोगोंको देख-देखकर जोरोंसे हँसने लगे । उसी समय एक लकड़हारा लकड़ीका बोझ माथेपर रखते हुए वहाँ आ पहुँचा । उसे भी देखकर पौपलके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ पौपलको हँसी सुनकर लकड़हारा दूने जोरसे हँसा और लकड़ीका बोझा लिये हुए अयोध्या नगरीमें जा पहुँचा । रास्तेमें उसे पीपलकी हँसीवाली बात याद आ गयी और ठहाका मारकर हँस पड़ा । लेकिन क्षण भर बाद उसे रामकी मनाहीका स्मरण हो आया, जिससे वेचारा शंकित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसते देखकर चौराहे-पर खड़ा सिपाही भी अग्नी हँसी नहीं रोक सका ॥ ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उसे वहाँ लकड़हारेको हँसी याद आ गयी, जिससे वह हँस पड़ा । सिपाहीको हँसते देखा तो सभामें बैठे हुए लोग भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ तमाम सभाके लोगोंको हँसते देखकर रामचन्द्रजी भी हँसने लगे ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी तुरन्त हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसें तो हँसें, मैं क्यों हँसा ? जब मैं सारे भूतलवासियोंको इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड देता हूँ । तब मैं क्यों हँसा ? मुझे कौन दण्ड देगा ? और ये पुरवासी क्या कहेंगे ? यही न कि राम दूसरोंको ही शिक्षा देते हैं, प्रजाके बास्ते ही दण्डविधान करते हैं और स्वयं जो मनमें आता है, सो कर डालते हैं । सब लोगोंके लिए तो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हजारों मनुष्योंके सामने ठाकर हँसते हैं ॥ ३५-३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे भविष्यतमें मेरी बात नहीं मानेंगे । यह सब विचारकर रामने यह ठहराया कि मैंने बड़ी भारी भूल की है । लेकिन क्षणभर बाद ही रामको फिर हँसी आ गयी । पूरी चेष्टा करके भी वे हँसनेसे नहीं रुक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे—आपलोग किस बातपर हँसे ? आप लोगोंको हँसते देखकर मैं भी हँस पड़ा । सभामें बैठे हुए पुरवासियोंने उत्तर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हमें

भारवाहस्य हास्यं तत् स्मृत्वा प्रहसितं मया । तददूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥  
 दूतैरानीय सदसि तमाह रघुनन्दनः । मा भीतिं भज मत्तस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥  
 हङ्के किमर्थं हसितं त्वयाऽद्य कथयस्व माम् । स भारवाहश्चकितः शुष्ककंठोष्टुतालुकः ॥४५॥  
 वेपमानः सखलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीत् । अयोध्यायाश्च सीमायामश्चत्यस्य मयाऽद्य हि ॥४६॥  
 दृष्टा प्रहसितं राजन् हङ्के हास्यं तथा कुतम् । तदप्वर्वा तद्विरं स प्रभुः श्रुत्वा सुविस्मितः ॥४७॥  
 दूतानुवाच श्रीरामस्त्वनेन सह वेगतः । युवं गत्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं सत्यं कथयते न वा ॥४८॥  
 अनेन भारवाहेन ते तथेति त्वरान्विताः । गत्वाऽश्चत्यसमीपं हि ददृशुस्ते स्मितं मुहूः ॥४९॥  
 तदाश्रयाच्च ते दूताः प्रहसन्तोऽतिवेगतः । अश्चत्यसहितं रामं गत्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥  
 तददूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिविस्मितः । राज्ये ममैतदूद्युक्तिं मे शिक्षा लोप्तुमृश्यतम् ॥५१॥  
 इति निश्चिन्य मनसि दूतांश्चाज्ञापयत्तदा । छिद्यतां चलपत्रः स ममाज्ञाभगकारकः ॥५२॥  
 तद्रामवचनादेव शतशोऽथ सहस्रशः । कुठारपाणयः शीघ्रमश्चत्यं दुद्रुतुस्तदा ॥५३॥  
 हास्यमानं नगं दृष्टा ते सर्वेऽतीव विस्मिताः । कुठारेस्तं तदा छेत्तुमुद्रता राघवाज्ञया ॥५४॥  
 तांश्छेत्तकामान् सकलान् प्राप्तान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्सन्ताठवामासोपलैश्चत्यनिर्गतैः ॥५५॥  
 उपलैश्चिन्नमिन्नांगास्ते दूता लोहितांकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वतो रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥  
 ततोऽतिविस्मितो रामः पुनर्दूतान् सहस्रशः । प्रेपयामाम तं छेत्तुं धनुर्वाणासिधारिणः ॥५७॥  
 तेऽपि गत्वा नगं तेन ताडिता उपलैर्दृढम् । छिन्नांगा राघवं वेगात्सर्वे वृत्तं न्यवेदयन् ॥५८॥  
 ततो रामोऽतिसंकुद्धः सुमंत्रं सेनया युतम् । प्रेपयामाम तं वृक्षं छेत्तुं बुद्धिपुरःसरम् ॥५९॥

हँसी आ गयी ॥ ४९-५१ ॥ पुरवासियोंकी बात सुनकर रामने सिपाहीसे पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेको हँसते देखकर मुझे हँसी आ गयी । दूतको बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेको पकड़वा भेगाया और उससे कहा कि विसी प्रकारका भय न करके मुझे यह बतलाओ कि तुम बाजारमें क्यों हँसे थे ? ॥ ४२-४४ ॥ लकड़हारा रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया । उसके कैंठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, शरीर कौपने लगा और भर्तीये हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि अयोध्याके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है । मैंने बाजार आते समय उस वृक्षकी हँसी सुनी और हँस पड़ा । नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और चेष्टा करके भी मैं हँसीको नहीं रोक सका । उसकी यह बात सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजीने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५-४८ ॥ उस भारवाहीके साथ-साथ दूत चले, पीपलके समीप गये और उसकी हँसी सुनी तो स्वयं खूब हँसे और लौटकर रामको वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्मिल्ह उत्पन्न होकर मेरे शासनको ही लुप्त कर देना चाहता है । इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि उस पीपलके वृक्षको काट डालो । क्योंकि वह मेरी आज्ञा भङ्ग कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार सैकड़ों हजारों व्यक्ति कुठार लेनेकर उस वृक्षकी ओर चल पड़े । उस समय भी उस वृक्षको हँसते देखकर वे सब उसे काटनेको उद्यत हो गये । उनको देखकर ब्रह्मा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके ढुकड़े फेंक-फेंककर मारने लगे । इस उत्पातसे कितने ही लोगोंको गहरी चोट आयी । रुधिरसे उनका शरीर भींग गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया ॥ ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामको और भी आश्रय हुआ और फिर हजारों दूतोंको वह वृक्ष काटनेके लिए भेजा । धनुष बाण एवं तलवार फेंक-फेंककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उच सबने लौटकर रामको यह समाचार सुनाया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने कुपित होकर बहुत सी सेनाके साथ

सुमंत्रो राघवं नत्वा सेनया तं नगं ययौ । तावदश्वस्थपापाणैरये गन्तुं न म क्षमः ॥६०॥  
 ततो राघवभीत्या स शनैः सैन्येन तन्पुरः । ययौ तावन्नगोद्भूतैः पापाणैस्ताडिरोऽपत् ॥६१॥  
 सुमंत्रं पतितं दृष्टा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च लवेत्र तदद्भूतमिवाभवत् ॥६२॥  
 सुमंत्रं पतितं श्रुत्वा पुत्राभ्यां रघुनन्दनः । मैन्येन प्रेषवामाम शत्रुघ्नं तं नगं पुनः ॥६३॥  
 ततस्तत्कौतुकं श्रुत्वा पौरनार्यः सहस्रशः । प्रासादशिखरारुढा ऊर्ध्वास्यसं व्यलोक्यन् ॥६४॥  
 तर्जन्या दर्शयामासुः सोऽश्वस्थश्वेति ता मिथः । वामहस्तं भ्रूयोः स्थाप्य रविदीपान्विवारयन् ॥६५॥  
 कुञ्जितानलकान्नेत्रपतितान् करपल्लवैः । स्त्रियो निवार्य प्रासादगोपुरः द्वालसंस्थिताः ॥६६॥  
 निद्रासंब्रान्तनयनाशान्योन्यं दर्शयन्नगम् । एवं तन्नगरं सर्वं चकितं चाभवत्तदा ॥६७॥  
 शत्रुघ्नोऽथ पुराद्यावत्सैन्येन निर्गतो वहिः । तावत्तद्रथवाहाथ संस्थिता एवं ते पथि ॥६८॥  
 ताडिता अपि सूतेन नोचस्थुस्तुरगोचमाः । कुशस्याथ लवस्यापि रथवाहास्तथैव च ॥६९॥  
 ताडिता रुक्मदंडैश्च नोचस्थुः पथि सम्भिताः । आश्वयेणाथ तदद्भूतं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥  
 रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चित्तेऽविचारयत् । विचारः करणीयोऽत्र द्विचारोऽव्य नोचितः ॥७१॥  
 अस्त्यत्र कारणं किञ्चित्प्रष्टव्योऽव्य पुरोहितः । जानन्नपि रमानाथः स्वयं सर्वं तथापि सः ॥७२॥  
 मानुपं भावमाश्रित्य पुरोहितमथाह्यत् । सोपि रामाज्ञया शश्वं तां सभां प्रययौ गुरुः ॥७३॥  
 प्रत्युद्दम्य गुरुं रामो ददात्वामनमुत्तमम् । ततः सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७४॥  
 तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वसिष्ठो मुनिमत्तमः । वाल्मीकिस्त्वद्य प्रष्टव्यो येन ते चरित कुतम् ॥७५॥  
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिं स समाह्यत् । सोऽपि रामाज्ञया शीश्वं ययौ श्रीराघव प्रति ॥७६॥

सुमन्तको वृक्ष काटनेके लिए भेजा । सुमन्त रामको प्रणाम करके अश्वत्यकी ओर बढ़े । किन्तु वृक्षसे थोड़ी दूरपर ही थे । इतनेमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी । जिससे उस वृक्षके पासतक नहीं पढ़ूच सके ॥ ५६ ॥ ६० ॥ लेकिन रामके भयसे सुमन्त थोड़े न लौटकर आगे ही बढ़ते गये और उधरसे बराबर पत्थरोंकी वृष्टि होती रही । जिससे वे धायल होकर गिर पड़े ॥ ६१ ॥ सुमन्तको गिरा देखा तो सेनामें घंर कोलाहल होने लगा । सारे अयोध्यावासियोंको वह एक अनहोनी-सी बात मालूम पड़ी ॥ ६२ ॥ सुमन्तको धायल सुना तो रामने अपने दोनों पुत्रोंके साथ एक बड़ी सेना भेजी ॥ ६३ ॥ इस कोतुको सुना तो नगरकी बहुत-सी रित्र्यां अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मस्तक उठाये हुए उस वृक्षबो देखने लगीं और सूर्यके प्रकाशका निवारण करनेके लिए अपना बायां हाथ भाँहोंपर रख-रखकर एक दूसरीको परस्पर उँगलियोंसे वह वृक्ष दिखाने लगीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेत्रके सामने आये हुए केशोंको हटाती हुई वे स्त्रियां मकानकी छतों, कंगूरों और अटारियोंपर अधिक-से-अधिक संघर्षमें एकत्र हो गयीं ॥ ६६ ॥ कितनोंकी आखें उस वृक्षको निहारते-निहारते नींदकी बोझसे बोझिल हो गयीं । इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था ॥ ६७ ॥ उधर शत्रुघ्न अपनी सेना लेकर चले । नगरसे बाहर निकले ही थे कि उनके रथवाले थोड़े रास्तेमें बैठ गये और कोचवानके बार-बार मारनेपर भी नहीं उठे । यही दशा कुश और लवके भी रथकी हुई । उनके थोड़े भी रास्तेमें बैठ गये और कितने ही डंडे खानेपर भी नहीं उठे तो वे सब लौटकर आश्रयके साथ रामके पास पढ़ूचे और यह हाल बताया ॥ ६८-७० ॥ यह सुना तो वे मनमें विचारने लगे कि इस विषयमें पूर्णतया विचार करके काम करनेकी आयश्यकता है । आज अविचारितासे काम नहीं चलनेका है ॥ ७१ ॥ इसमें अवश्य कोई कारण है । अतः पहले पुरोहितको बुलाकर पूछ लेना जरूरी है । यद्यपि रामचन्द्रजी सब कुछ जानते थे, फिर भी मनुष्यभावसे उभोने पुरोहितको बुलवाया । रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामें जा पहुंचे । तब राम गुरुके आगे गये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु वसिष्ठने कहा कि इस विषयमें आप वाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें तो अच्छा होगा । क्योंकि उन्होने ही आपके चरित्रको बनाया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

प्रत्युदम्य मुनिं रामो ददावासनमुक्तमम् । नत्वा सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥  
 ततो विहस्य बाल्मीकिः प्रोवाच रघुनन्दनम् । सर्वं वेत्सि भवान् राम किमर्थं मां तु पृच्छसि ॥७८॥  
 त्वं चेत्पृच्छसि रामात्र मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्व शृणुध्व रघुनन्दन ॥७९॥  
 त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्विद्या सकलैर्जनैः । हास्यकारीणि कर्माणि संत्यक्तान्यवनीतले ॥८०॥  
 विवाहादिसमुत्साहाः कथावार्तादिकौतुकम् । मङ्गलोत्साहगीतानि नृत्यं यज्ञादिसत्क्रियाः ॥८१॥  
 यात्राः संवत्सरोत्साहास्त्यक्ता एवावनीतले । यद्यत् कर्म तोषकारि हास्यकारि च तन्नरैः ॥८२॥  
 एकमम्बत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन । उत्साहदेवताः सर्वास्तथा कर्मङ्गदेवताः ॥८३॥  
 इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्टा स्त्रीय प्रपूजनम् । लुम्बं भूम्यां ततो राम तद्वृत्तं कथयन्विधिम् ॥८४॥  
 ततो विधिश्च तच्छ्रुत्वाऽसमर्थस्त्वां निवेदितुम् । त्वयि कुंठितसामर्थ्यः सोऽश्वत्थे संप्रवेशितः ॥८५॥  
 हितार्थं निर्जराणां च सोऽद्य तिष्ठति पिष्पले । प्रक्षिपत्युपलान् राम छेत्तुकामान् समागतान् ॥८६॥  
 तन्मुनेवचनं श्रुत्वा राघवः क्रोधमाययो । अहमेवाद्य गच्छामि सारं पश्यामि ब्रह्मणः ॥८७॥  
 कथं नाम रघुश्रेष्ठः स्वशिक्षां परिवर्तयेत् । इत्युक्त्वाज्ञापयामास स्त्रीयां सेनां तदा प्रभुः ॥८८॥

ततस्तं बोधयामास बाल्मीकिमुनिमत्तमः ।

क्रोधं त्यज रघुश्रेष्ठ शृणुध्व वचन मम । सच्चिदानन्दरामस्त्वमानन्दचरितं तव ॥८९॥  
 मयाऽस्ति वर्णितं राम ततु किंचित्पुत्रयोर्मुखात् । त्वयाऽपि यज्ञप्रमये श्रतं गङ्गातटे पुरा ॥९०॥  
 यस्य संश्रवणादेवानन्दरूपो भवेन्नरः । हास्य वर्जयसि त्व चेत्तर्हि ते चरित त्विदम् ॥९१॥  
 न जनाः कीर्तयिष्यन्ति सुखरूपं स्मितं विना । अन्यत् किंचित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तवाग्रतः ॥९२॥  
 शतकोटिमितं तेऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुरा त्वया विविक्तं यत् सर्वं रघुनन्दन ॥९३॥

को बुलवाया । यह सन्देश पाते ही बाल्मीकि रामसे मिलनेका चल पड़े ॥ ७६ ॥ वही पहुँचनेपर रामने उठकर उनकी अगवानी की और एक सुन्दर आसनपर बिठाकर पूजन किया । फिर जा कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताया ॥ ७७ ॥ यह सब सुना तो हँसकर बाल्मीकिने बहा—हे राम । आपसे कुछ छिपा नहीं है, आप सब जानते हैं । फिर हमसे वयों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हीं, यदि मानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो बताता हूँ, सुनिए ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें हँसनेकी मनाड़ी कर दी है । इससे सब लोगोंने ऐसे शुभ कार्योंका करना बन्द कर दिया है, जो हँसी-खुशीसे ही समझ हो सकते हैं ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, जेल-तमाज़ी, नाच-गान, यज्ञादि सत्क्रियाएं, यात्रा और सांबत्सरिक उत्सव आदि कर्म लोग नहीं कर रहे हैं । कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयको आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक वर्गसे बन्द हैं । इससे ध्याकुल होकर समस्त उत्साहदेवता, कर्मङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर अपनी पूजाको लुप्त होते देख ब्रह्माके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१-८४ ॥ इसके बाद ब्रह्माजी आपसे कुछ कहने-सुननेमें असमर्थ होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तरूपसे प्रविष्ट हो गये हैं । देवताओंकी कल्यानकामनासे वे आज भी उसमें बैठे हुए हैं । जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये जाता है, वे उसपर पत्तर धरसते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ मुनिराज बाल्मीकिके मुखसे यह हाल सुनकर रामको क्रोध आ गया और उन्होंने कह कि आज मैं स्वयं जाकर ब्रह्माका पराक्रम देखता हूँ । रघुवंशका एक श्रेष्ठ क्षत्रिय अपने आदेशमें किसी प्रकार का उलटफेर नहीं कर सकता । इतना कहकर रामने अपनी सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब बाल्मीकि समझाने लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये । आप साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हैं और आपका चरित्र लोगोंको आनन्दित करनेवाला है । उसे मैंने ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञशालामें सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है । फिर जिसके मुखमें मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग—यदि आप न हँसनेका नियम रखतेंगे—तो नहीं सुन सकेंगे । वयोंकी कथा सुनकर आनन्दको प्राप्त लोग हँसे दिना नहीं रह सकेंगे । इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागद्वारतवषीतिर्गताद्रामायणात् प्रभो । सारं सारं प्रगृह्णाथ यद्यद्रम्यं मनोरमम् ॥ ९४ ॥  
 कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥  
 कृतान्यन्येऽपि मुनयः पट्शास्त्रादीन्यनेकशः । अग्रे सर्वे करिष्यन्ति सारं रम्यं प्रगृह्ण च ॥ ९६ ॥  
 ततोऽग्रे शोकरूपं च यत्त्वया दण्डके वने । चतुर्दशवत्सरैश्च कैकेयीदुष्टभावतः ॥ ९७ ॥  
 कृतं चरित्रं सीताया विरहादि च राघव । तत् किञ्चिच्छेषभूतं हि चतुर्विशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥  
 तावन्मात्रं वदिष्यन्ति यद्वान्मीकेः कृतं त्विति । तत्सर्वं सकलं ज्ञात्वा भावि वृत्तं रघूतम् ॥ ९९ ॥  
 शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेति । युद्धं प्रभाते श्रोतव्यं शोकश्चैवापराह्नके ॥ १०० ॥  
 रतिनिंशायां श्रोतव्याऽनन्दरामायणं सदा । युद्धं ज्ञेयं भारतं हि रतिभागवतं स्मृतम् ॥ १०१ ॥  
 शेषभूतं चतुर्विशत्सहस्रं शोक उच्यते । तत्र भाविवरेणैतदानन्दचरितं तत्र ॥ १०२ ॥  
 शतकोटिमितं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकांडमितं रम्यं यद्वद्वादशसहस्रकम् ॥ १०३ ॥  
 नवोत्तरशतं सर्वं कचित् स्थास्यति भूतले । तत्र भाविवराद्राम न कोऽप्येतां मनोरमाम् ॥ १०४ ॥  
 अष्टोत्तरशतं: सर्वेनिर्मितां मेरुणान्विताम् । तत्र कीर्तनमालां नो खण्डयिष्यति भूतले ॥ १०५ ॥  
 नवकाण्डयुतं रम्यं दृष्टा त्वत्तिष्ठेतवे । एतद्वि रक्षयिष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १०६ ॥  
 यदा तत् खण्डितं पूर्वं व्यासेन मुनिना तत्र । शतकोटिमितं गमचरितं यन्मया कृतम् ॥ १०७ ॥  
 तदा किञ्चिद्दितं दृष्टाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः । भविष्यन्ति कलौ मन्दमदयोऽन्पायुषो नराः ॥ १०८ ॥  
 न समर्था मम ग्रन्थं त्विम श्रोतुं कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मत्काव्यं यत्पृथक् कृतम् ॥ १०९ ॥  
 तत्सम्यगित्यहं मत्वा परां तुष्टि गतः प्रभो । अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य नवकांडमितं त्विदम् ॥ ११० ॥  
 आनन्दरामचरितं न विरूपय राघव । वर्जयिष्यसि चेद्रास्यं तदा दुःखमयं प्रभो ॥ १११ ॥

है । मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भागोंमें बाट चुके हैं ॥ ८९-९३ ॥ उनमेंसे जो भाग भारतवर्षके लिये चुना था, उसके सार अशको लेकर जो कथानक अन्धे थे, सुननेमात्रसे समझमें आ जाते या कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यासदेवने अष्टादश पुराणोंतथा उपपुराणोंको बना दिया है । इनके अतिरिक्त भी बहुतसे ऋषि उन्हींकी सहायतासे षट्शास्त्र आदि कितने ही शास्त्र बनायेंगे ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बोतनेके बाद कैकेयीकी दुष्टतासे जापको चौदह वर्ष पर्यन्त जो दुःख झेलने पड़े थे, सीताके विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोंसे कुछ कम है, उतने ही चरित्रको लोग मुझ वाल्मीकिका बनाया हुआ मानेंगे । इस भावी स्थितिको समझकर ही मैंने आपके उतने शोकमय चरित्रको विशेष उत्साहके साथ लिखा है । सब लोगोंको चाहिये कि सबैरे युद्ध-चरित्र तथा दोपहरके बाद शोक-चरित्रका श्रवण करें । युद्धचरित्रका मतलब महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा वाकी चौबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है । आपके भावी वरदानके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, नौ काण्डोंवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ नौ श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही । आपके भावी वरदानसे एक सुन्दर कीर्तनमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मनकासद्श अलगसे लगी है, इसका कोई भी खण्डन नहीं कर सकेगा । इस नौ काण्डोंवाले चरित्रको लोल आपकी प्रसन्नताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि संसारमें सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-९०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका खण्डन करके जब व्यासजीने १८ पुराण बनाये थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्पणा देखकर ही मैं चुप रह गया था । उस समय मेरे विचारमें आया कि बागे चलकर कलियुगमें लोग मन्दवृद्धि तथा अल्पायु होंगे । इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थको कभी नहीं सुन सकेंगे । व्यासजीने मेरे काव्यसे कथायें अलग करके जो पुराणोंको बनाया, सौ बहुत बच्चा किया । उससे

भविष्यति शेषवद्वि चैतच्चापि मनोहरम् । अतस्ते कथयाम्यद्य येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥  
 भविष्यति मृषा नैव येन तुष्टास्तु देवताः । भविष्यति जनाश्चापि सत्या मत्कविता भवेत् ॥११३॥  
 जना हमंतु सर्वत्र दंतानां दशनं विना । आस्यमाच्छाद्य वस्त्रेण कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥  
 हास्यं लक्ष्मीसूचकं हि हसित सौख्यदायकम् । मांगल्यं हसित चैतद्वास्याच्छ्रेष्ठं न किंचन ॥११५॥  
 नारी स्मितानना यस्मिन् गेहे तन्मन्दिरं स्मृतम् । लक्ष्म्याऽपि स्थीयते तत्र निश्चलं रघुनन्दन ॥११६॥  
 स एव पुरुषो धन्यो यस्य र्ष्याच्च दिमताननम् । स एव पुरुषो निंद्यो यस्यास्यं क्रोधसंयुतम् ॥११७॥  
 प्रमदा निंदिता सापि यस्याः क्रोधयुतं मुखम् । गर्हयन्त्यतिहास्यं हि सर्वदा ते मुनीश्वराः ॥११८॥  
 अतस्त्वां प्रार्थयास्येतन्मानय त्वं वचो मम । न करोति विधिर्गवं त्वां तातं वेत्ति राघव ॥११९॥  
 आनयिष्यामि शरणं तत्वाद्वं चतुराननम् । एवं वाल्मीकिवचनमंगीकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥  
 एवमस्त्यति तं प्राह मुनिं तद्वाक्यगौरवात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तुष्टमानसः ॥१२१॥  
 शिष्यं संप्रेष्य ब्रह्माणमानयामास पिष्पलात् । अश्वाः सर्वे समुत्तस्थुर्युस्ते नगरीं प्रति ॥१२२॥  
 ययौ सैन्येन शत्रुघ्नो रामपार्श्वं स्थितोऽभवत् । रामपुत्रौ समायातौ पितुरये निषेदतुः ॥१२३॥  
 रामाञ्जया भारवाहस्ततो दृतैर्विसजितः । कुतेद्रेण सुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥  
 सुमन्त्राद्या रामदृतास्तत्क्षणं राघवं ययुः । नत्वा रामं सुमन्त्रः स रामपार्श्वं स्थितोऽभवत् ॥१२५॥  
 ततः सुरैर्याविद्रः श्रीरामं प्रणनाम सः । रामं नत्वाऽववीद्वत्रष्णा मया यदपराधितम् ॥१२६॥  
 तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठं त्वत्पाल्याः सर्वदा वयम् । पुराऽस्माकं हितार्थं हि त्वया रामावनीतले ॥१२७॥

मुझे वही प्रसन्नता है। अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस नौ काण्डवाले आनन्दरामायणकी शोभा न विगाड़िए। यदि आप सदाके लिए लोगोंका हँसना रोक देंगे तो वहां अनर्थ होगा। मेरी रामायण किसी कामकी नहीं रह जायगी। इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी किसी प्रकारका अन्तर न पड़े और देवता तथा मनुष्य भी प्रसन्न रहें और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७—११३ ॥ लोग हँसे सही, किन्तु उनके दात न दिखायी दें। किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंको हँसी आ जाय तो कपड़ेसे मुँह ढाककर हँसें ॥ ११४ ॥ क्योंकि हँसी लक्ष्मीसूचक है, हँसी सबको मुख देनेवाली वस्तु है और हँसी मंगलमयी मानी गयी है। कहनेका भाव यह कि हँसीसे बढ़कर कोई चोज हे ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुस्काती हुई नारी रहती है, वह घर देवमन्दिरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी बहाँपर ही निवास करती है। हे रघुनन्दन ! इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ वही पुरुष वन्य है, जिसका मुखमण्डल सदा हँसता हुआ दीखे और वही पुरुष अघम है, जिसका मुख सदा क्रोधसे युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्त्री भी निन्द्या है, जो सदा क्रोधयुक्त मुँह बनाये रहती है। बड़े-बड़े मुनिगण आदि हास्यकी सदासे निन्दा करते आये हैं ॥ ११८ ॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए। ब्रह्मा किसी तरह अभिमान न करके आपको अपने पिताके समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर ब्रह्माको आपकी शरणमें लाऊंगा—वे आपसे क्षमा माँगेंगे। रामने वाल्मीकिके वाक्यगौरवको समझकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा। रामकी स्वीकृति सुनकर वाल्मीकि परम प्रसन्न हुए और अपना एक शिष्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्माजीको बुलवाया। यह हो जानेपर शत्रुघ्न तथा लव-कुशके जो धोड़े अबतक रास्तेमें बैठे थे, वे उठ खड़े हुए और अयोध्याको वापस चल दिये। शत्रुघ्न और लव-कुश भी अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०—१२३ ॥ रामकी आज्ञासे दूतोंने लकड़हारेको छोड़ दिया। इन्द्रने आकर अपृतकी बर्धा की। जिससे सुमन्त्रादि जो योद्धा मूर्छित पड़े थे, वे सचेत हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर वृक्षको फाटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये। सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये। योद्धी देर बाद बैक्षतामोके साथ-साथ इन्द्र और ब्रह्मा भी रामकी सभामें आये और बैठ गये। रामको प्रणाम

अवताराश्च वहो धृता नो रिष्वो हताः । शंखासुरो वेदहर्ता मत्स्यरूपेण दासितः ॥१२८॥  
 तथाऽस्माकं सुधां दातुं मज्जंतं मन्दराचलम् । द्वष्टा स कूर्मरूपेण त्वया पृष्ठे धृतो गिरिः ॥१२९॥  
 मत्पृथ्वीति स्पद्मानं हिरण्याक्षं निहत्य च । त्वया वाराहरूपेण जलात्पाथ्वी समुद्रघृता ॥१३०॥  
 प्रह्लादवचनात्स्तम्भादाविभूय त्वया पुरा । नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिष्युहंतः ॥१३१॥  
 तथा राज्यं हृतं द्वष्टा पुरा तु मघवंस्त्वया । बलिर्वामनरूपेण पाताले विनिवेशितः ॥१३२॥  
 नृपैरधर्मनिरतंद्वष्टा व्याप्तां भूवं पुरा । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥  
 पितृवैरं पुरस्कृत्य निःक्षत्री पृथिवी कृता । दशास्यकुम्भकर्णो तौ रामरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥  
 पत्नीवैरं पुरस्कृत्य त्वया दुष्टी हताविह । उद्धारितौ तौ स्वगणौ द्विवारं देवक्षापतः ॥१३५॥  
 एकवारं पुनस्त्वग्रे त्वं तावेवोद्दरिष्यसि । तद्वक्ष्यावचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥१३६॥  
 सर्वं जानन्नपि जनान्जातुं पप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
 उत्तरार्द्धे रामहास्यप्रतिरोधो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशः सर्गः

( वाल्मीकिकी जन्मगाथा तथा वहुतेरे मंत्रोंका निरूपण )

श्रीरामदास उवाच

कौं गणी देवश्चात् तौ कथमुद्दारितौ वद । पुरा द्विवारं रामेणाग्रे कथं चोद्दरिष्यति ॥१॥  
 तद्वसिष्ठवचः श्रुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्सि भवान् लोकान् ज्ञापितुं मा हि पृच्छसि ॥२॥  
 तदा वदाम्यहं सर्वं गणयोः शापकारणम् । एकदाऽयं महाविष्णुवैकुण्ठे रमया रहः ॥३॥  
 संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुरोत्तमौ । तावश्चिनीकुमारौ हि समाजमतुरादरात् ॥४॥

करनेके पश्चात् अहगाने कहा—मैने जो कुछ अपराध किया है, सो क्षमा करें । हे रघुश्चेष्ट । आपका कर्तव्य है कि आप हमारी रक्षा करें । पहले भी आपने हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार लेकर हमारे शत्रुओंको मारा है । वेदको चुरानेवाले शंखासुरको आपने मत्स्यका रूप घारण करके मारा था ॥१२५-१२६॥ हम सबोंको अमृत पिलानेकी इच्छासे, समुद्रमन्यनके समय जब मन्दराचल ढूबा जा रहा था, तब कूर्मरूप घारण करके उसे अपनी पौठपर रखवा था । “यह पृथ्वी मेरी है”इस प्रकार कहकर डींग मारनेवाले हिरण्याक्षको मारकर आपने वाराहरूप घारण करके जलमें ढूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२६ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके शब्दसे आप खम्भेसे प्रकट हुए और हिरण्यकशिष्यका संहार किया । जब देत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप घारण करके भीख माँगी और बलिको पाताल लोक भेज दिया ॥१३१॥१३२॥ जब इस पृथ्वीमण्डलमें पापी राजाओंका अत्याचार देखा तो परशुरामका रूप घारण करके पितृवैरके ब्वाजसे पृथ्वीको अश्रियविदीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णको आपने पत्नीवैरके वहाने यमपुर पहुंचाया । दो बार आपने देवताओंके शापसे अपने गणोंकी रक्षा की है और अविद्यमें फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने ब्रह्मजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे उत्तरार्द्धे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

वसिष्ठजी कहने लगे—वे दोनों कोनसे गण थे, जिनको देवताओंका शाप प्राप्त हुआ था और रामने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १॥ इस प्रकार वसिष्ठकी बातसुनकर ब्रह्माने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे जान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके शापका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देववैद्यौ तौ दृष्टा द्वारक्षकी । जयविजयनामानौ तयोरग्रे प्रजरमतुः ॥ ६ ॥  
 ताभ्यां वैद्यौ तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वै रहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरौ ॥ ६ ॥  
 अधुना द्रष्टुभिच्छावो विष्णुं कथयतां गणौ । द्वार्यावयोरागमनं युवां मृणुत चेरितम् ॥ ७ ॥  
 तत्त्योर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छावो महाविष्णुमावां लक्ष्म्या रहः स्थितम् ॥ ८ ॥  
 एवं त्रिवारं ताभ्यां तौ प्रोक्तौ नेत्यृचतुर्गणौ । तदाऽश्चिनीकुमारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छतौ ॥ ९ ॥  
 आवयोर्वचनं नैव युवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यतस्त्रिवारं तस्माद्वियुवां जन्मत्रयं भूति ॥ १० ॥  
 लमथश्च न संदेहस्तच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः शार्ण ददतुर्देववैद्ययोः ॥ ११ ॥  
 विनापराधतः शापो यस्माद्वित्तस्तु चावयोः । एकवारं युवां चापि जन्मातश्चस्तु वै भूति ॥ १२ ॥  
 एवं परस्परं शार्ण लब्ध्वा हाहेति चुक्रशुः । तदा कोलाहलश्चासीदाहृयामास तान् हरिः ॥ १३ ॥  
 ततस्तत्सकलं वृत्तं प्रोचुस्ते जगदीश्वरम् । चत्वारस्ते महाविष्णुं प्रार्थयामासुरादरात् ॥ १४ ॥  
 येन शीघ्रं विमुक्तिः स्पात्तन्नो वद महेश्वर । ततः प्रोवाच तान् विष्णुमुक्तिः शीघ्रं शुभाऽत्र हि ॥ १५ ॥  
 मयि भक्त्या विरोधिन्या ज्ञायते नात्र संशयः । सप्तजन्मातरेणैव मद्भक्त्या ज्ञायते गतिः ॥ १६ ॥  
 युष्माकं रोचते या सा भक्तिः कार्याभ्वनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥ १७ ॥  
 नोऽस्तु भक्त्या विरोधिन्या शीघ्रं ते दर्शनं पुनः । तथेत्युक्त्वा रमानाथस्तान् सर्वान् स व्यसर्जयत् ॥ १८ ॥  
 ते जन्मानि ततः प्रापुर्जगत्यां गुनिसत्तम । जयो जातो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ १९ ॥  
 जातोऽत्र विजयः पूर्वं तौ हतौ विष्णुना पुरा । वाराहरूपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥ २० ॥  
 नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्दत्तः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्राप्तुर्भूति ॥ २१ ॥

लक्ष्मीके साथ बैठे थे । उसी समय उनके दर्शनार्थं अश्विनीकुमार वहाँ जा पहुंचे ॥ २-४ ॥ उन देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनों द्वारपाल उनके सामने पहुंचे और कहने लगे—इस समय भगवान् एकान्तमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकेंगे । यह सुनकर वे दोनों देवता बोले—विष्णुभगवान् से जाकर कह दो कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं । देवताओंकी बात सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायेंगे । वे लक्ष्मीके साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार अश्विनीकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो कुद्द होकर उन्होंने शाप देते हुए कहा कि तीन बार तुम लोगोंने मेरी बातका उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें तीन बार पृथ्वीलोकमें जन्म लेना पड़ेगा । उनके इस शापको सुनकर जय-विजयने भी अश्विनीकुमारोंको शाप देते हुए कहा कि विना अपराध तुमने हमको शाप दिया है । अतएव तुम दोनोंको भी एक बार पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ेगा ॥ ९-१२ ॥ इस प्रकार आपसमें शाप पाकर वे चारों हाहाकार करके पछताने लगे और वैकुण्ठभरमें कोलाहल मच गया । तब विष्णुभगवान् उनको अपने पास लुलाया ॥ १३ ॥ भगवान् उनका वृतान्त सुना । इसके अनन्तर आदरपूर्वक उन चारोंने भगवान् प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! जिससे हमलोग शीघ्र इस शापसे मुक्त हो जायें, हमें आप वही उपाय बतलायें । विष्णुभगवान् उन्हें समझाते हुए कहा कि घबड़ाओ नहीं, शीघ्र ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे । किन्तु उपाय दो हैं । एक यह कि तुमलोग हमारी भक्तिसे विरोधभाव रखो । दूसरे उपायसे हमारी भक्ति करके मुक्ति पानेको बेष्टा करो । यदि मेरी भक्तिके विरुद्ध रहोगे तो शीघ्र मुक्ति मिल जायगी और भक्तिके साथ चाहोगे तो सात बार जन्म लेना पड़ेगा । इन दोनोंमें से जो उपाय अच्छा जैंच, उसे चुन लो । इस प्रकार विष्णुकी बात सुनकर उन लोगोंने उत्तर दिया कि हम आपकी भक्तिके विरुद्ध भाव रखेंगे, जिससे शीघ्र मुक्त हो जायें । भगवान् भी “अच्छी बात है” यह कहकर उन लोगोंको विदा कर दिया ॥ १५-१६ ॥ तदनन्तर वे लोग मृत्युलोकमें आकर जन्मे । उनमें जय हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु राक्षस होकर जन्मा । इसके अनन्तर वाराहरूप बारण करके विष्णुभगवान् उन हिरण्याक्षको मारा और नरसिंह-स्वरूप घरकर हिरण्यकशिपुका संहार किया ॥ १७ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो जातो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनामा हि रामेणानेन तौ हतौ ॥२२॥  
 तावश्चिवनीकुमारौ हि एक ऐरावणः स्मृतः । मैरावणश्च त्वपरं एवं तौ जनितावधः ॥२३॥  
 पाताले वरदानाच्च रामहस्तान्मृतिं गतौ । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥  
 विजयो दंतवक्त्रश्च भविष्यत्यवनीतले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥  
 वधिष्यति दंतवक्त्रं तथैव मुनिसत्तम् । एवं जन्मत्रयं शापाङ्कत्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥  
 जयविजयनामानौ पूर्ववत् स्थास्यतः शुभौ । द्वारदेशेऽस्य वै विष्णोर्वेकुण्ठे दुखवर्जिते ॥२७॥  
 तावश्चिवनौ देववैद्यौ पूर्ववद्विवि तौ स्थितौ । एवं मुने त्वया पृष्ठं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥  
 भगवद्गणयोः शापकारण च पुरातनम् । एवं राघव चाग्रे त्वं द्वापरे परमे शुभे ॥२९॥  
 जरासंधादिवीरैश्च कसाद्यैरपि भूतलम् । खिञ्च दृष्टाऽत्रावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥  
 सर्वान्हत्वा तोषयुक्तं करिष्यसि महीतलम् । तान् बौद्धान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विजेष्यसि ॥३१॥  
 वर्णसंकरमालक्ष्य कलेरते रघूत्तम् । कलिपरूपेण सकलान्संहरिष्यसि लीलया ॥३२॥  
 एवं दशावताराश्च तथान्येऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताश्रागे धरिष्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्तं ब्रह्माणं समालिङ्गय रघूत्तमः । संनिवेश्यासने प्राह त्वदर्थं च मुनेर्गिरा ॥३४॥  
 हास्यमाज्ञापितं किञ्चिज्ज्ञानाः कुर्वतु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा मा विस्तरोस्तु वै ॥३५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तदा दुष्टाः सुरादयः । प्रपञ्चं च वाल्मीकिं सभायां रघुनन्दनः ॥३६॥  
 ममावतारतः पूर्वं त्वया मच्चरितं कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पूर्वं केन त्वामुपदेशितम् ॥३७॥  
 पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तत्सर्वं विस्तरेणव कथयस्वाद्य मां प्रति ॥३८॥

वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण होकर जन्मे और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें मारा ॥ २१ ॥ २२ ॥  
 दोनों अशिवनीकुमारोंमसे एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणके रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके  
 हाथों उन दोनोंकी मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दंतवक्त्रके नामसे जन्मेगा । द्वापरमें  
 भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका संहार करेंगे । इस तरह आपसके शाप-शापोंसे ये लोग तीन जन्ममें अपनी  
 करनीका कल भोगकर किर पहलेकी तरह जय-विजयके नामसे भगवान्के दारपाल हो जायेंगे, तब उन्हें  
 फिर कोई क्षेषण नहीं होगा ॥ २३-२७ ॥ तबसे अशिवनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास  
 करेंगे । हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया । इसका सारांश यह निकला कि उन  
 दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन शाप कारण था । उसमें कोई नयी बात नहीं थी । हे राघव ! आगे  
 द्वायर युगमें भी पृथ्वी जब कंस तथा जरासंध आदि दुष्टोंके अत्याचारोंसे धबड़ा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार  
 लेकर दुष्टोंका संहार करते हुए पृथ्वीका भाग उतारेंगे । उसी प्रकार कलियुगमें बुद्धका रूप धारण करके  
 आप बौद्धोंको पराजित करेंगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघूत्तम ! कलियुगके अन्तमें जब समस्त संसार वर्णसङ्कर हो  
 जायगा, तब आप कलिकर्त्तव्य धारण करके सबका संहार करेंगे । इस तरह दस क्या, हजारों अवतार आपने  
 हम लोगोंके कल्पणार्थं लिया है और भविष्यमें भी लेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति  
 करते हुए ब्रह्माको रामने हृदयसे लगा लिया और अपनी बगलमें त्रिठाकर कहा कि वाल्मीकिके कथनानुसार  
 मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हैंसे या जो कुछ करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । वाल्मीकिने  
 जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजाके लोग काम करेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर जितने देवता  
 थे, वे सब प्रसन्न हो गये । इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारसे पहले ही आपने मेरा चरित्र  
 रामायण बना डाला है । सो भविष्यकी बातें आपको कैसे मालूम हुईं ? उन्हें किसने बतायी थीं ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, सो मुझसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्त्रिनिपुङ्ग्वः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥  
वाल्मीकिर्वाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया राम सावधानमनाः शृणु । राम त्वक्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥  
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवास्वान् । शृणु राघव मत्तस्त्वं कथा मे पर्वजन्मनः ॥४१॥  
पंषातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशाः । गुरोः सिद्धिं गतश्चागच्छर्दीं गोदावरीं प्रति ॥४२॥  
तीत्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाविले । निर्जले विजने घोरे वैशाखे तापकर्षितः ॥४३॥  
वनं चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापघरः शठः ॥४४॥  
निर्षेषः सर्वभृतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥४५॥  
खण्डेन भीषयित्वा तु जग्राह कुण्डलादिकम् । उपानहौ तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलम् ॥

पश्चाद्वित्वाऽथ तं विप्रं गच्छेत्याह स मूढधीः ॥४६॥

तथा स गच्छन्यथि शर्कराविले सूर्यांशुतसे जनवज्जिते खरे ।

संतप्तपादस्तुणगोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवद् ॥४७॥

स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि तिष्ठन्दाहेति वादी प्रजगाम विप्रः ।

दृष्ट्वा मुनिं तं बहुखिन्नमानसं मध्यं गते पूष्णि यदाऽतिरीत्रे ॥४८॥

व्याधस्य जाता मतिरीटशी वै तस्मै ददामीति च पादरक्षे ।

स्वीयेन धर्मेण तु तस्करेण वने गृहीतं सकलं च तन्मे ॥४९॥

चौयेण च स्वधर्मेण यदूगृहीत वनान्तरे । तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०॥  
तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुदुःखापनुत्तये । तेन श्रेयो भवेत्यच्च तद्वेत्यम पापिनः ॥५१॥  
जीर्णो चोपानहावेतौ हस्तौ स्तश्च पदोर्मम । न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्स्मै ददाभ्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने बतलाना प्रारम्भ किया । उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनिये । हे राम ! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे जाज में ब्रह्मिष्ठपदपर बैठा है । अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता है । एम्बा सरोबरके पास कोई एक महान् यशस्वी शत्रुं नामका ब्राह्मण रहता था । उसने गुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया । उसे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निजं वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था । वह वैशाखका महीना था । मारे गर्मीकि उसका जी बैचैन था । दोपहरके समय थककर वह उसी वनमें बैठ गया । उसी समव घनुष-बाण लिये एक दुष्ट व्याधं उसके पास आ पहुँचा ॥ ३८-४४ ॥ वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दंथी था । उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलबारसे भयभीत करके उसके मुण्डलादि आभूषण, जूतं, छत्तरी, वस्त्रं तथा कमण्डलु आदि छोन लिये । इसके बाद उसने “जाओ” कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बैचारा ब्राह्मण कन्दूङ-पत्थर तथा सूर्यके तापसे जलती हुई बालुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा । जब उसके पैर ज्यादा जलने लगते तो किसी तृण आदिपर पैर ठंडा करके आगे बढ़ता था । चलते-चलते जब पैर बहुत जलने लगे तो वह कपड़ा बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ योही देर बाद चठकर उस कड़ाकेकी धूपमें पैरके जलनेसे हाहाकार करता हुआ वह फिर आगे बढ़ा । उस ब्राह्मणको जलती तुपहरीमें इस तरह दुःखित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैंने इसकी सारी वस्तुयें तो छोन ली हैं । न हो, इसे इसके जूते लौटा दूँ । इसकी सब चीजें छोनकर मैंने अपने धर्मका पालन किया ही है । हे राम ! वनमें आने-जानेवाले पथिकोंके सामान छोन लेना, उन चोरोंके धर्ममें सम्मिलित है । उस चोरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका बलेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो मुझ

इति निश्चित्य मनसि तूणं गत्वा ददीं च तौ । शक्तवृत्तपत्रपदाद् द्विजार्थाय सीदते ॥५३॥  
उपानहौ गुहीत्वाऽसो निर्वृतिं च परां यदौ । सुखा अवेति तं प्राह शंखतं उनरवीत् ॥५४॥  
पूर्वपुण्येन ते जाता शुभा दुद्विनेचर । यश सुदृशाऽब्द देशाखे स्वया दक्षावुपानहौ ॥५५॥  
इति तद्वचनं श्रुत्वा शंखं व्याधोऽन्नवीद्रुचः । किं भयाऽऽन्नरितं पूर्वं उत्सवं वक्तमहैमि ॥५६॥

शंख उत्सव

आतपो वाधते घोरो नात्र छाया न वै जलम् । तत्मात्थलांदरं गत्वा यत्र छायांशु वर्तते ॥५७॥  
तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । तदस्ते सुकृतं पूर्वं मविस्तारं वदान्यहम् ॥५८॥  
इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजिलिः । इतोऽविदूरे मलिलं वर्तते च सरोवरे ॥५९॥  
कपित्थास्तत्र वै संति फलभारेण पांडिताः । गच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः ॥६०॥  
व्याधेनैव समादिष्टस्तेन साक यदौ मुनिः । किंगददूरं ततो गत्वा ददर्शाय उत्सवम् ॥६१॥  
स्नात्वा मध्याह्नवेलायां तस्मिन्सरसि निर्मले । वाससी परिधायाय कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥६२॥  
देवपूजां तथा कृत्वा फलमूलमतंद्रितः । व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ॥६३॥  
भुक्त्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । सुखोपविष्टस्तं प्राह पूर्वपुण्यं वदामि ते ॥६४॥  
शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्तवं वेदपारगः । स्तंभो नाम लहापापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥६५॥  
तवेष्टा गणिका काचित्तदाऽसीत्संगदोपतः । त्वक्तनित्यक्रियो नित्यं शूद्रवन्मूर्खमार्गमः ॥६६॥  
शून्याचारस्य मृढस्य परित्यक्तक्रियस्य च । त्राक्षणी ते तदाऽन्यासीद्वायां कांतमयी तथा ॥६७॥  
सा त्वा पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं त्राक्षणाधमम् । उभयोः क्षालयंती च पादौ त्वत्प्रियकाम्यया ॥६८॥  
उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता । वेश्यया वार्यमाणाऽपि हितकायें द्वयोः स्थिता ॥६९॥

पापीके पक्षमें अच्छा ही होगा ॥ ४८-५१ ॥ ये जूते भी पुराने और छोटे हैं । इसलिए मेरे पैरमें न आयेंगे । तब इसे दे ही डालूँ । इस प्रकार निश्चय करके दोड़ता हुआ वह उस धूप तथा कंकड़ियोंके गड़नेसे दुखी ब्राह्मणके पास पहुँचा और उसे उसाँ जूत दे दिये ॥५२॥५३॥ जूता मिलनपर उसे बड़ा आनन्द मिला और ब्राह्मणने कहा—तुम सुखी होओ । हे बनेचर ! पूर्वजन्मके दिसी पुण्यसे तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है । जिससे तुमने बैशाख महीनेमें इस जूतेका दान दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार ब्रह्मकी बात सुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था । सो आप वित्तारपूर्वक मुझे बताइये ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि इस समय मुझे धाम जायादा लग रहा है । इस जगहपर न तो पानी है, न छाया ही है । इसलिए किसी एक स्थान-पर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिल सके । वहाँपर ही मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका वृत्तांत सुनाऊँगा ॥ ५७॥५८॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनी तो हाय जोड़कर व्याधेने कहा कि पास ही सरोवरमें पानी है और उसके आस-पास बहुतसे केदेके बृक्ष फलसे लदे हुए दिच्यमान हैं । वहाँपर चलनेसे आप सन्तुष्ट हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्याधेके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण उसके साथ चलकर उस सरो-वरके पास पहुँचा । दोपहरके समय उसने स्नान किया, बापड़े पहने और मध्याह्नकालकी क्रियायें पूरी कीं । फिर देवताका पूजन करके व्याधेके लाये हुए कंथेके फल खाये, सरोवरका मीठा पानी पिया और छायामें सुखसे बंधकर विप्र बोला—अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बतलाता हूँ ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें शाकल नामकी नगरीमें तुम वेदपरगामो स्तम्भ नामके ब्राह्मण थे । श्रीवत्स गोत्रमें तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े भारी पापी थे । दुःसङ्गके दोषवश तुम एक वेश्यापर मुग्ध हो गये । तुमने अपनी सारी नित्य-क्रियायें छोड़ दीं और शूद्रके समान मूर्खोंके मार्गपर चलने लगे । तुम जैसे मूर्ख तथा आचार विहीन ब्राह्मण-के घरमें एक अति रूपवतो व्याही भाया भी थी । वह उस वेश्याकी तथा तुम्हारी खूब सेवा करती थी । तुम्हें प्रसन्न रखनेकी इच्छासे वह तुम दोनोंके पैर धोती थी ॥ ६५-६८ ॥ तुम दोनोंकी अपेक्षा नीची शव्यापर

एवं शुश्रूषयत्या हि भर्तारं वेश्यया सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया दद्हीतले ॥७०॥  
 अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् । अभक्षयत्जुद्रकर्मा निष्पावांस्तिलमिथितान् ॥७१॥  
 तमपथ्यमशित्वा तु वर्षवैव व्यरंचयत् । अपथ्यादारुणो रोगो व्यजायत भगदंदरः ॥७२॥  
 स दद्यमानो रोगेण दिवाशत्रं तु भूरिशः । यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥७३॥  
 गृहीत्वा सकलं वित्तं पश्चान्नोदास मन्दिरे । अन्यस्य पाश्वमासाद्य तस्यौ घोराऽतिनिष्ठृणा ॥७४॥  
 ततः स दीनवदनो व्याधिवाधासुपीडितः । उक्तवान्सुरुदन्भार्या रुजा व्याकुलमानसः ॥७५॥  
 परिपालय मां देवि वेश्यासत्तं सुनिष्टुरस् । न मयोपकृतं किञ्चित्तव सुन्दरि पावनि ॥७६॥  
 यो भार्या प्रणतां पागो नानुषन्येत मृढधीः । स पढो भवतीत्यत्र दश जन्मानि सप्त च ॥७७॥  
 दिवारात्रं महामागे निन्दितः साधुमिर्जनैः । पाययोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥७८॥  
 अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि सदा निष्टुरभाषणः । एवं ब्रवाणं भर्तारं कृताङ्गलिपुटाऽब्रवीत् ॥७९॥  
 न दैन्यं भवता कार्यं न ब्रीडा कांत मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते सुमनागपि ॥८०॥  
 पुरा कृतानि पापानि दुःखानि भवन्ति हि । तानि यः क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥  
 यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तद्भृजन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥८२॥  
 इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुभ्रन्वपालयत् । आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥  
 क्षीरोदवासिनं विष्णु भर्तुदेहाच्छनैः शनैः । न सा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८४॥  
 भर्तुदुःखेन संतप्ता दुःखितेदमथात्रवीत् । देवाश्च पांतु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥८५॥  
 कुर्वतु रोगहीनं मे भर्तारं हृतकल्पय । चंडिकार्ये प्रदास्यामि रक्तं मांसं मुखोऽङ्गवम् ॥८६॥

सोती और दोनोंकी आजाका पालन करती रहती थी ॥ यद्यपि वेश्या उसे अपनी सेवा करनेसे रोकती, फिर भी वह न मानती और तुम दोनोंकी परिचर्यामें रात-दिन लगी रहती थी । इस तरह सेवा करते-करते उस दुखियाके बहुत दिन बीत गये । एक दिन स्तम्भने तिलमिथित कुछ ऐसी चीजें खा लीं, जिसमें कैदस्त होने लगा और कुछ दिनों बाद उसने अतिदारण भगदंदर रोगका रूप बारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे स्तम्भ रात-दिन गलने लगा । जब तक घरमें सम्पत्ति थी, तब तक वेश्या रही । बादमें घरकी रही-सही पूँजी चुराकर निकल भागी और किसी दूसरेके घर जा बैठी । ऐसी अवस्थामें रोता हुआ स्तम्भ अपनी स्त्री-से कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझ वेश्यामामो तथा निष्टुर पुरुषकी रक्षा करो । हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरमें तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया है । शास्त्र कहता है कि जो पापी शीलवती भार्या-का निरादर करता है, वह सबह जन्म तक नपुंसक होकर जन्म लेता है । अच्छे पुरुष ऐसे मनुष्योंको रात-दिन निष्टा करते हैं । तुम जैसी सती साध्वी नारीका अपमान करके मुझे किसी नीच योनिमें जाना पड़ेगा ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा तुम्हारे ऊपर कुपित रहता और रुक्षी बातें बोला करता था । इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करते हुए पतिसे स्त्रीने हाथ जोड़कर कहा—हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखों न हों और उन बीती बातोंके लिए पश्चात्ताप न करें । मुझे तुम्हारेपर उनके लिए कोई चिन्ता या क्रोध नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपसे प्राप्त होते हैं । जो स्त्री या पुरुष उन दुःखोंको सह लेता है, वे उत्तम हैं । मुझ पिनीने पूर्वजन्ममें जो पाप किये थे, उनको भोगते हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिको ढाढ़स बैंधाया और पिता तथा भ्राताओंके पाससे धन माँग लाकर सेवा करने लगी । वह उस रोगी पतिके शरीरमें क्षीरसागरनिवासी विष्णुभगवान्का निवास मानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके शरीरमें पड़े हुए कोड़ोंको नाखूनसे निकालती रहती थी । इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी । स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओंको मनाती, पितरोंसे विनती करती

सुद्धनं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि विद्वेशाय महात्मने ॥८८॥  
 मन्दवारे करिष्यामि सदैवाहमुपोषणम् । नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै धृतम् ॥८९॥  
 तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं सदा स्थास्यामि भृतले । जीवन्वयं रोगहीनो भर्ता मे शरदां शतम् ॥९०॥  
 एवं सा व्याहरदेवी वासरे वासरे गते । तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाङ्ग्यः ॥९१॥  
 वैशाखमासे घर्मार्तिः स यथौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वैद्योऽयं गृहमागतः ॥९२॥  
 तेन ते रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् । यदाज्ञापयसि त्वं मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥  
 ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषमव्यजेन वंचितम् । तस्यातिथ्यं तु वै कर्तुं दत्ताऽऽत्मा वै पुरात्मया ॥९४॥  
 तस्य पत्नी तदा तुष्टा पूजयामास सा मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मृद्धिन तेऽपहत् ॥९५॥  
 पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा भेषजं त्विति । पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥९६॥  
 दिव्यान्नैर्भोजयामास सुगन्धव्यजने ददौ । त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापं न्यवारयत् ॥९७॥  
 स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिग्रामांतरं यथौ । अथ चाल्पेन कालेन मन्निपातोऽनवच्च ॥९८॥  
 त्रिकदुं मुख आधात्सा भर्ताऽङ्गुलिमखण्डयत् । कफेन दन्तपक्षिभ्यां मीलिताभ्यां दृढं तदा ॥९९॥  
 ते वक्रेऽङ्गुलिमखण्डं तत्स्थितमेवातिकोमलग् । खण्डयित्वांगुलिं तस्याः पञ्चत्वं त्वं गतः पुरा ॥१००॥  
 शश्यायां सुमनोज्ञायां स्मरस्तां पुंश्चलां हृदि । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमयो तव ॥१०१॥  
 विक्रीत्वा बलये स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं वहु । चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥१०२॥  
 समालिङ्ग्य भुजाभ्यां ते पादौ चाशिलध्य पादयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तथा ॥१०३॥  
 गुद्ये कृत्वा तु गुद्यं स्वमेवं सा राममानसा । दाहयामास कल्याणी भर्तुर्देहं रुजान्वितम् ॥

आत्मना सह तन्वङ्गी ज्वलिते जातवेदसि ॥१०४॥

एवं वरा सा ललना पतिव्रता दंदद्यमाने सुभमिद्यवह्नी ।

विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं नमस्कृत्य मुरारिलोकम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप यह प्रार्थना करती-हे देवि ! यदि मेरे पतिदेव शीघ्र अच्छे हो जायें तो मैं महिषके रक्त और मांससे मिला हुआ अन्न आपको समर्पण करेंगी । पातदेव यदि अच्छे हो जायें तो मैं गणेशजीको लड्डू चढ़ाऊंगी और प्रत्येक शनिवारका द्वात करेंगी । मैं मिठाई खाना छोड़ दूँगी, वी भी नहीं खाऊंगी, शरीरमें तेल और उवटन लगाना त्याग दूँगी और सर्वदा जमीनपर सोऊंगी । लेकिन मेरे पतिदेव रोगमुक्त हो जायें और सैकड़ों वर्ष जीवित रहें ॥६५-६०॥ इस तरह वह नित्य मानता माना करती थी । इसी बीच एक दिन महात्मा देवल क्रृष्णि सहसा उसके घर पहुँचे । वह वैशाखका महीना था । स्तम्भकी स्त्री पतिके पास जाकर कहने लगी कि एक कोई वैद्य एकाएक मेरे घर आ गया है । वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट कर देगा । आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसकी सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥६१-६३॥ स्तम्भ ( तुम ) ने सेवा करनेकी आज्ञा दे दी । स्त्रीने प्रसन्न मनसे देवलकी पूजा की । उनके चरण धोकर उस जलको माथे चढ़ाया और थोड़ा-सा जल दबाके व्याजसे स्तम्भ ( तुम ) को भी पिला दिया । फिर उन देवल क्रृष्णिको उसने पानी पिलाया । अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर भोजन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनको पंखा भी झलकर उनका सन्ताप दूर किया ॥६४-६७॥ रातभर देवलक्रृष्णि उनके घर रहे और सबेरे दूसरे गाँवको चले गये । थोड़े दिन बाद स्तम्भको ( तुमको ) सन्निपात हो गया । स्त्रीने त्रिकदु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ) का काढ़ा बनाकर स्तम्भके ( तुम्हारे ) मुखमें दिया, इतनेमें कफके प्रकोपसे दाँत जकड़ गये और तुमने स्त्रीको एक उँगली काट ली । तुम्हारे मुखमें वह कोमल उँगली पड़ी ही रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥६८-१००॥ मरणकालमें शश्यापर पड़े हुए उसी पुंश्चली वेश्याका स्मरण करते-करते तुमने प्राण त्याग दिया । जब उस सतीने जाना कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तो अपने दोनों कंकण वेचकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी बरीदी और उसको चिता बनायी । फिर दोनों भुजाओंसे भुजाएँ, पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

त्वम् न्तःक्षाले गणिकेच्छया हि देहं त्यक्त्वा त्यक्तकर्मा दुरात्मा ।  
 व्याधजन्म प्रापितं घोरधर्मे हिंसासक्तः सर्वदोद्देशकारी ॥१०६॥  
 दत्ता त्वया पानकर्मपितुं वै मासेऽनुज्ञा माधवे सदूद्विजाय ।  
 भिषमव्याजात्तेन जाता सुनुद्विर्धमं कर्तुं पादरक्षेऽपिते ये ॥१०७॥  
 धूतं मृष्णी पादशौचावशेषं जलं मुनेः सर्वपापपहारि ।  
 तेनैव ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन् जाता श्रोतुं स्त्रीयपुण्यं मतिश्च ॥१०८॥

‘तुखे कृत्वांगुलिं यस्मान्मृतः पूर्वभवांतरे । तरमादत्र वने मांत्राहारस्तेऽभूद्वनेचर ॥१०९॥  
 वेश्या सा भिक्षिनी जाता भार्या या तत्र वर्तते । शृण्यादां मरणात्तेऽत्र शयनं शुचि सर्वदा ॥११०॥  
 इति ते सर्वमारुथातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तत्कर्म पुण्यं पापं च दृष्टं दिव्येन चञ्चुपा ॥१११॥  
 अतः परं भावि वृत्तं भृणु तेऽहं वदामि वै । कृणनामि मुनिस्त्वये कस्मिमत्रिच सरोवरे ॥११२॥  
 करिष्यति तपस्तीव्रं चान्नव्यापारवज्जितः । पश्चात्योविरामांते तन्नेत्राभ्यां वहिः स्त्रुतम् ॥११३॥  
 वीर्यं दृष्टोरग्नी काचित्स्वयं स्खलितमंजसा । ग्रहीष्यति अृतोः क्राले तस्मात्तपुण्यतस्तदा ॥११४॥  
 किराताः पालयिष्यति किरातस्त्वं भविष्यसि । उपानहावर्णपतेऽथ यस्मात्तपुण्यतस्तदा ॥११५॥  
 भविष्यति सङ्गतिस्ते वने सप्तमीश्वरैः । तेवां प्रसादाद्वालभीकिर्मुनिस्त्वं हि भविष्यसि ॥११६॥  
 यस्त्वं रामकथा दिव्यां सुप्रवन्धैः करिष्यसि ।

वाल्मीकिरवाच

इति व्याधं समादिश्य धर्मान्वैशाखजानपि ॥११७॥

उपदिश्य सविस्तारं प्रतस्थे गौतमीं तदा । स शंखः कुण्डलाद्यैश्च तदत्तेस्तुष्टमानसः ॥११८॥  
 व्याधोऽपि शङ्खवचनात्स्मिन्नेव वने चिरम् । यन्यैश्चाखमासीयान्धर्मान्प्रीत्याऽकरोच्छुभान् ॥११९॥

हृदयका आलिंगन करके तुम्हारे साथ घबरकती चितानें शरीरकी त्वागकर वह राममें रमी पतिव्रता स्त्री सती हाँकर वैकृष्णलोकको चली गयी ॥ १०१-१०५ ॥ अपने ज्ञाहृणोचित कायोंको त्यागे हुए तुमने अन्तसमयमें वेश्याका चिन्तन करते हुए प्राण त्यागे थे । इससे गर्वदा उद्वेगकारी तथा हिंसामें आसक्त इस घोरकर्ममय छायेको योनिमें उत्पन्न हुए हो । उस समय वैशाख महीनेमें आये हुए देवल ऋषिकी पूजाके लिए तुमने अपनी स्त्रीको आज्ञा दे दी थी, उसी पुण्यसे तुम्हारे हृदयमें घर्मदुद्धि उत्पन्न हुई है । इसीसे इस समय तुमने मेरे जूते वापस दे दिये हैं । तुम्हारी स्त्रीने दवाके व्याजरे व्राह्मणका चरण-जल तुम्हारे माथे चढ़ाया था, उसी पुण्यसे आज हमारी भेट हुई है और तुम अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत सुन रहे हो ॥ १०६-१०८ ॥ तुमने पूर्वजन्ममें अपनी स्त्रीकी उँगली काट ली थी । इसलिए है वनेचर । इस समय तुम मांसाहारो हो । वह वेष्या इस समय भोलिनी है । मरते समय तुम शव्यापर हो पड़े रहे, इस कारण इस जन्ममें तुम्हें सर्वदा भूमिपर शयन करना पड़ता है । मैने अपनी योगदृष्टिसे तुम्हारे पूर्वजन्मके पाप-पुण्य देखकर तुम्हें बतलाया है ॥ १०६-१११ ॥ इसके अनन्तर अब मैं तुम्हें तुम्हारे भावी जीवनका हाल बतलाता हूँ, सुनो । कृणनामके कोई तपस्वी अन्त त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या करते रहेंगे । तपस्याके अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा । उसे देखकर कोई सर्पिणी खा जायगी । उसीके उदरसे तुम किरातके रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२-११४ ॥ किरात लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम उन्होंके साथ रहोगे । जो तुम इस समय मुझे मेरा जता वापस दे रहे हो, इसी पुण्यसे एक बार तुम्हारी सप्त ऋषियोंसे भेट होगी और उनकी दयासे तुम वाल्मीकि नामक ऋषि होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छी रचनासे तुम रामकथाका निर्माण करोगे । वाल्मीकिजी कहते हैं कि इस प्रकार वैशाख मासका घर्म तथा विविध उपत्यका देकर व्याधेसे कुण्डल आदि पाकर प्रसन्न मन शहू गौतमी नदीकी ओर चले गये । व्याधेने भी शंखके उपदेशसे बनले फलमूल द्वारा ही वैशाख मासके घर्मोंकी

व्याधजन्मात्यये जाते कृणः पुत्रस्त्वहं ततः । पञ्चांजिठरोद्भूतस्त्वरप्ये रघुनन्दन ॥१२०॥  
 अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वद्धितः । जन्ममात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥१२१॥  
 शूद्रायां बहवः पुत्राश्वेतपन्ना मेऽजितात्मनः । ततश्चौरैश्च संगत्य चौरोऽहमभवं पुनः ॥१२२॥  
 धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामतकोपमः । एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥१२३॥  
 स्वतेजसा प्रकाशतो ज्वलनार्कसमप्रभाः । तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥  
 गृहीतुकामस्त्राहं तिष्ठतां तिष्ठतामिति । अत्रव मुनयोऽपृच्छन् किमायामि द्विजाधम ॥१२५॥  
 अहं तानब्रवं किंचिदादातुं मुनिमत्तमाः । पृत्रदारादयः संति वहनो मे वृभुक्षिताः ॥१२६॥  
 तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥१२७॥  
 यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः । युयन्त्रागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक् ॥१२८॥  
 वयं स्थास्यामहे यावदागमिष्यसि निश्चयात् । यत्पाप ब्रह्महत्यायां यत्पापं मथ्यपानतः ॥१२९॥  
 तेन पापेन लिङ्पामो यदि गच्छामहे वयम् । यत्पापं हेमचौयेण गुरुदारागमाच यत् ॥१३०॥  
 तेन पापेन लिङ्पामो त्वामपृष्ठा वनेचर । चेद्वजामो वयं सर्वे इतस्ते पृष्ठतो चहिः ॥१३१॥  
 संसर्गजनितं पापं ब्रह्मस्वहरणाच्च यत् । तेन पापेन लिङ्पामो यदि गच्छामहे वयम् ॥१३२॥  
 एवं तच्छप्यैर्नानाविधैः प्रत्ययमागतः । तथेत्युक्त्वा गृहं गन्वा मुनिर्मिर्यदुदीरितम् ॥१३३॥  
 अपृच्छं पुत्रदारादीस्तैरुक्तोऽहं रघृत्तम् । पातं तवेव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ॥१३४॥  
 तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागतः । मुनयो यत्र निष्ठुति करुणापूर्णमानयाः ॥१३५॥  
 मुनीनां दर्शनादेव शुद्धातःकरणोऽभवम् । धनुरादि परिन्यज्य दंडवत्प्रितोऽस्मयहम् ॥१३६॥

निभाया । व्याधेका जीवन वितानेके पश्चात् मैं पञ्चांजीकी योनिसे कृष्णका पुत्र होकर जन्मा । मैं उस समय किरातों ही में बढ़ा और उन्हींके साथ रहने लगा । केवल जन्म मेरा ब्राह्मणके वीयसे हुआ था । किन्तु कमं पेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ ११७-१२१ ॥ एक शूद्रासे मेरा विवाह हुआ और उससे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मैं चोरोंसे जा मिला और धनुष-बाण धारण करके संसारी जीवोंके लिए यमराज सहस्र भयानक चोर हो गया । एक बार मैंने एक विकराल जङ्गलमें सप्त ऋषियोंको दंखा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जलती हुई अग्नि तथा सूर्यके समान उनका प्रकाश था । उन्हें देखते ही उनके कपड़े लत्ते छीननेके लिए भैं जोरोंसे दौड़ पड़ा और “ठहरो-ठहरो” कहकर चिल्लाने लगा । तब ऋषियोंने कहा—अरे द्विजाधम ! क्यों दौड़ा आ रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उत्तर दिया कि आपसे कुछ लेनेके लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब लोग भूखे बैठे हैं । उन्हींका पालन-पोषण करनेके लिए मैं वन-वन धूम रहा हूँ । तब सप्तरिषयोंने हमसे कहा—अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि मैं जो नित्य यह पापकी कमाई कर रहा हूँ । तुम लोग अलग-अलग बतलाओ कि उस पापका कल भी भोगोगे या नहीं ? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्वास रखतो कि जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे, तब तक मैं यहाँ ही रहूँगा । जो पाप ब्रह्महत्या करनेमें और जो पाप मद्य पीनेमें लगते हैं, हमलोग उन्हीं पापोंके भागी हों, जो विना तुम्हारे आये यहाँसे जायें । जो पाप सोना चुराने या गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेमें होता है, हमलोग उन पापोंके भागी हों, यदि तुमसे विना पूछे यहाँसे जायें ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्राह्मणका धन हड्डप लेनेसे जो पातक लगता हो, हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीठ पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारकी कसमें खानेपर मुझे विश्वास हुआ और अपने घर गया । वहाँ जैसा उन ऋषियोंने कहा था, उसी तरह घरके लोगोंको इकट्ठा करके मैंने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा । उन्होंने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो, उससे हमें कोई मतलब नहीं । हम तो केवल कल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहाँ आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले वे सप्तरिषि बैठे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोंके दर्शन ही से मेरा हृदय पवित्र हो गया । तुरन्त धनुष-बाण आदि शस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके चरणोंमें दण्डवत् लोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोद्धं मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकार्णवे । इत्यग्रे पतितं दृष्टा मामूचुमुनिसत्तमाः ॥१३७॥  
 उच्चिष्ठोच्चिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः । उपदेश्यामहे तुभ्यं किञ्चिचेनैव मोक्ष्यसे ॥१३८॥  
 परस्परं समालोक्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव सद्वृत्तस्तथापि शरणं गतः ॥१३९॥  
 रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमागोपिदेशतः । इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥  
 मुनयो मामुपदिदिशुर्मत्कृपापूर्णमानमाः । एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥  
 आगच्छामः पुनर्यावित्तावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥  
 अहं यथोपदिष्टस्तैस्तथाऽकरवमंजसा । जपनेकाग्रमनसा ब्राह्मं विस्मृतवानहम् ॥१४३॥  
 साक्ष्यर्थं तपसस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया । एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥  
 सर्वसङ्गविहीनस्य वन्मीकोऽभूत्ममोपरि । दण्डोऽग्रे स नगो रम्यो बभूत मत्तपोवलात् ॥१४५॥  
 ततो युगसहस्रांते ऋषयः पुनरागमन् । मामूचुनिर्गमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥१४६॥  
 वल्मीकान्तिर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः । मामप्याहुर्षुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वरः ॥१४७॥  
 वल्मीकात्संभवो यस्मादुद्वितीयं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते यदुर्दिव्यां गतिं रघुकूलोत्तम ॥१४८॥  
 अहं ते रामनामनश्च प्रभावादीदग्नोऽभवम् । एकदा शम्भुवचसाऽयं विधिः श्रुतवास्तव ॥१४९॥  
 चरितं वेदवाक्यैश्च कैलासे परमे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥  
 नारदः कथयामास वेदवाक्यर्ममात्र तत् । ततः क्रौंचं हतं दृष्टा व्याधेन तमसातटे ॥१५१॥  
 शोचन्तीं सांत्वयन्क्रौंचीं ममास्यान्तर्गतस्तदा । द्वात्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरकके महासमुद्रमें गिर गया हूँ, मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा—“उठो ! उठो !! आज हम लोगोंका समागम तुम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे तुम सब पापोंसे छूट जाओगे ।” इसके बाद उन लोगोंने परस्पर मंत्रणा करके कहा—नियम तो यह है कि सदाचारी मनुष्यको ही उपदेश देना चाहिये । यह ब्राह्मणाधम एक असाधारण दुराचारी है । फिर भी हमलोगोंकी जरण आया है । इसलिये इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार निश्चय करके हे राम ! उन्होंने आपके उलटे अक्षरोंके नाम (मरा) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम एकाग्र मनसे ‘मरा’ नामका जप करते रहो । जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आयें, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करते रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि ऋषिगण वहाँसे चले गये ॥ १३८-१४२ ॥ जैसा उन्होंने बतलाया था, ठीक उसी तरह मैं एकाग्र मनसे जप करने लगा । मेरा मन उस जपमें इतना रम गया कि मुझे अपने शरीरकी भी सुविनहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके लिए मैंने अपने सामने एक दण्ड गाढ़ दिया था । इस तरह निश्चल भावसे भजन करते-करते बहुत दिन बीत गये और वल्मीकों (दीमकों) ने मेरे शरीरपर मिट्टीका ढेर लगा दिया । मेरे तपोबलसे वह सामनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद वे सप्तक्रृष्णिगण फिर लौटे और मेरे विमीटेके समीप खड़े होकर उन्होंने पृकारा और कहा कि “निकलो” । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय विमीटेके भीतरसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा वैसी ही थी, जैसी कि कुहरेके भीतरसे निकले हुए सूर्यनारायणकी होती है । तब मुझसे मुनियोंने कहा कि वल्मीक (विमीट) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये तुम मुनीश्वर वाल्मीकि हो गये हो ॥ १४६-१४८ ॥ इतना कहकर वे ऋषि दिव्य (आकाश) मार्गसे चले गये । आपके रामनामके प्रभावसे मैं ऐसा क्रृषि हो गया । एक बार श्रीशिवजीके मुखसे इन ब्रह्माजीने वेदसे मयकर निकाले हुए आपके चरित्रको सुना था ॥ १४९ ॥ तब इन्हीं (ब्रह्मा) ने उसे अपने बेटे नारदको बताया और उन्होंने वह सारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये क्रौंचके दुःखसे दुःखिता क्रौंचीको देखकर मुझे जो शोक हुआ, वही शोक बत्तीस अक्षरोंवाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखसे निकल पड़ा (श्लोक यह है—मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । सनागत्य तु संक्षेपादपिता मे वरा अपि ॥१५३॥  
ततोऽस्य ब्रह्मणो वाक्यात्कृतवांश्चरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥१५४॥  
एवं त्वया यथा पृष्ठं तथा सर्वं निवेदितम् । एवं वाल्मीकिवाक्यश्च सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥  
पृष्ठा श्रोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास रघवः । एतस्मच्चन्तरे रामं वाक्पतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥  
राम किं चरितं गेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णेश्च शब्दमात्रोऽत्र गीयते ॥१५७॥  
लौकिका वैदिका वापि अकाराद्यास्तु पोडश । स्वरास्तथैव वर्णाश्च चतुर्ख्निशच्छुभावहाः ॥१५८॥  
कक्काराद्याः क्षकारांता मन्त्ररूपाः शुभावहाः । एवं वर्णाश्च पञ्चाशद्ये कीर्त्यते नरभूतिः ॥१५९॥  
ते त्वं नामाद्यवर्णाश्च सर्वं ज्ञेया रघूत्तम । तव नामाद्यवर्णेश्च व्यासं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥  
चराचराणां सर्वेषां यानि नामानि तानि ते । तेषु वर्णपरत्वेन नामान्यद्य वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्चव	पंचाशत्तानि	शृण्वन्तु	सज्जनाः ।
ओमनन्ता १	नन्दमय २	श्रेष्ठापूर्तफलप्रदः ३	॥१६२॥
ईश्वरश्च ४	तथोत्कृष्ट ५	शार्ध्वरेता ६	ऋतंभरः ७ ।
ऋयुक्तश्च ८	लृशश्चैव ९	लृपक १०	शक ११ एव च ॥१६३॥
ऐश्वर्यद १२	शोजदश्च १३	तथैवौदार्यचंचुरः १४ ।	
अंतरात्मा १५	चार्द्वगर्भ १६	स्तर्थैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥	
खङ्गी च १८	गतिदश्चैव १९	घनश्याम २०	स्तर्थैव च ।
डणन २१	श्रमिताशेषदुष्कृतश्च	२२	तथैव हि ॥१६५॥
छत्री २३	जगन्मय २४	श्रैव झपरूपी २५	जटेश्वरः २६ ।
टणत्कारिधनु २७	प्रानवन्धो २८	डमरुसत्करः २९ ॥१६६॥	
दुणुल्लुनितपापश्च	३०	णकर्णश्च ३१	तथैव हि ।
तपोरूप ३२	स्थव ३३	श्रैव दक्षो ३४	धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वतोः समाः ॥ यत्कौञ्चमिथुनादेकमद्धीः काममोहितम् ॥ ) ॥ १५०-१५२ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजीने आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ आपने जैसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया । यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब वातोंको जानते थे, किन्तु संसारके लोगोंको सुनानेके लिये उन्होंने वाल्मीकिजीसे इस प्रकारके प्रश्न किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले—॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-के चरित्रका कोई कहाँ तक गान करेगा । जिसके नामके पहसे ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं । लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह स्वर और कक्कारसे लेकर क्षकार पर्यन्त चाँतिस वर्ण ये पचास अक्षर, जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले अक्षरसे सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७-१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे मैं आपको बतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनको सज्जन लोग सुनते जायें—अकारसे ‘अनन्त’ । आकारसे ‘आनन्दमय’ । इकारसे ‘इष्टापूर्तफलप्रद’ । ईकारसे ‘ईश्वर’ । उकारसे ‘उत्कृष्ट’ । ऊकारसे ‘ऊर्ध्वरेता’ । ऋकारसे ‘ऋतंभर’ । ऋकारसे ‘ऋणनुक्त’ । लृसे ‘लृश’ । लृसे ‘लृपक’ । एसे ‘एक’ । ऐसे ‘ऐश्वर्यद’ । औसे ‘ओजद’ । औसे ‘ओदार्यचंचुर’ । अंसे ‘अंतरात्मा’ । अःसे ‘अद्वेगर्भ’ तथा कसे ‘करुणाकर’ ॥ १६१-१६४ ॥ खसे ‘खङ्गी’ । गसे ‘गतिद’ । घसे ‘घनश्याम’ । इसे ‘डणन’ । चसे ‘चमिताशेषदुष्कृत’ । छसे ‘छत्री’ । जसे ‘जगन्मय’ । झसे ‘झपरूपी’ । त्रसे ‘त्रटेश्वर’ । टसे ‘टणत्कारिधनु’ । ठसे ‘ठानवन्ध’ । डसे ‘डमरुसत्कर’ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥ ढसे ‘दुणुल्लुनितपाप’ । णसे ‘णकर्ण’ । तसे ‘तपोरूप’ । थसे ‘थव’ । दसे ‘दत्त’ । घसे ‘धन्वी’ ॥ १६७ ॥

नष्टोद्भूरणधीरश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।  
 तथा फलप्रदश्वैव ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥  
 भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।  
 रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥  
 शरण्यः ४६ षड्गुणैश्वर्यसंपन्नश्च ४७ तथैव हि ।  
 सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्षमी ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगत्त्रयम् । व्यासं श्रीराम सर्वत्र घवणेन घटः स्मृतः ॥१७१॥  
 पवर्णेन पटो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् । एकैकस्य च वर्णस्य भेदैर्नामानि ते पृथक् ॥१७२॥  
 नाहं समर्थो व्याख्यातुं पञ्चास्योऽपि न च क्षमः । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुंठितस्त्वभूत ॥१७३॥  
 एवं ते तद्विमा राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकियेन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥  
 शतकोटिमितं राम तवैव कृपया प्रभो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुदेवै राघवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ठा रामं ययौ स्वर्गं सत्यलोकं ययौ विधिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययौ चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥  
 तदारम्य जनाः सर्वे चक्रुद्धास्यं मुदैव ते । मांगल्यकर्मण्युत्साहकर्मणि जगतीतले ॥१७७॥  
 चक्रुः सर्वे पूर्ववच नातिहास्यं प्रचक्रिरे । ख्वाभिनर्दाः सुसन्तुष्टाः क्राडाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्थे  
 वाल्मीकिजन्मतत्त्वमत्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नसे 'नष्टोद्भूरणधीर' । पसे 'परमेश्वर' । फसे 'फलप्रद' । वसे 'बलिवरप्रद' । भसे 'भगवान्' । मसे 'मधुघाती' ।  
 यसे 'यज्ञफलप्रद' । रसे 'रघुनाथ' । लसे 'लक्ष्मीश' । वसे 'वशिष्ठ' । शसे 'शरण्य' । षसे 'षड्गुणैश्वर्यसंपन्नश्च' ।  
 ससे 'सर्वेश्वर' । हसे 'हयग्रीव' । क्षसे 'क्षमी' ॥ १६८-१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासों अक्षरोंके  
 आधार हैं और इन्हींसे आकाश, पाताल, मृत्यु ये तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं । घवणेन से घटका वोष  
 होता है और पवर्णसे पट जाना जाता है । घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है ।  
 एक-एक वर्णके भेदसे सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्यं मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं,  
 यदि पंचास्य अर्थात् शिवजीको बतलाना पड़े तो वे भी असमर्थ ही रहेंगे । जिसको महिमाका वर्णन करनेमें  
 एक सहस्र मुखवाले शेषजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर भी वाल्मीकिजो  
 वन्य हैं, जिन्होंने सौ करोड़ फ्लोकोंसे आपके चरित्रका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे प्रभो ! जो कुछ  
 वाल्मीकिजोने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देव-  
 ताओंके साथ देवगुह वृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ज्ञानाजी भी रामसे पूछकर अपने सत्यलोकको लौट  
 गये । वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके  
 साथ हँसने-खेलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलमय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगे । तबसे लोग  
 प्रसन्नताके साथ परस्पर हँसी-दिल्लगी करने लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ५० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्थे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

## पञ्चदशः सर्गः

( राम और रामराज्यकी विशेषतायें )

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानामीज्जनान्भुवि । नार्थान्कुत्रापि कलहथौर्यं निंदाभयं तदा ॥ १ ॥  
 राज्यमासीदसापत्नं समृद्धवलवाहनम् । ऋषिभिर्हृष्टपुष्टेश्च रम्यं हाटकभूपणैः ॥ २ ॥  
 संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तुभिः सदा संपन्नशस्यं च सुचिरं क्षेत्रसंकुलम् ॥ ३ ॥  
 सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं वहगोधनम् । देवताष्टतनानां च राजिभिः परिगजितम् ॥ ४ ॥  
 सुयुपा यत्र वै ग्रामाः सुतविच्छिन्दिगजिनाः । सुपुण्डक्तिमोद्यानाः सुमदाकलपादपाः ॥ ५ ॥  
 सुपद्मानीककासारा राजन्ते यत्र भूमयः । सद्भा निम्नगागाजिवैत्र सन्ति न मानवाः ॥ ६ ॥  
 कुलान्येव कुलीनानि न चान्यायधनानि च । विभ्रमो यत्र नारीपुन विद्वत्सु च कर्हिंचित् ॥ ७ ॥  
 नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः क्षपा यत्र वहुलेषु न मानवाः ॥ ८ ॥  
 रजोयुजः स्त्रियो यत्र न धर्मवहुला नगाः । धनैरनन्दो यत्रास्ति जनो नैव च भोजनात् ॥ ९ ॥  
 अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजपूरुषः । दण्डः पशुकुदालवालव्यजनराजिषु ॥ १० ॥  
 आतपत्रेषु नान्यत्र कर्त्तित क्रोधोऽपराधजः । अन्यत्राश्विकवृन्दभ्यः क्षचित्परंदेवनम् ॥ ११ ॥  
 आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्र पाशैकपाणयः । जाङ्गवातां जलेऽवेच स्त्रामध्या एव दूर्वलाः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! रामचन्द्रजोके राज्यमें संसारके सब लोगोंको सदा आनन्द है। आनन्द रहता था। उस समय न कहीं चोरी होती, न लड़ाइ-झगड़ा होता, न कोई किसीका नित्या बरता और न कोई किसीसे डरता था ॥ १ ॥ राज्य भी उस समय शत्रुओंसे रहित और विविध प्रकारके वाहन तथा सेनासे परिपूर्ण था। रामराज्यमें ऋषिगण हृष्ट-युष्ट थे और राज्यके रहनेवाले लोग सोने-चौदीके गहनोंसे लदे रहते थे। इष्ट-आपूर्त आदि धार्मिक कृत्य होते रहते थे और सारे खेत वान्यसे परिपूर्ण रहा करते थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भाव यह है कि उस समय समस्त देश सुखी था, प्रजा प्रसन्न थी और रहन-सहन उत्तम था। गौओंके चरनेको सुन्दर धास उपजता थी। गोधनका अविकला था। सारा देश देवालयोंसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यके सब गाँवोंमें यजकं सुन्दर यूप गड़े हुए थे। प्रजाके सब लोग घन-वान्यसे परिपूर्ण रहते थे और अच्छे-अच्छे फूलों तथा सदा फल देनेवाले कृत्रिम वर्गाचोंसे सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहनेवालों कितनी ही नदियाँ राज्यकी भूमिपर वह रहा थीं। ऐसे ही कुछ स्थान बचे थे, जहाँ कि मनुष्योंका निवास नहीं था। वाकी सारी पृथ्वी मनुष्योंसे भरी थी ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे। अन्याय नहीं होता था और धनकी कमी नहीं रहती थी। उस समय स्त्रियोंमें विभ्रम ( लज्जा ) दीखता था, किन्तु पण्डितोंमें विभ्रम ( वड़ी भूल ) नहीं रहता था ॥ ७ ॥ उस समय देशमें कुटिल ( टंडी-बैडी ) वहनेवालों नदियाँ थीं, किन्तु प्रजा कुटिलता ( दुष्टता ) से सर्वथा बची हुई थीं। कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम ( अंधकार ) था, मनुष्योंमें तम ( तामस गुण ) नहीं दीखता था यानी सारे मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियाँ रजोयुक्त ( रजस्वला ) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त ( राजस गुणयुक्त ) नहीं थे। उस समय राज्यके लोग पैसेसे ( अन्ध ) अन्धे नहीं थे, किन्तु अन्ध ( अन्ध ) से कोई अनन्ध नहीं था। अर्थात् सब लोग खाने-पीनेमें सखी दीखते थे। उस समय राजपुरुषों ( अविकारियों ) में अन्याय नहीं दीखता था। दण्ड केवल कुलहाड़ी, कृदाल तथा पंखों ही में दीखता था। प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता हो नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप ( धाम ) केवल छतरियोंपर रहता था। रामराज्यकी प्रजामें सन्ताप ( मानसिक दुःख ) नहीं रहता था। केवल रथ हाँकनेवाले सारथियोंके हाथमें पाश ( धोड़े या बैलकी रास ) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश ( फाँसीका दण्ड ) मिलता नहीं देखा गया। जड़ता ( ठंडक ) की बात केवल जलमें रहती थी।

कठोरहृदया यत्र मीमन्तिन्यो न नानवाः । औपधेष्वेव यत्रास्ति कुष्ठयोगो न मानवे ॥१३॥  
 वेष्योऽभ्यन्तःसु रत्नेषु शूलं मूर्तिं ररेषु वै । कंपः सात्त्विकभावोत्थो न भयात्कवापि कस्यचित् ॥१४॥  
 संज्ञरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुपस्य च । दुर्लभत्वं पातकस्य सुकृतं न च वस्तुनः ॥१५॥  
 इमा एव प्रमत्ता वै युद्धं वीच्याजैलाशये । दानहानिर्गजेष्वेव द्रुमेष्वेव हि कण्टकाः ॥१६॥  
 जनेष्वेव वहारा वै न कस्यचिद्गुरःस्थली । वाणेषु गुणविश्लेषो वन्धोक्तिः पुस्तके दढा ॥१७॥  
 दण्डत्यागः सर्देवास्ति यत्र पाशुपते जने । दण्डवाता सदा यत्र कृतसंन्यासकर्मणाम् ॥१८॥  
 मार्गणाश्रावकेष्वेव भिक्षुका व्रजान्वारिणः । यत्र अपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥  
 प्रायो मधुवता एव यत्र च वलवृत्तयः । इत्यादिगुणवदेये रामो राज्यं शशास सः ॥२०॥  
 धर्मेण राजा धर्मज्ञः सीतारामः प्रतापवान् । नक्षार रज्यं निर्देन्द्रमयोद्यायां सुनिश्चलम् ॥२१॥  
 विधाय राजधानीं तां विस्तुतां परित्वान्विवाह । एवांचके महादुर्द्धुः प्रजा धर्मेण पालयन् ॥२२॥  
 ततोप सूर्ये इव स दुर्दां हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहदागासीनमानसेषु स्वकेष्वापि ॥२३॥  
 अखण्डमाखण्डलवत् कोदण्डं कलयन्ते । पलायप्रानैरालोकि शत्रुसंन्यवलाहकः ॥२४॥  
 स धर्मगजाद्राजा धर्माधर्मविवेचकः । अदण्ड्येऽदण्डयत्रामो दण्ड्यांश्च परिदण्डयन् ॥२५॥  
 पाशीव पाशयांचके वैरिचकं विदूरगः । योऽभृत्युपपवनाधीशो रिपुराक्षसवर्द्धनः ॥२६॥  
 जगत्प्राणममानथ जगत्प्राणनतत्परः । राजराजः स एवाभूतसर्वेषां धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें जड़ता ( मूर्खता ) नहीं थी । केवल स्त्रियोंकी कमरमें दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥११॥१२॥ कठोरता हितयोंके स्तनमें राती थी, गुरुपींके दूरयमें नहीं । केवल औपधोंमें कुष्ठ ( कूठ औषधिविशेष ) का याग दीखता था, जिसी मनुष्यमें कुष्ठरोग नहीं था ॥ १३ ॥ वेद ( छिद्र ) केवल रत्नोंमें रहता था । शूल ( छोनी ) केवल मूर्ति बनानेवाले कारोगरोंके हाथमें रहता था । केवल सात्त्विक भावके उदय हीनेपर लोगोंको कम्प होता था—भयसे नहीं । दुलंभता पातकका था और नुक्तसे कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ मतवाले हाथों होते थे, मनुष्य नहीं । युद्ध जलकी लहरोंमें ही देखा जाता था । दानहानि ( मदके प्रवाहका रुक जाना ) केवल हाथियोंमें थी । वृक्षोंमें ही कण्टक ( काँट ) रहते थे ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें विहार होता था, किन्तु किसाकी उत्तरस्थलों ( छातो ) ऐसा नहीं देखा गया, जो विहार ( हारसे राहत ) हो । केवल वाणीमें गुणविश्लेष ( प्रत्यक्षाका विद्याग ) था, दृढ़वन्धाति ( कठिन बन्धनकी वात ) केवल पुस्तकोंकि लिए थी ॥ १७ ॥ शिवभक्तोंके लिए केवल दण्डत्याग किया जाता था । यानी उनसे दण्ड नहीं लिया जाता था । केवल संन्यासियोंमें दण्डवार्ता ( दण्डग्रहण-सम्बन्धो वातचात ) होता था ॥ १८ ॥ मार्गण ( वाण ) केवल यनुपपर रहते थे, प्रजामें कोई मार्गण ( भिखारी ) नहीं था । केवल चतुर्भारी भिक्षुक थे । केवल धृष्णुणक ( संन्यासी ) लोग मल ( चौबर वस्त्र ) धारी थे ॥ १९ ॥ प्रायः भौंरोंमें चंचलता दीखता थी । इस प्रकारके गुणवान् देशमें रामचन्द्रजी राज्य करते थे ॥ २० ॥ धर्मका तत्त्व जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजीने बहुत दिनों तक निरुद्धभावसे राज्य किया । उन्होंने अनेक प्रकारकी खाइयोंसे सुसज्जित करके अयोध्याको अपनी राजधानी बनायी और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाकी भलीभाति उन्नति की ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे शत्रुओंके हृदयमें सदा सूर्यकी भाँति तपते थे और मिश्रोंके हृदयमें चन्द्रमाकी तरह ठंडक पहुँचाते थे । इन्द्रके समान समरांगणमें अपना धनुष चमकाते हुए शत्रुसेनाल्पी मेघोंका भगा देते थे । ऐसा वरावर देखा गया है । महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभाति धर्म-अधर्मकी विवेचना करके काम करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होता था, उसे दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समूहको यमराजकी तरह उन्होंने बाँध रखा था । रिपुरूपी राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके सब महात्माओंमें ऊंच पदपर पहुँच चुके थे ॥ २३-२६ ॥ जगत्की रक्षामें तत्त्वर रामचन्द्रजी जगत्के प्राण समान थे । अच्छे मनुष्योंको धनकी सहायता देकर वे स्वयं राजराज ( कुवेर ) हो रहे थे । शत्रुओंको भय दिखाकर रुद्र बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

स एव रुद्रभूतिं श्रैश्चिष्ट रिपुभीषणे । विश्वेदेवास्ततस्तं तु स्तुवन्ति च भजन्ति च ॥२८॥  
 असाध्यः स हि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाधिकः । ग्रहाणां विग्रहधो दस्तोऽजस्तरूपधृक् ॥३९॥  
 मरुदगणानगणयस्तुपितास्तोषयन् गुणः । सर्वेविद्याधरो यस्तु सर्वेविद्याधरेवपि ॥३०॥  
 अगवनिव गन्धर्वान्यथके निजगीतिभिः । रसज्जुर्यक्षरक्षांसि तददुग्ं स्वर्गमोदरम् ॥३१॥  
 नागा नागांस्तिरश्चकुस्तस्य राज्ये वलोयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वा तं तु सिषेविरे ॥३२॥  
 जाता गुद्यचरा यस्य गुद्यकाः परितो नृषु । संसेविद्यामहे राजन् सुगम्भां स्वस्ववैभवैः ॥३३॥  
 वयं ततस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा गमचन्द्रं ते मघवादाः सिषेविरे ॥३४॥  
 अशिक्षयतिक्षतिपतेरिह यस्य तुरङ्गमान् । आशुगच्छशुगामिन्द्रं पावमाने पथि स्थितः ॥३५॥  
 अगजान्यस्य तु गजान्गवर्ष्मसु वर्ष्मणः । अवस्थानिनो दृष्टाऽभवदन्येऽपि दानिनः ॥३६॥  
 सदोऽजिरे च वोद्वारो योद्वारथ रणाजिरे । न शास्त्रैवं जतः कश्चिव शस्त्रैः केनचित्कचित् ॥३७॥  
 न नेत्रविषये जाता विषये यस्य भृभृतः । सदा नष्टपदा हृष्ट्यास्तथा नष्टापदः प्रजाः ॥३८॥  
 कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकमाम् । तस्य खोर्णाभृतः खोण्यां जलाः सर्वे कलालयाः ॥३९॥  
 एक एव हि कामोऽस्ति स्वगं सोऽप्यङ्गविनिः । माङ्गोपाङ्गश्च सर्वेषां सर्वे जामा हि तद्विः ॥४०॥  
 तस्योपवर्तनेऽप्येको न श्रुतो गोत्रभित्कचित् । स्वगं स्वगंसदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तिः ॥४१॥  
 क्षयी च तस्य विषये कोऽप्याकर्णं न केनचित् । त्रिविष्ट्ये क्षपानाथः पदे पक्षे क्षयिष्यते ॥४२॥  
 नाके नवग्रहाः संति देशास्तस्यानवग्रहाः । हिरण्यगर्भः स्वलोकेष्वेक एव ग्रकाशते ॥४३॥  
 हिरण्यगर्भाः सर्वेषां तत्पीरणामिहालयाः । सप्ताश्व एकः स्वलोके नितनां भासतेऽशुमान् ॥४४॥

सब विश्वेदेव उनकी स्तुति और भजन करते थे । वे साध्य ( द्वादश देवताविशेष ) के लिए भी असाध्य थे । वसु ( घन ) की अधिकतासे वे अष्टवसुओंसे भी श्रेष्ठ थे । नवग्रहोंके साक्षात् स्वरूप थे और अश्वनीकुमारके समान सदा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे ॥ २७-२८ ॥ वे अपने असाधारण पराक्रमसे महदगणोंसे भी श्रेष्ठ थे । कितने ही सदगुणोंसे वे छत्तोंस तुष्टितोंको प्रसन्न कर चुके थे । वे समस्त विद्याधरोंके शिरोमणि थे और अपने गीतके माघुर्यसे उन्होंने गन्वर्वोंका भी गवं स्वर्वं कर दिया था । संसारभरके यक्ष-राक्षस स्वर्गके समान कमनीय रामके किलेकी रक्षा करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वर्गलोकके हाथी रामके हस्तिसमूहसे पराजित हो गये थे । सारी दुनियाके दानव मनुष्यका वेष बना-बनाकर रामकी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुप्तचर राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए मुहूर्कों ( मणिभद्रादिकों ) से भी बाजी मार चुके थे । इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कहते थे—‘राजन् ! हमारे पास जो कुछ वैभव है, वह सब लगाकर हम आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेको प्रत्युत है’ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके घोड़े वायु देवताको भी जल्दी चलना सिखाते थे, जिसके पर्वतके समान ऊंचे बड़े-बड़े हायियोंकी अजस्रादानिता ( सतत मदप्रवाह अथवा दानशीलता ) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दानों बन गये थे । जिसकी राजसभाके बुद्धिमान् पण्डित और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा शस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५-३७ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे शत्रु कहीं नहीं दीखता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३८ ॥ देवताओंके स्वर्ग जैसे राज्यमें केवल एक कलावान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें सब मनुष्य कलाके भण्डार थे । स्वर्गमें केवल एक कामदेव था, सो भी अनङ्ग ( अर्थात् विना शरीरका ) । किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य सांगोपांग कामदेव ( जैसे सुन्दर ) थे । रामके राज्यभरमें खोजनेपर भी कोई गोत्रभित् ( जातिसे वहिष्कृत ) मनुष्य नहीं मिल सकता था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वयं गोत्रभित् ( इन्द्र ) थे ॥ ३९-४१ ॥ राम-राज्यमें कोई क्षयी ( क्षयरोगी ) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा पक्ष-पक्षमें क्षय होते रहते हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा नौ ग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह ( यानी आपसी

सदंशुकाः प्रतिगृहं वह्नश्वास्तपुरोक्तमः । सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तपुर्यपि सदप्सराः ॥४५॥  
 एकैव पद्मा वैकुण्ठे गीयते विष्णुवल्लभा । तत्पौराणां गृहेष्वासञ्ज्ञतपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥  
 अनीतयश्चलद्वामा न राजपुरुषाः कचित् । गृहे गृहेऽत्र घनदा नाक एकोऽलकापतिः ॥४७॥  
 एवं रामो महान् श्रेष्ठः शौटीर्यगुणशोभनः । सौभाग्यशोभी रूपाढ्यः शोर्योदार्यगुणान्वितः ॥४८॥  
 विजितानेकस्मरः श्रासमपिंतमार्गणः । सीतारंजितवामांग उग्रः परपुरंजयः ॥४९॥  
 अनेकगुणसंपूर्णः पूर्णचंद्रनिभव्युतिः । सत्तावभृथकिलन्मूर्धजः श्वितिपर्षभः ॥५०॥  
 प्रजापालनसपत्रः कोशप्रीणीतभूसुरः । पार्वतीकांतचरणयुगलध्यानतत्परः ॥५१॥  
 विश्वेश्वरकथालापपरिक्षिप्तदिनक्षपः । सीतासंक्षालितपदस्तत्क्रीडापरितोषितः ॥५२॥  
 शशास राज्यं धर्मेण वन्धुपुत्रसमन्वितः । रामे शासति साकेतपुर्यां राज्यं सुखेन वै ॥५३॥  
 हृष्टाः पुष्टा ग्रजाः सर्वाः फलवंतोऽभवन्नगाः । आसन्सदा सुकुसुमैर्विनग्राः सौख्यदा नृणाम् ॥५४॥  
 एकपत्नीव्रताः सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काच्चिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी ॥५५॥  
 अनधीतो न विग्रोऽभून्न शुरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिज्ञो नैवासीदथोर्पार्जनकर्मसु ॥५६॥  
 अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणं प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्सीतारामस्य भूपतेः ॥५७॥  
 अविष्टुतब्रह्मचर्यस्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना चेदग्रहणतत्पराः ॥५८॥

लहाई-झगड़ेसे रहित । था । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ ( विष्णुभगवान् ) रहते हैं; किन्तु रामराज्यके प्रत्येक घर हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनमें सुवर्ण भरे हुए थे । स्वर्गमें केवल एक सप्ताश्व अंशुमान् ( सूर्य ) हैं, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अंशुमान् ( अच्छे कपड़े पहननेवाले ) और सातको कौन कहे, कितने ही घोड़े बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे । जिस तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अप्सराएँ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अप्सराएँ रहती थीं ॥ ४३-४५ ॥ ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा ( लक्ष्मी ) हैं, किन्तु रामके राज्यमें सैकड़ोंसे भी अधिक पद्मपति ( पद्मसंख्यक रूपये रखनेवाले ) लोग थे । रामके राज्यमें कभी किसी प्रकारका अकाल नहीं पड़ा और ऐसे राजपुरुष नहीं थे, जो कान्तिविहीन रहे हों । स्वर्गमें केवल कुबेर घनद ( लेन-देनके व्यवहारी ) हैं, किन्तु रामके राज्यमें असंख्य घनद थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस तरह रामचन्द्र अनेक सद्गुणोंसे युक्त और सर्वश्रेष्ठ थे । रामचन्द्र सौभाग्य, रूप, शौर्य और ओदार्य आदि गुणोंसे युक्त थे । अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारकी दरिद्रताको उन्होंने लक्ष्मीके हाथों सौंप दिया था । उनके वामभागमें सीताजी बैठी रहती थीं । इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे । अनेक गुणोंके एकत्रित होनेसे वे पूर्ण हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी । सर्वदा अवभूत ( यशान्त ) स्नान करनेसे उनके केश भींगे रहते थे और सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पालन करनेमें वे पर्णतया दत्तचित रहते थे और खजानेके घनसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न रखते थे । वे सदा शिवके व्यानमें तत्पर रहते थे । वे सर्वदा शिवजीकी कथाएँ कहते-सुनते दिन-रात बिताते थे । सीता उनके पैर धोया करती थी । उनके साथ विविध प्रकारकी ऋडायें करनेसे राम प्रसन्न रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया । रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण जूँके रहते और मनुष्योंको सुखी रखते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उनके राजमें सब पुरुष एकपत्नीव्रती थे और स्त्रियोंमें भी कोई ऐसी नहीं थीं, जो अपने पातिव्रतघर्मंका पालन न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं था, जो बिना पड़ा हो और कोई क्षत्रिय भी ऐसा नहीं था, जो योद्धा न रहा हो । कोई ऐसा वैश्य नहीं था, जो घन कमानेकी कला-से अनभिज्ञ हो । राजा रामके शासनकालमें राज्य भरके शूद्र और किसी प्रकारकी वृत्ति न करके एकमात्र द्विजों ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ) की सेवामें लगे रहते थे । उनके राज्यमें ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोमभवा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टुं मनाग्वत्त्वं न तत्यजुः ॥५९॥  
 अनपत्यो न तद्राष्टे धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धसेवी नो कश्चिद्कालमृतिभाड् च ॥६०॥  
 न शठा नैव वाचाटा वश्चका नो न हिंसकाः । न पाखण्डा नैव भंडा न रंडा नैव शाँडिकाः ॥६१॥  
 श्रुतिधोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदा मगलगीतयः ॥६२॥  
 वीणावेणुप्रवादाश्च मृदंगधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठो न कर्णगा ॥६३॥  
 मांसाशिनः पुरोडाश नैवान्यत्र कथंचन । न दुरोदरिणो यत्राधर्मिणो न च तस्कराः ॥६४॥  
 पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनं परम् ॥६५॥  
 नारीणां भर्तुपदयोः सर्वत्र तद्वचःश्रुतिः । समर्चयति सततं निजमग्रजमादरात् ॥६६॥  
 समर्चयति मुदिता भृत्याः स्वामिपदाम्बुजम् । होनवर्णंग्रवणो वर्ण्यते गुणगौरवैः ॥६७॥  
 वरिवस्यांति भूयोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वे विद्वांसः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥  
 विद्वद्विश्वं तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः । जितेन्द्रेयर्जाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवलिङ्गिनः ॥६९॥  
 मंत्रपूतं महार्द्द च विधियुक्तं सुमंस्कृतम् । वाडवानां मखामनौ च हृयतेऽहनिंशं हविः ॥७०॥  
 वापीकूपतडागानामारामाणां पदे पदे । शुचिभिर्दृश्यसंभारैः कतरी यत्र भूरिशः ॥७१॥  
 तद्राष्टे हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्ते सर्वजातयः । अनिन्यसेवासंपन्ना विना मृगयुसैनिकान् ॥७२॥  
 यस्य राज्ये पताकासु चंचला श्रीर्ण राष्ट्रके । ऐरावतस्त्वेक एव शुभ्रः स्वर्गे गजो महान् ॥७३॥  
 चतुर्दन्तो रामराज्ये तद्वन्नागाः सहस्रशः । इनदुष्पूर्यावुभावेव शोभेते गगनांगणे ॥७४॥  
 रामराज्येऽत्र नारीणां सीमंतस्था अनेकशः । बृपोऽस्त्वेकः स केलासे गीयते परमः सितः ॥७५॥

गुरुकुलमें रहकर वेदाध्ययन करते थे ॥ ५६-५८ ॥ अतुलोम जातिमें उत्पन्न लोगोंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने दजेंसे ऊचे पद रहूँ । रामके राजमें कोई सन्तानविहीन तथा निर्धन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राजमें कोई अकाल मृत्युका ग्रास नहीं बन सका । उस समय न कोई शठ, न बकवादी, न बंचक, न हिंसक, न पाखण्डी, न भाड़, न स्त्रीचिह्नाम और न धूतं ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद-पदपर वेदध्वनि तथा शास्त्रसम्बन्धी वाद-विवाद मुनायी देता था । चारों ओर अच्छी-अच्छी बातें, हँसी-खुशीके मंगलगीत, वीणा-वंशी तथा मृदंगका मीठा स्वर सुनायी पड़ता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं सुनायी देती थी । यज्ञके अतिरिक्त दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, जुआँड़ी, अबर्मी और चोर कहीं भी नहीं थे ॥ ६२-६४ ॥ पुत्रके लिए माता-पिताके पदपूजन हो देवपूजन, उपवास, व्रत, देवतारावन और तीर्थं था । नारीके लिए अपने पति के घरण-पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सट्टश मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्मं माना जाता था । सदा छोटा भाई बड़े भाईकी पूजा करता था । सेवक प्रसन्न मनसे अपने मालिककी सेवा करते थे । नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊचे वर्णवालेका गुण-गौरव बखानता था ॥ ६५-६७ ॥ सब लोग ज्ञात्याणोंकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोरथ पूर्णकरनेको उद्यत रहते थे । विद्वान्से तपस्वी, तपत्वीसे जितेन्द्रिय तथा जितेन्द्रियसे भी ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और ज्ञानीसे भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सदा मंत्रसे पवित्र किया हुआ हृवि विप्रोंके मुखाग्निमें पड़ता रहता था ॥ ७० ॥ बावली, कृष्ण, तड़ाग तथा पद-पदपर बगीचा लगवानेवाले और पवित्र द्रव्योंको एकत्र करके यज्ञादि शुभ कर्मं करनेवाले कितने ही धर्मात्मा रहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राजमें सब जातिके मनुष्य हृष्ट-पुष्ट दिखायी पड़ते थे । शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग सराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल पताकामें रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और श्वेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्वेत वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते हैं, किन्तु रामराज्य-की स्त्रियोंके केशोंमें ( मणिके ) वैसे-वैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ सुना

तद्वद्वा रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकश्चंद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥  
 तद्वद्वा शिशूनां हि क्रीडार्थं संत्यनेकशः । अप्सरःसु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥  
 गेहे गेहे संति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूपाद्या गतिन् पुरनिःस्वनाः ॥७८॥  
 सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्णे प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि सहस्राक्षीण्यनेकशः ॥७९॥  
 सुघापानं त्वेकमेव स्वर्णेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानारसानां च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥  
 सुघापानेन संहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनाः ॥८१॥  
 सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र बालेषु मर्यादा सर्वदेश्यते ॥८२॥  
 विचरंति गजारुदाः श्रूयते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरंत्यत्र ते गजैः ॥८३॥  
 पूर्वं श्रुतं शिशूनां हि चुंबनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुंबनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥  
 क्रीडा परिमलद्रव्यैः फाल्गुने सा श्रुता पुरा । क्रीडां परिमलद्रव्यैः पौराशक्रः सदाऽत्र ते ॥८५॥  
 एवं तद्रामराज्यं हि महामंगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
 उत्तरार्थे रामराज्यवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

### षोडशः सर्गः

( रामका लव-कुश तथा भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः श्रीमान्समाहृय कुशं लवम् । लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं रहसि स्थितः ॥ १ ॥

जाता है कि कैलासपर एक ऐसा बैल है, जो अतिशय घवल वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें वैसे-वैसे कितने ही बैल हूल जोतनेका काम करते थे । चन्द्रलोकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रहा करते थे । सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अप्सरा है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरको स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते समय नूपुरका रुक्षन शब्द करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष ( इन्द्र ) है, किन्तु रामके यहाँ अनेकों सहस्राक्ष चमर चलते थे । स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराज्यमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुयें विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिस तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अधरोष्ठका पान करके अयोध्याके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी मर्यादा देखी थी ( यानी वह अपनी सीमाके बाहर जाता नहीं देखा गया ), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी मर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर चढ़कर इघर-उघर धूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राजमें सारे पुरवासी और देशवासी हाथियोंपर सबार होकर धूमते-फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार चूमते थे, किन्तु रामके राजमें स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन-रातमें अनेकों बार चूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छोड़ते हुए लोग फांग खेलते दे, किन्तु रामके राजमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेला करते थे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुप्रमेय और नाममात्र सुननेसे ही कल्पणदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्थे पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नको

राजनीति विस्तरेण शिक्षयामास सादरम् । शृणु वत्स कुशाद्य त्वं यूयं सर्वे लग्नादिकाः ॥ २ ॥  
 शृणुतात्र स्वस्थेचित्ता राजनीति वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥  
 वैकुण्ठं शृणु तस्मात्त्वं सावधानमना भव । अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेणा चिरजीविना ॥ ४ ॥  
 नातिकामी न वै क्रोधी राजा स सुखमर्हति । परदाररतिस्त्याज्य । सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥  
 सत्यं शौचं दया क्षातिरङ्गं मधुरं वचः । द्विजगोयनिसङ्घक्तिः समैते शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥  
 निद्रालस्यं मद्यपानं द्यूतं वारांगनारतिः । अतिक्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥  
 पुत्रवत्पालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भूषि । पष्टांशः करभारत्र राजा ग्राह्यः सदैव हि ॥ ८ ॥  
 ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । परराष्ट्रे सदा दृता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥  
 पञ्च पंचाध्वा द्वौ द्वौ प्रेषणीया नृपेण हि । न विश्वसेत्पारकीयजने दूते नृपोत्तमः ॥ १० ॥  
 दण्डो भेदस्तथा साम दानं कालोचितं चरेत् । स्वकार्यं साधयेद्युक्त्या काले प्राप्तं नृपोत्तमः ॥ ११ ॥  
 मनसा चितितं कार्यं कथनीयं न कस्यचित् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मंत्रिजनानपि ॥ १२ ॥  
 मासे मासे स्वकोशस्य परामर्शो नृपोत्तमैः । गृहणीयः सर्वदैव विश्वसेत्सेवकेषु न ॥ १३ ॥  
 वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकारस्य नृपोत्तमैः । परिखानां परामर्शः कार्यो मन्त्रिजनैः सह ॥ १४ ॥  
 चतुर्मासेषु शस्त्राणां मार्गणीयां पार्थिवोत्तमः । परामर्शः सदा कोष्ठागारादीनां प्रकारयेत् ॥ १५ ॥  
 पक्षे पक्षे वारणानां तुरंगाणां तथाऽष्टमिः । दिवमैर्मासिमात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥ १६ ॥  
 परामर्शः सदा कार्यः पिकादीनां त्रिभिर्दिनैः । सीमाचारजनानां च षण्मासैश्च नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥  
 परामर्शः सदा कार्यस्तथा जानपदस्य च । मासे मासे स्वसैन्यस्य वापीनामयनेन हि ॥ १८ ॥

बुलाया ॥ १ ॥ उन्हें विरतारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा भरतादिक  
 भ्राताओं ! तुम लोग स्वस्थचित्त होकर मुनो । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे वैकुण्ठ  
 छले जानेपर तुम राजा होओगे । इसलिये तुम विशेष रीतिसे मेरी शिक्षाको सुन रखो । जिस राजाको  
 चिरकाल सक इस संसारमें जीवित रहना हो, उसे चाहिये कि वह ज्ञूठ कभी न बोले ॥ २-४ ॥ जो राजा  
 कामो और क्रोधी नहीं होता, वही सुखसे रह सकता है । राजाको चाहिये कि वह दूसरेको स्त्रीसे प्रेम न  
 करे ॥ ५ ॥ सत्य, शीक ( पवित्रता ), दया, अमा, स्वभावमें कोमलता, मीठी बातें, ब्राह्मण-गौ सन्त  
 तथा सउजनोंपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥ निद्रा, आलस्य,  
 मद्यपान, द्यूत ( जुआ ), वेश्याओंसे प्रेम, ज्यादा खेल-कूद और अधिक शिकार खेलना, ये राजाके सात  
 दोष हैं ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाका पुत्रके समान पालन करे और उससे आयका वष्टांश  
 कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह कर्तव्य है कि वह गुप्तचरों द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम  
 करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति-विधि देखनेके लिए वेष बदलकर पाँच-पाँच या दो-दो दूत  
 नियुक्त कर दे । अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० ॥ समय-समयपर  
 जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना  
 कार्य साधन करे ॥ ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें सोचे, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे ।  
 नौकरोंके विश्वासपर राज-काज न छोड़ दे ॥ १२ ॥ महीने-महीने अपने खजानेकी देख-भाल स्वयं करे ।  
 नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-सालभर बाद अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी लाई  
 आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार-चार महीनेमें अपने शास्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण  
 करता रहे ॥ १५ ॥ एक पक्षमें या आठवें रोज हाथो-घोड़े आदि देखे । महीने-महीने कपड़ोंको देख-  
 रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पाले हुए सुगंगो-कोयल आदि चिड़ियोंको देखे और हर  
 छठवें महीने अपनी सीमापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वदा अपने राजमें रहनेवाले  
 मनुष्योंपर ध्यान रखें । महीने महीने सेनाकी देखभाल करे और छठवें महीने राज्यके कुएं-बाबली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥  
 वर्षे वर्षे समुद्योगः घण्मासैरथवा त्रिभिः । मासैर्नृषेण स्वे राष्ट्रे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥  
 देवानां त्राह्णानां च गुरुणां यतिनां तथा । असंतोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥  
 द्रव्यादायं सदा पश्येत्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थीशैर्वर्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥  
 तृतीयांशेन वा कार्यस्त्वधीशेन कदापि न । इष्टाः कार्या मन्त्रिणश्च नातिकोपं समाचरेत् ॥२३॥  
 नातिमान्या मन्त्रिणश्च वर्धनीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राजा दुर्गपालास्तथैव च ॥२४॥  
 आकृताणां पद्मणानां दुर्गाणां गिरिजासिनाम् । अरण्यवासिनां सिंधावुपद्रीपनिवासिनाम् ॥२५॥  
 सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवासिनाम् । वर्णान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥  
 द्वीपे द्वीपे पृथग्वर्षवासिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यशारैः पक्षातरेण हि ॥२७॥  
 परराष्ट्रादपुष्टरूपैः काषायांवरधारिभिः । अवधृतादिवेष्टश्च तथा कार्पटिकोपमैः ॥२८॥  
 वणिग्रूपधरैदूतैर्वृत्तं वेद्यं नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिषाः सर्वेऽऽदेऽऽदेऽकार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥  
 एक एव चिरं राजा न स्थाप्यः सेवकः क्वचित् । परसैन्यानि वेद्यानि द्रष्टव्यं स्वबलं सदा ॥३०॥  
 परराष्ट्रागतो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्ठश्चेनैव दण्डयः स परदूतं न शिखयेत् ॥३१॥  
 परदूतो मोचनीयः सम्मानेन नृपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिखणीया मुहुमुहुः ॥३२॥  
 परदूतः कथं मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अद्यारम्य सुक्षमदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥  
 अग्रेमरं पार्श्वगौ च पथाङ्गागस्य रक्षकम् । सेनापतिं मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥  
 सूतं चामरहस्तं च दूतं निकटवर्तिनम् । दानमानैस्तोपयेत् सदा राजा सुवुदिना ॥३५॥  
 देशं कालं बलं कोशं निजोत्साहं नृपोत्तमैः । आदौ बुद्ध्या निरीक्ष्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने-महीने बगीचोंमें स्वयं जाकर देखभाल करे या मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥  
 साल-साल भर छाद, छुटें अथवा तीसरे महीने सेनाके साथ-साथ राजा अपने राज्यमें दौरा करे । इस बातका सदा ध्यान रखें कि देवताओं, आहृणों, यतियों तथा गुरुजनोंमें किसी प्रकारका असन्तोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देखे और आयका चतुर्थीशमात्र व्यय करे । किसी विकट समस्याके आ जानेपर आयका तृतीयांश खर्च करे, किन्तु आयका आघा खर्च कभी भी न होने पाये ।  
 मन्त्रियोंको सदा प्रसन्न रखें । न विशेष त्रोष करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रखें । दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विरोध न करे ॥ २२-२४ ॥ खानोंके पास रहनेवाले, राजधानासे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा पर्वतनिवासी, जंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले, समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंकी प्रत्येक पक्षमें राजा देख-भाल करता रहे ॥ २५-२७ ॥ गुप्तरूपधारी, संन्यासीवेषधारी, अवधूत, वणिक् तथा नागाका वेश बनाकर दूसरेके राजमें धूमनेवाले गुप्तचरोंसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे । उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाको यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको उशादा दिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे । दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना संन्यवल बरावर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे । दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है । यदि दूसरे देशका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे । अपने सीमाप्रांतमें रहनेवाले निजी दूतोंको बरावर शिक्षा देता रहे । यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१-३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों या पीछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति, मंत्री, अपने प्रतिनिधि, सारथी, चमर हुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंको दान-मानसे प्रसन्न रखें ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,

निजमित्रा नृपाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृपाः । सुहृदां सुहृदश्चापि मित्रमित्रान्परीक्षयेत् ॥३७॥  
 निजमित्रबलं दृष्टा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदां चापि स्वसुहृत्सुहृदां बलम् ॥३८॥  
 आदौ नृपैः परीक्षयाथ रिपोश्चैव निरीक्षयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पारकाया नृपाश्च के ॥३९॥  
 सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निरीक्षयेत् । द्रष्टव्या रिपवः स्वीया रिपूणां रिपवस्तया ॥४०॥  
 दृष्टा रिपूणां रिपुभिः कार्या राजा हि मैत्रिकी । परस्य शत्रुः पाल्यो न पाल्यश्चेत् पराक्षयेत् ॥४१॥  
 पाल्यं शत्रुबलं दृष्टा शत्रुमित्रबलं तथा । पाल्यं शत्रुसुहृत्सैन्यं दृष्टा पाल्यं सुरक्षयेत् ॥४२॥  
 परराष्ट्रे चारनेत्रैर्नेत्रो दुर्गाणि पर्वताः । अरण्यानि दुष्टमार्गाश्चोरमार्गा जलाशयाः ॥४३॥  
 ज्ञातव्याः स्वपुरे पूर्वमुद्योगश्च ततश्चरेत् । परराष्ट्रेऽपि बुद्ध्या हि गन्तव्य पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥  
 यत्राग्रे गमनं स्वीयं केषां वाच्यं न तत्कदा । पूर्वे गन्तुं निजेच्छा चेन्निक्षिपेदुत्तरे घ्वजम् ॥४५॥  
 उत्ताराभिमुखः कार्यः सेनावासो नृपेण हि । अग्रेसर चोत्तरं हि नृपेण ज्ञाप्य सादरम् ॥४६॥  
 क्रोशाद्वान्ते गतं दृष्टा गच्छेत्पूर्वे स्वयं नृपः । एवं घ्वजः कदा याम्ये पश्चिमेवा परागिदशि ॥४७॥  
 परराष्ट्रे रोपणीयश्चारंवृत्तं तु वेदयेत् । स्वराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्यां नृपोत्तमैः ॥४८॥  
 रोपणीयो घ्वजः प्रोच्चैः सेनावासस्तथाचरेत् । यन्त्राणामायुधानां च वाहनानां बलस्य च ॥४९॥  
 राजा वृद्धिः सदा कार्यो कार्यो धान्यादिमंग्रहः । राष्ट्रे दुर्गे पुरे स्त्रीये पत्तने निर्जले बने ॥५०॥  
 जलाशयाः शुभाः कार्याः कृत्वा कोशव्ययं बहु । प्राकागर्थेऽथ दुर्गर्थेऽथ जलार्थं योव्ययः कृत ॥५१॥  
 न ज्ञेयः स व्ययो राजा ज्ञेयं रक्षणमात्मनः । धमार्थं योव्ययो जातः सोऽग्रे ज्ञेयस्तु संग्रहः ॥५२॥  
 आपदर्थे धनं रक्षेदारात्रक्षेद्वनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेदारैरपि धनैरपि ॥५३॥  
 पादमुदामितं द्रव्यं राजा दायो निरीक्षयेत् । नावलोक्यं यथाकालं व्यये तत्कोटिसंमितम् ॥५४॥

बल, कोश और अपना उत्साह देखकर अच्छी तरह विचारे और शत्रुके भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण करे । फिर अपना बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने सुहृदके मुहृदोंका बल देख हर राजका चाहिये कि अपने शत्रुका बलाबल देखे । तब इस बातपर विचार करे कि कौन राजे अपना साथ देनेवाले हैं और कौन शत्रुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चाहिए कि शत्रुओंके शत्रुसे मित्रता करे । दूसरे के शत्रुकी पहले तो रक्षा हो न करे और यदि रक्षा करे भी तो खूब अच्छी तरह देख-भालकर ॥ ४१ ॥ यदि शत्रुकी सेना किसी प्रकार अपने पास आ ही जाय तो उसकी रक्षा करे । शत्रुके मित्रकी सेना एवं शत्रुके सुहृदका सेनाकी भी रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरे के राष्ट्रमें गुप्तचरोंको नियुक्त करके वहाँके पर्वतों, नदियों, वनों, दुष्टोंके रास्तों, गुप्तचरोंके रास्तों तथा जलाशय आदिपर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले । पहले अपने राज्यकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करके ही किसी दूसरे के राज्यपर चढ़ाई करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह सच्ची बात कभी किसीको भी न बताये । यदि पूर्वको ओर यात्रा करनी हो तो उत्तरकी तरफ झण्डा भेजे और सेनाके ठहरनेका शिविर आदि भी उत्तरकी ओर ही बनवाये । सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु आधा कोस आगे जाकर पूर्वकी ओर मुड़कर राजाको जहाँ जाना हो, वहाँ जाय । इसी तरह कभी झण्डेको दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रमें झण्डेको गाढ़कर गुप्तचरों द्वारा वहाँका हाल-चाल मालूम करे । अपने राज्यमें उसी ओर झण्डा गाढ़, जिस ओर अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ शिविर आदि भी उसी तरफ बनवाये । राजाको चाहिये कि अपने यहाँ तोप-बन्दूक आदि यन्त्र तथा अन्य आयुध, वाहन और लेनाको सदा बढ़ाता हुआ बन-घान्य आदिका भी भली प्रकार संग्रह करता रहे । अपने राष्ट्र, किलाओं, बाजारों, अपनी खास राजधानी तथा निर्जल वनोंमें प्रचुर बन खच्च करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे । जो बन आस-पासकी खाई, किले, जलाशय आदिमें खच्च हो, उसे खच्च न समझे । उसे तो अपनी रक्षाका सावन माने । धर्मकार्यमें जो व्यय हो, उसे आगेके लिए संप्रहृ माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे बचनेके लिए बनकी रक्षा करे, बनसे भी श्रेष्ठ समझकर स्त्रीकी रक्षा-

न सेनारहितं राजा गतव्यं स्त्रपुराद्विहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी क्वापि संविशेत् ॥५६॥  
 नैकाकी क्वापि वै स्थेयं न पद्धयां विचरेद्विहिः । न गच्छेत्परगेहेषु वारं वारं नृपोत्तमः ॥५७॥  
 न विश्वसेद्द्वारपालं जलद् रजक तथा । धौतवस्त्राणि बुद्धया हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५८॥  
 तां बुलबीटिका ग्राह्यात्तरा द्वष्टा परापिता । परदत्त जलं ग्राह्यं राजाऽक्षिभ्यां विलोक्य च ॥५९॥  
 फलानि परदत्तानि परीक्षेत्पार्थिवोत्तमः । दूरस्थितैनृपैर्भाव्यं न तेषां निकटे चरेत् ॥६०॥  
 सभां राजा प्रगतव्यं द्विवारं त्वेकदाऽथवा । अध्यामं सभामध्ये स्थेयं राजा न वै चिरम् ॥६१॥  
 स्वद्वेष्टा नगराद्राष्ट्राद्विहिः कायों नृपोत्तमैः । पादौ प्रसार्य न स्थेयं सभायां नृपसत्तमैः ॥६२॥  
 न बाहुवन्धनं जान्वोः कृत्वा स्थेयं नृपोत्तमैः । नातिस्मित कदा कार्यं सभाया पार्थिवोत्तमैः ॥६३॥  
 सभायां समलैवस्त्रैर्न गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायका बन्दिनो नटाः ॥६४॥  
 पण्डिता धर्मशास्त्रजास्तार्किका वैदिका द्विजाः । सदा पाल्या नृपेणैते दानमानैरहनिंशम् ॥६५॥  
 न विश्वसेन्नापिताय तोपयेत्तं धनादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्यं दण्डयेत्त वृथा प्रजाः ॥६६॥  
 क्लेशयुक्ताः प्रजाः सर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितैर्दूतैः सर्वैः ते पार्थिवोत्तमाः ॥६७॥  
 मुक्तकं चुक्तवन्धनाश विमुक्तकटिवन्धनाः । सम्यग्वद्या न्यस्तशस्त्राः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६८॥  
 राजाज्ञया नृपं नत्वाऽसने चोपविशेषक्रमात् । नृपैर्माण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽथवा ॥६९॥  
 संभीत्य हस्तौ पादौ च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्राजपुरतो न जूम्भेत्त जुवेन्मुहुः ॥७०॥  
 तथा न ष्ट्रीवनं कार्यं सर्वैर्माण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनीयो नृपो मुहुः ॥७१॥  
 नात्युच्चैः संवदेद्राजसाभिष्ठे पार्थिवेतरैः । कंचुकेन विना राजा सभायां नोपसंविशेत् ॥७२॥

करे और स्त्री तथा घनसे भी बढ़कर अपनो रक्षा करनी चाहिए ॥५३॥ अपनी आयमें से एक चवन्नो भी किसीसे पाना हो तो लेकर छोड़े । किन्तु समय पड़नेपर यदि करोड़ों के खचंकी आवश्यकता पड़ जाय तो खचं कर दे, रुपयेका मुँह न देखे । अपने नगरके बाहर बिना सेनाके कहीं न जाय । अपने ग्राममें भी अकेला न घूमें-फिरे और न कहीं अकेला बैठे ॥५४॥ ५५॥ कहीं अकेला न ठहरे, न पैदल चले और बार बार किसीके घर न जाय । द्वारपाल, पानी देनेवाले सेवक और घोबो इनपर कभी भी विश्वास न करे । कपड़ा बुलकर आये तो राजाको चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छा तरह उसकी परीक्षा करके ही पहने । पानका बीड़ा खानेको आये तो पहले उसे किसी दूसरेकी खिलाकर स्वयं दूसरा बीड़ा खाय । पानी पोनेको आये तो अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके अपना आँखों देखकर पिये ॥५६-५८॥ दूसरेके दिये फलोंकी भी भली भाँति परीक्षा कर ले । जो राजे मिलने आये, उनसे दूरसे ही बातचीत करे । न स्वयं उनके पास जाय और न उन्हें अपने पास आने दे । प्रतिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आधे पहरसे अधिक वहाँ न ठहरे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी पैर फैलाकर न बैठे और न घुटनोंको सिकोड़कर हां बैठा करे । राजाको चाहिये कि सभामें कभी ज्यादा न हैंसे ॥५९-६२॥ सभामें कभी मैले कपड़े पहिनकर न जाय । गणिका, गणक ( उपोतिष्ठो ), वैद्य, गायक, बन्दीजन, नट, पंडित, धर्मशास्त्री, संभिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान-मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥६३॥ ६४॥ नाईपर कभी भा विश्वास न करे । उसे हमेशा रुपये-पैसे देकर प्रसन्न रखें । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ प्रजाको व्यर्थं दंड न दे ॥६५॥ इस बातका सदा ध्यान रखें कि प्रजाके लोगोंको किसी प्रकारका क्लेश न होने पाये । राजद्वारपर रहनेवाले दूतोंको चाहिये कि जो राजे मिलने आये, उनके लबादे उत्तरवाकर परतले खुलवा दे । जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उनके पास हों, उन्हें अलग रखवा दे । फिर अच्छी तरह देख-भालकर राजासे मिलनेको भीतर आने दे ॥६६॥ ६७॥ जो कोई राजासे मिलने जाय, वह राजाको प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो माण्डलिक राजे हों, उनके लिये राजाके सामने कुर्सी डाली जाय । वे राजाके सामने हाथ-पैर समेटकर राजाकी ओर निहारते हुए बैठें । राजाके सामने न हैंसे, न जम्हाई ले और न बार-बार छीके ॥६८॥ न बार-बार

मृगयायां वारणेद्रो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नांतर्वित्ती मृगी राजा हन्तव्या विपिने कदा ॥७२॥  
 न निद्रितश्च हन्तव्यः पित्रनीरं वनेचरः । तथा स्वशरणं प्राप्तो विश्वस्तो वा कदाचन ॥७३॥  
 क्रीडासत्त्वो वने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । सीमाचारानष्टदिन्जु संस्थाप्य मृगयां चरेत् ॥७४॥  
 रात्रौ मित्रेण सहितस्तृणीमेव नृपोत्तमः । आत्मानं कंवलेनैव सनाच्छाय वहिश्वरेत् ॥७५॥  
 पुरद्वारस्थितानां च द्वार्गलादि निरीक्षयेत् । जनानां भाषितं सर्वं श्रोतव्यं हि शुभाशुभम् ॥७६॥  
 एवं स्वयं प्रगंतव्यमथवा प्रेपयेद्द्वितम् । रात्रौ रात्रौ पुरे वुद्रया श्रोतव्यं सकलेरितम् ॥७७॥  
 न कार्यः कलहो गेहे गृहकृत्यं सभास्थितैः । न वाच्यमणुमात्रं हि न तूणीं षट्वनं चरेत् ॥७८॥  
 न कंदूयेच्च शिरो राजा सभायां स्वकरेण वै । श्रुत्वा रित्णामुक्तकर्षं न त्यजेद्वैर्यमात्मनः ॥७९॥  
 पलायनं न संग्रामाद्राजा कार्यं कदाचन । न रिष्णां निजा पृष्ठिर्दर्शनीया कदाचन ॥८०॥  
 नोदुपेन तरेद्राजा नदीं मुख्यां कदापि हि । सेतुं विना नदी राजा नोत्तीर्या हि कदाचन ॥८१॥  
 नोत्तीर्या नौकया राजा नदी कापि सुतादिभिः । कार्यं नैव जलकीडा नौकायां स्वसुतैः सह ॥८२॥  
 न स्थेयं हृद्वमध्ये हि तथा चै चतुर्थे । न ताडयेन्निजां पत्नीं तथा पुत्रं न ताडयेत् ॥८३॥  
 स्वमुद्राङ्कितपत्रेण विना केपां पुराद्विः । न निर्गमः प्रकर्तव्यस्तथैवागमनं नृणाम् ॥८४॥  
 कर्तुमाज्ञापनीयं न मुद्रापत्राकितं विना । नारण्ये लुण्ठनं चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥  
 न कार्यं मुण्डनं राजा विना तीर्थं कदाचन । पर्वकाले गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥  
 न पादेन स्पृशेच्चापं न पादेन शरं स्पृशेत् । नातिक्रीडेत्यारिकाभिद्विजैर्वादं न वै चरेत् ॥८७॥  
 न तिष्ठेद्वारदेशे वै न स्थातव्यं नृपैर्भुवि । राजा मार्गं न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥  
 तोयानयनमार्गं हि स्त्रीणां स्तेयं नृपेण न । धान्यं समर्थं कर्तुं वै दण्डयेद्वयवसायिनः ॥८९॥

युके । जब राजाके सामने जाय और लौटे, तब वरावर राजाको प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजाके सामने जोर-जोरसे बात न करे । राजाको चाहिए कि वह सभामें कवच धारण किये विना न बैठे । जब शिकार खेलने जाय तो वहाँ हाथी तथा गमिणी मृगीका शिकार कभी न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी पो रहा हो, जो सोया हो और जो भाग करके अपनी शरण आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे । शिकार खेलने जाय, तब आठों दिशाओंमें कुछ लोगोंको नियुक्त करके शिकार खेलें । रात्रिके समय अपने किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलसे बाहर निकले ॥ ७३-७५ ॥ पुरद्वारके फाटकोंमें लगे हुए अर्गल-दण्ड आदि देखे । रात्रिमें लोग जो अटपटी बातें कर रहे हों, उन्हें सावधान मनसे सुने । इस प्रकार प्रत्येक रात्रिको स्वयं जाय या अपने विश्वासपात्र मित्रको भेज दिया करे, जो हर रात्रिमें लोगोंकी बातें सुनता रहे । घरमें लडाई-झगड़ा न करे । सभामें कोई घरेलू काम-काज न करे । घरसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात भी न करे । सभामें चुपचाप बैठे और थूके नहीं । सभामें सिर न खुजलावे । शत्रुका उत्कर्ष सुनकर धैर्य न छोड़े । राजाको चाहिए कि कभी संग्रामभूमिसे भागे नहीं और शत्रुहो कभी अपनी पीठ न दिखाये ॥ ७६-७० ॥ राजाको चाहिए कि कभी अपने दालदब्बोंके साथ नौकापर चढ़कर नदी न पार करे । अपने लड़कोंके साथ नौकापर बैठकर जलकीडा न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ बाजारमें या किसी चौराहेपर न बैठे । अपनी स्त्री और पुत्रको न घमकाये । राज्यका मुहर लगा पत्र देकर लोगोंको अपने नगरसे बाहर जाने दे । यही नियम नगरके भीतर आनेवालोंके लिए भी रखें । वनों तथा रास्तोंमें चोरी करनेवालोंको ऐसा मौका न मिलने पाये, जिससे वे चोरी कर सकें ॥ ७३-७५ ॥ तीर्थके सिवाय किसी दूसरी जगह राजा मुण्डन न कराये । कोई पर्वकाल आ पहुँचे तो घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थको चला जाय । घनुष और बाणको पैरसे न छुए । चौपड़-पचीसी आदि न खेलें । ब्राह्मणोंके साथ ज्यादा वाद-विवाद न करे । अपने द्वारपर तथा खालीं जमोनपर न बैठे । रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे ॥ ७६-७८ ॥ जिस रास्तेसे स्त्रियां पानी भरने जाती-आती हों, वहाँ कभी न बैठे । अन्नोंको सस्ते भासूसे

दृष्टा किंचिन्महर्घं तु स्वीयराष्ट्रे हि भूभृता । न्यूनः कार्यः करमारः किंचिदेशसुखाय च ॥१०॥  
 नातिशाल्यं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेजजनान् । द्रव्यं गृहीत्वा राजा हि मोचनीया न तस्फराः ॥११॥  
 मुखं दृष्टा न वै कार्ये राजा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकाशयेत् ॥१२॥  
 अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त्त आकारणीयो हि निकटे कृपया नृपैः ॥१३॥  
 आत्मानं मानयेन्नैव वैद्यं च गणक नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥१४॥  
 यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं मक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥१५॥  
 न मादकं वस्तु सेव्यं न कुच्छ्वादिकमाचरेत् । न यात्रा स्वपदा कार्या सप्तद्वीपाधिपेन हि ॥१६॥  
 फलाहारश्च कर्तव्यो राजा ह्येकादशीदिने । निर्जलश्रोपवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥१७॥  
 येन यद्याचितं राजे भूसुरेणार्पयेच्च तत् । तस्मै विप्राय राजा हि नृपा भूसुरदेवताः ॥१८॥  
 उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधात्सुरक्षिताः । निजाज्ञाभंगतां दृष्टा ज्ञेयं स्वीयं हृतं शिरः ॥१९॥  
 स्वीयदृतापमानो यः स स्वीयश्चित्येन्नृपः । स्वीयदृतस्य सम्मानो राजा ज्ञेयः स आत्मनः ॥२०॥  
 एवं कुश मरा प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मरा यद्विक्षयते त्वं तथा कुरु ॥२१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे राजनीतिशिक्षणं  
नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

### सप्तदशः सर्गः

( कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर )  
श्रीरामदास उवाच

एकदा कुशकन्याया हेमायाश्च स्वयंवरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥  
 समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपांतरस्थिताः । समाजम्मुः सुवेषाश्च समायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

बिकवानेके लिए बनियोंको दण्ड देता रहे । यदि अपने राष्ट्रमें मैंहरी बढ़ जाय तो राजाको चाहिये कि देशको  
 सुखी रखनेके लिए करमार कुछ हत्का करदे ॥ ८६ ॥ ९० ॥ कभी अतिशाठता न करे और रुपये लेकर चोरोंकी  
 न छोड़े । राजाको यह उचित है कि मुँहदेखा न्याय न करे । न्याय करनेका भार दूसरोंके ऊपर न ढाल-  
 कर स्वयं करे । यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके  
 सारे दुःख आदरपूर्वक सुने । दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घृणा न करके उसे अपने पास बुलाये और  
 उसको दुःखमयी कहानी सुने । किसी तरहका घमण्ड न करे । वैद्य, उरोतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर,  
 गायक और धर्मात्मा इनका आदर करे । यज्ञ, दान, जप, होम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण  
 आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१-९५ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल  
 फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे । राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो माँगे, सो  
 दे । क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है । क्रोधवश जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई  
 उत्साहका समय आनेपर उन्हें छोड़ दे । यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया  
 समझे । अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने । हे कुश !  
 इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी । रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जैसा करता हूँ वैसे ही  
 तुम भी करते चलो ॥ ९६-१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित ज्योत्स्ना  
 भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे उत्तराद्वै षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—रामने एक समय कुशको पुत्री हेमाका स्वयंवर बड़े धूमधामके साथ ठाना ।  
 उसमें हीप-द्वीपान्तरके अनेक राजे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

यथुदेवाः सगन्धवीं मुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥

तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुद्य शिखिकायां तु रुक्ममध्यां वरानना ॥ ४ ॥  
 नवरत्नमयीं मालां विभ्रती सा स्वयम्बरा । ददर्श नृपतीनसर्वाभृपुत्रान्सविस्तरम् ॥ ५ ॥  
 तद्भ्रूचापविनिर्मुक्तैस्तत्कटाक्षपत्रिभिः । संभिक्षास्ते नृपाः सर्वे के वर्यं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्तिनाथसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशात्मजाम् ॥ ७ ॥  
 दृष्ट्वा कार्यान्तरव्यग्रान्नामादीन्वेगवत्तरः । मोहनाख्येण सकलान्वीरान् कृत्वातिमोहितान् ॥ ८ ॥  
 रथे निवेश्य तां हेमां हेमाभां वेगवत्तरः । चित्रांगदो वहिर्गत्वा क्रोशमात्रे स्थितोऽभवत् ॥ ९ ॥  
 कि तृणीं चौरवन्नेया मयेयं कुशवालिका । इति निश्चित्य मेधावी तस्थौ चित्रांगदो महान् ॥ १० ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे पुर्या हाहाकारो महानभूत् । नीता हेमा चोग्रवाहोः पुत्रेणातिवलीयसा ॥ ११ ॥  
 नृपाः सर्वे समुत्तस्युः सभायां खिन्नमानसाः । उपसंहरिते तेन मोहनाख्येऽतिसम्भ्रमात् ॥ १२ ॥  
 चित्रांगदेन योद्धुं ते स्वसैन्यैर्निर्युनृपाः । वहिः साकेतनगरात् क्रोधादारक्तलोचनाः ॥ १३ ॥  
 तृष्णीमेवोग्रवाहुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तद्रथं पार्थिवोत्तमाः ॥ १४ ॥  
 संवेष्ट्य कोटिशः शस्त्रैर्वर्षुश्रोग्रवाहुजस् । तदा चित्रांगदो वीरो वायज्याख्येण पार्थिवान् ॥ १५ ॥  
 गगने भ्रामयामास वाहनाद्यैः समन्वितान् । ततो रामाज्ञया सप्त लवाद्या निर्ययुः पुरात् ॥ १६ ॥  
 उत्सवार्थं समायाताः स्वस्वराज्यात् वालकाः । अङ्गदाद्या निजैः सैन्यैः सलवाः सङ्गरं ययुः ॥ १७ ॥  
 तदा चभूव तुमुलं युद्ध तलोमहर्षणम् । चित्रांगदं वर्षुस्ते नानाशस्त्राणि राघवाः ॥ १८ ॥  
 चित्रांगदः स्वधाणीघैर्भिन्न्वा शस्त्राणि तानि हि । निजवाणीयूपकेतुं चकार विरथं क्षणात् ॥ १९ ॥  
 तथा चकार विरथं सुवाहुं पुष्करं तथा । तक्षकं चित्रकेतुं च हङ्गदं वलवत्तरः ॥ २० ॥

आसनोपर बैठे । यह बात राजाओं ही तक नहीं थी, बल्कि देवता, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, विद्याधर, नाग, किन्नर भी आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णकी पालकीमें बैठो सुमुखी सुन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नोंसे बनी माला लिये आ पहुँचो । सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने बहाँपर बैठे हुए समस्त राजाओं तथा राजपुत्रोंकी ओर ध्यानसे देखा ॥ १-५ ॥ हेमाकी भौंहरुपी घनुषसे छूटे हुए कटाक्ष-रुणीं बाणोंसे धायल होकर सबके सब राजे अपने आपको भूल गये । उनको यह भी जान न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अवन्तिदेशके राजा अग्रवाहुका पुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले भागा । उसने देखा कि राम आदि बड़े-बड़े अपने कर्मोंमें व्यस्त हैं । बस, उसने एक मोहनास्त्र छोड़ा । जिससे वहाँ निमन्त्रणमें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके समान तेजस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भगा ले गया और वहसि एक कोसकी दूरोपर जाकर रुका । उसने अपने मनमें सोचा कि चोरोंकी तरह हेमाको लेकर भाग जाना ठीक नहीं है । इसलिए वहाँ वह ठहर गया ॥ ६-१० ॥ उधर सारी पुरीमें यह हाहाकार मच गया कि राजा उग्रवाहुका पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके हारा मोहनास्त्रका संवरण हो जानेपर सब राजे होशमें आकर उठे और अपनी-अपनी सेना लेकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये अयोध्यासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ बहाँपर ही बैठा हुआ राजा उग्रवाहु अपने पुत्रका कौतुक देख रहा था । उसी समय सब राजे चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ चारों ओरसे घेरकर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब चित्रांगदने वायव्य अस्त्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा वाहनके साथ बाकाशमण्डलमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लव आदि सातों बेटे नगरसे निकल पड़े । उनके अतिरिक्त उत्सवमें आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर लड़नेको चल दिये । उस समय चित्रांगदके साथ रोगठे खड़े कर देनेवाला तुमुल युद्ध होने लगा । रथवंशके वे बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र खलाने लगे ॥ १४-१५ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार बचाते हुए चित्रांगदने अपने शस्त्रोंसे कणभरमें यूपकेतुका रथ अस्त कर डाला । उस बीर बालकने योड़ी ही देरमें सुवाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदको भी विरथ कर

तदृष्टा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तत्तपसः फलम् । लवश्चिच्छेद वाणीघैस्तद्बुद्धिं व्यमुच्चम् ॥२१॥  
 ततो लवः स्ववाणीघैरुग्रवा हुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तदृष्टा लवचेष्टितम् ॥२२॥  
 उग्रवाहुर्ययौ योद्धुं लवेन वेगवत्तरः । लवस्तमपि वाणीघैश्चकार विरथं क्षणात् ॥२३॥  
 उग्रवाहुस्तदा वीरोऽन्ये रथे चाहरोह सः । वर्ष निश्चितैर्वाणैर्मूर्च्छयामास तं लवम् ॥२४॥  
 लवं विमूर्च्छितं दृष्टा हाहाकारो महानभूत् । तदा यथौ कुशो योद्धुमुग्रवाहुनृपेण वै ॥२५॥  
 कुशमागतमाज्ञाय ह्यज्ञदायास्तदा पुनः । रथस्था युयुधुस्तेन उग्रवाहुनृपेण वै ॥२६॥  
 पुनस्तानज्ञदादीश्च चकार विरथान्तुपः । तदा कुशः स्ववाणीघैरुग्रवाहुं नृपं क्षणात् ॥२७॥  
 चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्षुकम् । उग्रवाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चकितस्तदा ॥२८॥  
 तं घृत्वा स कुशस्तोपादादयामास दुन्दुभीम् । अथोग्रवाहुं ससुतं निन्ये श्रीरामसन्निधिम् ॥२९॥  
 रामस्तं मोचयामास मत्वा तं सुहं वरम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽपिंतम् ॥३०॥  
 ददौ कुशाय प्रीत्या स पुरतः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकंकणमणिडतः ॥३१॥  
 तदा कुशो मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् । त्वया लब्धं कुतश्चेदं कङ्कणं वद मां मुने ॥३२॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्ररिपवो वत्स वहवः सागरेण हि ॥३३॥  
 कृताः स्वांतनिंवासाश्च तदाऽहं नाकपार्थितः । कृत्वा स्वचुलुकेऽधिंध तं पीतवाँछीलयैव हि ॥३४॥  
 ततो लुप्तां द्वीपयोर्हि मयदां मध्यवर्तिनीम् । दृष्टा पुनर्नकिषेन प्रार्थितो हतश्चनुणा ॥३५॥  
 मूत्रवत्सागरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽविधिनाऽपितं महां कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥  
 नानारत्नविचित्रं च रवितेजोविराजितम् । तद्रामायापितं पूर्वं भया तेन तवार्थितम् ॥३७॥

दिया । इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी तपस्याका है । यह विचार-कर लवने अपनी वाणवर्षसि चित्रांगदके उस उत्तम घनुषको काट डाला और इतनी शीघ्रतासे वाणवर्षा को कि चित्रांगद व्याकुल हो गया ॥ १६-२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रवाहु ( चित्रांगदका पिता ) स्वयं लवके साथ युद्ध करनेके लिये रणमें उत्तर पड़ा, किन्तु लवने थोड़ी ही देरमें उसका भी रथ छवस्त कर दिया । तब उग्रवाहु तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तीखे वाणोंको मारसे लवको मूर्छित कर दिया । उसे मूर्छित देखकर संग्रामभूमिमें हाहाकार मच गया । तभी उग्रवाहुसे युद्ध करनेके लिए रामका दूसरा पुत्र कुश भी आ पहुंचा । कुशको आया देखकर वे अज्ञद आदि रघुवंशी राजकुमार रथोंपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक उग्रवाहुसे युद्ध करने लगे । किन्तु उग्रवाहुने अपने युद्धकौशलसे थोड़ी ही देरमें अज्ञद आदि सभी राजकुमारोंके रथोंको नष्ट कर डाला । उधर अपने भ्राताओंपर प्रहार करते देखकर कुशने उग्रवाहुको क्षणभरमें विरथ कर दिया और उसका घनुष काट डाला । उग्रवाहु उस समय आश्रयके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३-२७ ॥ तब कुशने झटपट उन बाप-बेटोंको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजवा दी । चित्रांगद तथा उग्रवाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके सामने गये । वहाँ पहुंचनेपर उग्रवाहुको अपना मित्र समझ-कर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अगस्त्य ऋषिके समक्ष अगस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया । उस कङ्कणके पहिनेसे कुशकी शोभा और भी बढ़ गयी ॥ २८-३१ ॥ इसके बाद कुशने अगस्त्यऋषिसे कहा—हे मुने ! आपने यह कङ्कण कहाँ पाया था ? सो हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशकी बात सुनकर अगस्त्यने कहा—हे वत्स ! आजके बहुत समय पहले इन्द्रके बहुतेरे शत्रु समुद्रके भैतर वर बनाकर रहा करते थे । इन्द्रके प्रार्थना करनेपर मैने समुद्रको चुल्लूमें भरकर पी लिया । जब इन्द्रने अपने सारे शत्रुओंको मार डाला, तब दो द्वीपोंके मध्यकी सीमाको नष्ट देखकर इन्द्रने मुझसे समुद्रको फिर पूर्ववत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥ ३३-३५ ॥ तब मैने मूत्रके मार्गसे फिर समुद्रको सजीव करके बहा दिया । उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रस्तोंसे जटित तथा सूर्वके तेजकी नाईं तेजोमय यह कङ्कण मैने रामको दे-

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । लवस्य जीवनोपायं वद मामद्य मो मुने ॥३८॥  
 कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमूर्च्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवैः ॥३९॥  
 मूर्छितः पतितश्चास्ति रणे रिपुशरैर्हेतः । मुद्रलाश्रमतो वल्लयस्तदाऽहीताः शुभावहाः ॥४०॥  
 सौमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्रलाश्रमतः पुनः । महोपधी समानीय जीवयैनं लवं जवात् ॥४१॥  
 अथवा त्वं हनूमंतं प्रेष्यस्वाश्रमं मुने । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास तं कुशम् ॥४२॥  
 तावच्चद्रवचनं श्रुत्वा मुनेर्मारुतिना क्षणात् । समानीयाश्रमाद्ल्लीर्मुद्रलस्य तपोनिधेः ॥४३॥  
 ताभिस्तं जीवयामास लवं सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो तस्यैव च मुनेर्मुद्रलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥

मृतसंजीवनीवल्यादिका वल्लयोऽत्र निर्गताः । कथं ता हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥  
 प्रेषितोऽज्ञनिपुत्रः स तेन जाववता पुरा । अमुं मत्संशयं छिथि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥  
 श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य खगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकात्समानयत् ॥४७॥  
 तदा तत्कलशाद्वेगाद्विदुस्तत्रापत्पुरा । तद्वेतोर्मुद्रलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥  
 आसन् वल्लयश्च तस्यैव द्वाश्रमे हि द्विजोत्तम । नैता वेद शुभा कल्पीर्जीववान्स वनेचरः ॥४९॥  
 द्रोणाचलं त्वतस्तेन प्रेषितो वायुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्ठं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥  
 इदानीं शृणु शिष्य त्वं शुभां तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे ययुस्ते स्वपुरीं मुदा ॥५१॥  
 नत्वा मुनिं च रामादीस्तस्युः श्रीराघवाग्रतः । तता महोत्सवश्चासीत्पुरीं तल्लवदर्शनात् ॥५२॥  
 ततो दृष्टा लवं रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिङ्ग्य दृढं प्रेमगा परं तोपमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा—अब हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे लव जीवित हो जाय ॥ ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओंके अस्त्रोंसे धायल होकर रणभूमिमें पड़ा हुआ है । कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा—उस समय जब कि जनकपुरके मार्गमें राजाओंने भरत-को मूर्छित कर दिया था, तब मुद्रल ऋषिके आश्रमसे कल्पाणदायिनी लताएँ लक्षण द्वारा आयी थीं । उसी प्रकार आज तुम मुद्रलके आश्रमसे वह लता लाकर लवको भी जीवित कर लो ॥ ३९-४१ ॥ अथवा हनुमानजीको भेज दो । ये ही वह लता ले आयेंगे । मुनिकी बात सुनते ही हनुमानजी चल पड़े और थोड़ी ही देरमें मुद्रल-ऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रख दी और उन्हीं लताओंसे कुशने लक्षणमात्रमें सेना समेत लवको जीवित कर लिया । इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! वे मृतसञ्जीवनी लताएँ मुद्रल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं । किर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्षणकी मूर्छाके समय जाम्बवान्ने हनुमानजीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा—हे मुनीश्वर ! मेरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शंकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड़ स्वर्गसे चोंचमें अमृतकलश लेकर चले तो मुद्रल ऋषिके आश्रमपर जाते ही कलशमेंसे अमृतकी एक बूँद वहाँ गिर पड़ी । इसीलिए और ऋषिके सपोबलसे उसी स्थानपर वे मृतसञ्जीवनी वल्लरियाँ उग गयीं । बनचर जाम्बवान् इस स्थानकी लताओंकी जानते ही नहीं थे । इसी कारण हनुमानजीको द्रोणाचलपर भेजा था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसा तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे सावधान मनसे सुनो । उस औषधिसे जीवित लव आदि दीर लौटकर सहरे अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ रामकी सभामें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये । लवको देखने-से उस रोज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था । जब रामने देखा कि हनुमानजीके पुरुषाधर्मसे लव जीवित होकर

ततो रामो वायुजाय कंकणे रत्नमंडिते । ददौ परमसंतुष्टस्ताभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥  
 ततो लवाय श्रीरामस्त्वपरं कंकण वरम् । ददावगस्तिना दत्तं पूर्वं यद्रत्नमंडितम् ॥५५॥  
 लवस्तेनातिशुशुभे वरकंकणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्मसम्मवम् ॥५६॥  
 त्वया लवधं कुतश्चेदं कंकणं वद मां मुने । ततस्तद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह लवं मुदा ॥५७॥  
 एकदा दंडकारण्येऽहं स्नातुं हि गतः सरः । तस्मिन्स्नात्वा नित्यविविं कुत्वा तत्र स्थितः कणम् ॥५८॥  
 एतमिन्नंतरे तत्र खात्स्वर्गी समुपागतः । दिव्यं विमानमारुदः शतखीपरिवेष्टितः ॥५९॥  
 दिव्यमाल्यांवरधरो दिव्यगन्धादिच्छितः । स स्वर्गी खात्समायातो यावत्तावत्सरोवरात् ॥६०॥  
 शबं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि भयंकरम् । दुर्गन्धसहितं दुष्टं प्राप्तं तत्सरसस्तटम् ॥६१॥  
 अवरुद्ध विमानउयात्स स्वर्गी तच्छबं यथौ । छित्वा तच्छबमांसं वै भक्षयामास सादरम् ॥६२॥  
 ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुरोह सः । निमग्नं तच्छबं चापि पुनस्तमिन्सरोवरे ॥६३॥  
 स्वर्गिणं गतुकामं तं दृष्टाऽहं चातिविस्मितः । अब्रुवं मधुरं वाक्यं रे रे दिव्यस्वरूपघृकः ॥६४॥  
 क्षणं तिष्ठोत्तरं देहि कौतुकं ते भयेक्षितम् । ईदशस्ते शबाहारः कर्थं स्वर्गनिवासिनः ॥६५॥  
 इति मद्वचनं श्रुत्वा स स्वर्गी प्राह मां तदा । सम्यक् पृष्ठं त्वया ब्रह्मन् पृष्ठु सर्वं भयोद्यते ॥६६॥  
 सुदेवारुद्धो हि वैदर्भो नृपतिशाभवत्पुरा । तत्पुत्रौ श्वेतसुरथौ श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥  
 नैव दानं मया तस्मिन् जन्मन्यत्र कृतं कदा । स्वीयराज्यमदोऽद्वातः पापकर्मरतः सदा ॥६८॥  
 ततोऽपुत्री त्वहं राज्ये कुत्वा तं सुरथानुजम् । वार्धके तु वनं प्राप्तपस्तीवं समाचरम् ॥६९॥  
 एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्त्वहं स्वीयतपोबलात् ॥७०॥

सामने बैठे हैं तो प्रेमपूर्वक मायतिको छातीसे लगा लिया और बड़े प्रसन्न हुए ॥५२॥५३॥ इसके बाद रामने हनुमानजीको रत्नोंसे खचित दो कंकण दिये । जिन्हें पहननेसे हनुमानजी बहुत सुन्दर दीखने लगे । फिर रामजीने एक दूसरा कंकण जिसे अगस्त्यजीने दिया था, वह लवको दे दिया । उस बहुमूल्य कंकणको पहिननेसे लव भी अतिशय सुशोभित हुए । तब लवने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा—॥५४—५६॥ हे मुनिराज ! यह कंकण आपको कहाँ मिला था ? सो हमें बतलाइए । इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥५७॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया । वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि कर लेनेपर थोड़ी देरके लिए बैठ गया ॥५८॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्राणी संकड़ों स्त्रियोंसे घिरा हुया दिव्य विमानपर आरुद्ध होकर वहाँ आया ॥५९॥ वह दिव्य माल्य आदि धारण किये हुए दिव्य गत्वसे चर्चित था । उस स्वर्गीके आते ही सरोवरसे एक भयानक दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण शब निकलकर टटपर आ लगा ॥६०॥६१॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानसे उतरकर उस शबके पास पहुँचा और उसके मांसको उसके बड़े प्रेमसे खाया । फिर जल पिया और अपने विमानपर जा बैठा । उधर शब फिर ढूब गया । उस गमनोन्मुख स्वर्गीके पास पहुँचकर मैंने उससे कहा—हे दिव्यस्वरूपधारिन् ! थोड़ी देरके लिए रुककर मेरी बातोंका उत्तर देते जाओ । तुम्हारे इस कायंको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है । अच्छा, हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी तुम मुर्दा क्यों खाते हो ? ॥६२—६५॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया—हे ब्रह्मन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सुनो, मैं सब बतलाता हूँ पूर्वसमयमें विदर्भ देशके अविपत्ति सुदेव नामके एक राजा थे । उनके श्वेत और सुरथ नामके दो पुत्र थे । जिनमें श्वेत मैं था और राज्य भी मेरे ही हाथोंमें था ॥६६॥६७॥ उस जन्ममें राज्यमदसे मत्त होकर मैंने कोई दान नहीं किया । हमेशा पापकर्ममें रत रहा ॥६८॥ मेरे कोई सन्तति नहीं थी । इसलिए वृद्धावस्थामें अपने छोटे भाई सुरथको मैंने राज्यासनपर बिठा दिया और जंगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा । एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें ढूबको लगायी तो वहाँ ढूबकर मर गया । मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा । तपस्याके कलस्त्रूप वहाँ

तपसश्च फलेस्तत्र ममासन्सर्वमंपदः । अदृष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्ठः सुराधिपः ॥७१॥  
 वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नासीद्वक्षणार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥७२॥  
 इति मद्वचनं श्रुत्वा मामिद्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं त्वया भूमौ कृत राज्यमदन हि ॥७३॥  
 अदत्तं लभ्यते नैव नृप गुण्यैः कदेतरैः । अतस्त्वं प्रत्यहं गत्वा विमानेन सरोवरम् ॥७४॥  
 भक्ष्यस्त्र शब्दं पुष्टं मिष्टान्नैः पोषितं च यत् । चिरकालं भवेत्तत्ते क्षय यास्यति नैव तद् ॥७५॥  
 इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्ठश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथं चाहं प्राप्नुयां तद्वदस्त्र माम् ॥७६॥  
 इति मद्वचनं श्रुत्वा तदेद्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं वतेते हानमानुषम् ॥७७॥  
 विष्णवृद्धिनिषेधार्थमगस्तिः सुरयाचितः । यदा यास्यति पत्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ॥७८॥  
 सरस्यस्मिस्तदा स्नात्वा स्थितं पश्यसि तं मुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोयैः परिष्कृतम् ॥७९॥  
 तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य चिरं मुने ॥८०॥  
 अत्रागत्य शब्दाहारः क्रियते वं सदा मया । एतावत्कालवर्यं तत्र कश्चिन्मयेक्षितः ॥८१॥  
 मया दृष्टस्त्वमेवात्र वेद्यि त्वां कुम्भसंभवम् । अद्य त्वया तारितोऽह दानं स्वीकृतुम् ॥८२॥

## अगस्त्य उवाच

इत्यं स्वर्गी स मामुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मह्यं सादौ ततः स्वर्गं ययौ स्वर्गीं मुदा युतः ॥८३॥  
 तदारभ्य शब्दं तोयात्तद्विस्तन्न ययौ कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलाके यथासुखम् ॥८४॥  
 इति यत्कंकणं लब्धं मया लवं पुरा बने । अपितं राघवायेदं तेन तत्त्वापि तेऽपितम् ॥८५॥

## श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचः श्रुत्वा लवः प्रच्छ तं पुनः । किमयं दण्डकारण्यं तद्वभूव विजनं वद ॥८६॥

## अगस्त्य उवाच

इक्ष्वाकुवंशसंभूतोऽभून्नृपो विष्णदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति रूपातः पापकर्मरतः सदा ॥८७॥

सब चीजें तो विद्यमान थीं, लेकिन खानेके लिए कुछ नहीं था । तब मैने इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र ! यहाँ मेरे भोगनेके लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेके लिए कुछ भी नहो दीखता । बताइए, इस तरह मै बयोंकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरी बातको सुनकर मुक्त्वा तदे इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वश पृथ्वीपर कोई दान नहों किया था । बिना दिये कुछ भी नहीं मिलता । इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपूष्ट अपने शरीरको खा आया करा । वह बहुत दिनों तक नष्ट न होकर ज्योका त्यों बना रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी बात सुनकर मैने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गीय अस्त्र किस तरह प्राप्त होंगे ? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है । जब विष्णव पर्वतको वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जायें, तब तुम उसी सरोवरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥७६-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गीय अन्न मिलने लगेगा । अतएव इन्द्रके आज्ञानुसार मै बहुत दिनोंसे आकर यह शब्द खाया करता हूँ । इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझे कोई नहीं दिखाया पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हीं दीख रहे हो । इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य कृपि ही हो । आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया । अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दे दिये और प्रसन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया । तबसे वह शब्द उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें दिव्य अन्नोंको पाने लगा । हे लव ! मैने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे डाला है । श्रीरामदासने कहा—तब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस बनका दण्डक यह नाम क्यों पड़ा ? अगस्त्य कहने

एकदा स वनं यातो मृगयार्थं स्वसेनया । ततो दृष्टा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदुद्धुवे ॥८८॥  
 एकाकी हयमारुढो देशादेशान्तरं ययौ । एवं हि गच्छतस्तस्य मृगोऽहश्योऽभवतदा ॥८९॥  
 तनः सोऽतिरूपाकांतः प्रययौ वै जलाशयम् । तत्र पीत्वा जलं स्वच्छं स राजा सरसस्तटे ॥९०॥  
 अज्ञात्वा स्वगुरोश्चेति भृगोराश्रममाययौ । तत्र तातविहानां तामरजस्कां भृगोः सुताम् ॥९१॥  
 दृष्टा चन्द्राननां राजा सोऽभूत्कामविमोहितः । ततस्तां प्रार्थयामास रत्यर्थं साऽत्रवीनृपम् ॥९२॥  
 स्ववशा नृप नैवाहं ताताधानाऽस्मि सांप्रतम् । वहिर्भृंगुस्तव गुरुगतस्त्वां वेदूम्यहं नृपम् ॥९३॥  
 यदि मामिच्छसि त्वं हि तर्हि तं स्वगुरु भृगुम् । प्रार्थयित्वा भज सुखं मां पत्नीं त्वं विधाय च ॥९४॥  
 इत्युक्तोऽपि तया राजा दंडस्तां कामपीडितः । भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥  
 ततोऽरजस्का सा बाला दृष्टा तातं समागतम् । शोचन्ती सकलं वृत्तं श्रावयामास विहृला ॥९६॥  
 तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽखलौ कुत्वां जलं कुधा । अत्रवीत्स्वसुतां बालां सांत्वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥  
 देहेन सह दंडस्य राज्यं वै शतयोजनम् । भवत्वद्य क्षणादग्रधं मद्वाक्याच्च समंततः ॥९८॥  
 हीनोदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचरम् । इति तच्छापमाकर्ण्य तात सम्प्रार्थ्यं वालिका ॥९९॥  
 प्रार्थयामास शापस्य सवाऽधिं विनयान्विता । ततो भृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥  
 मुनिः काश्यास्त्वमूँ देशं तदाऽयं सजलो भवेत् । देशस्तथाऽत्र वासं हि करिष्यन्ति मुनोश्चराः ॥१०१॥  
 अरण्यं दंडहेतोहि जातं तस्मात्सदा नराः । अमुं देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमेव हि ॥१०२॥  
 यदा भविष्यत्यग्रेऽत्र रामागमनमुत्तमम् । भविष्यन्ति तदाऽग्रेऽत्र नानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥  
 रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः । रामक्षेत्रमिति सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥  
 मृनिरामप्रसादाच्च देशोऽयं पूर्ववत्पुनः । भविष्यत्युत्तमः पुण्यः सौख्यदश्च मनोरमः ॥१०५॥

लगे—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न दण्डक नामका एक बड़ा पापी राजा था । वह सदा पापकमम रत रहा करता था ॥ ८३-८७ ॥ एक बार वह शिकार खेलनेके लिए अपनी सेनाके साथ वनमें गया । वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना धोड़ा दोड़ाया । वह अकेला ही उस मृगके पीछे पीछे भागता हुआ देशान्तरम जा पहुंचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया । इसके बाद बहुत प्यासा वह राजा एक जलाशयके तटपर गया । वहाँ जल पिया, किन्तु उसे यह नहीं जात हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुंच गया हूँ । वहाँ भृगुकी कन्या थी । जिसको कि अभी रजोवर्म नहीं हुआ था । उस चन्द्रमाके सहश मुखबाली ( चन्द्रानना ) कन्याको देखकर राजा कामभोहित हो गया और उसके समोप जाकर रतिके लिए प्रार्थना की । कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । इस समय मेरे ऊपर पितम्का अधिकार है और भृगु ( मेरे पिता ) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं । मैं आपको जानती हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझे चाहत हों तो अपने गुरु ( भृगु ) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके साथ भोग करें । उसके ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हठात उसके साथ भोग करके अपनी नगरीको लौट गया । इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विलाप करती हुई उस अरजस्का कन्याने सारा समाचार कह सुनाया । इस वृत्तान्तको सुनते ही भृगु मारे क्रोधके लाल हो गये और अञ्जलीमें जल भरकर कन्याको सान्त्वना देते हुए उन्होंने शाप दिया कि दण्डकके साथ-साथ उसका सो योजन राज्य चारों ओरसे जलकर भस्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उतनी जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे । इस प्रकार शाप सुनकर कन्याने विनय-पूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस शापकी अवधि भी नियत कर दीजिये । कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि जब अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर विन्ध्यके उस पार चले जायेंगे । उस समय वह स्थान सजल हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े ऋषि निवास करेंगे । राजा दण्डकके दुराचारसे उस देशकी ऐसी दशा हुई है । इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥ ९९-१०२ ॥ आगे चलकर जब रामचन्द्रजी उस देशमें जायेंगे तो उसमें कितने ही क्षेत्र बन जायेंगे और तबसे लोग उसी दण्डकारण्यको रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अगस्त्य

देशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न मविष्यति ॥१०६॥  
इति तां वालिकामुक्त्वा भृगुस्तम् हिमालयम् । ययौ तां मुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंबृतः ॥१०७॥  
भृगोः शापाच्च दण्डेन दर्शनं तद्राज्यमुत्तमम् । शतयोजनमानं तदभवद्वि समंततः ॥१०८॥  
मद्रामागमनाभ्यां च ततः स्वस्थं वभूव तत् । पूर्ववद्विंडकारण्यं चराचरासमाकुलम् ॥१०९॥  
इति त्वया यथा पृष्ठे तथा लव मयोदिते । कंकणस्य दण्डकस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लवस्तुष्टोऽभवत्तदा । नत्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तत्परोऽभवत् ॥१११॥  
अथ रामश्चोत्सवेन तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महामंगलपूर्वकम् ॥११२॥  
पारिवहै ददौ कोटिसंमितं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोध्यायां प्रभोर्गृहे ॥११३॥  
ततो विसर्जयामास चोग्रवाहुं नृपं प्रभुः । मुनयः पार्थिवाश्चापि ययुः स्वं स्थं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे  
हेमास्वयंवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

## अष्टादशः सर्गः

( राम द्वारा ब्राह्मणोंको रामनाथपुर राज्यका दान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोध्यायां रंजयामास जानकीम् । जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम् ॥ १ ॥  
राममुद्रां विना कस्य साकेते शस्त्रधारिणः । नैवासोत्सुप्रवेशश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥  
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्रांकितं पत्रं गृहात्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥  
गमनागमने चक्रुभूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः । राममुद्रास्वरूपं च ते बदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर ज्योंका त्यों हो जायगा और वहांके लोग सुखी हो जायेंगे । फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी । वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस वालिकासे भृगुने कहा—भविष्यमें लोग कहेंगे कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥ १०६ ॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिको सींप दिया और स्वयं वहृत्से ऋषियोंके साथ तपस्या करनेको हिमालय-पर्वतपर चले गये । इस प्रकार भृगुके शापसे दण्डकका सींप योजन राज्य जल-भुनकर राख हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ हमारे और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव-जन्तु आकर निवास करने लगे । इस प्रकार है लव ! तुमने हमसे जो प्रश्न किये, सो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक कह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लव परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवामें लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्याका विवित् सप्तमारोह विवाह करके चिशाङ्गदको दे दिया । उन्होंने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहृत्से हाथों-घोड़े आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया । इसके बाद महाराज उग्रवाहुको विदा किया और निमंत्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषियां अपने अपने स्थानको लौट गये ॥ ११२-११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे प० रामतेजपा०देवविरचित'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके बाद रामचन्द्र सींपाको प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखलावाली पृथ्वीकी रक्षा करते रहे । रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारी मनुष्य विना राममुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं आता था और विना मुद्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था । राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

तिर्यगूच्छं पञ्चदश रक्ता रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता प्रथमिका पंक्तिश्वतुर्दिङ्गु प्रकारयेत् ॥५॥  
 पंक्तिद्वितीया शुभ्रैव ज्ञातव्या च तथाऽस्थमी । ततश्चेशदिगारभ्य तृतीयायां प्रकल्पयेत् ॥६॥  
 वक्ष्यमाणपदान्येव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरंभश्चोत्तरस्यां हि समाप्तिर्दक्षिणे स्मृता ॥७॥  
 पश्चिमाभिमुखा स्थाप्या मुदा तत्रात्मसम्मुखा । पूर्वास्येन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥८॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं पष्टुसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥९॥  
 तमश्वतुर्थ्यां पंक्तौ हि चतुर्थं पष्टुसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥१०॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं पष्टुसप्तमे । नवमैकादशे चापि पष्टायाश्च क्रमोऽधुना ॥११॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं पष्टुमुत्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमी सकलाऽसिता ॥१२॥  
 नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । पष्टुं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥१३॥  
 तथैव द्वादशं चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा पष्टुं सप्तमाकें तथाऽसिते ॥१४॥  
 एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । पष्टाष्टनवमान्येव दशमाकें तथाऽसिते ॥१५॥  
 द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । पष्टुं च सप्तमं चापि हाष्टमं नवमं तथा ॥१६॥  
 दशमाकें तथा प्रोक्ता कृष्णा कृत्स्ना त्रयोदशी । एवं बुद्ध्या पूर्णित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥१७॥  
 सितवर्णं रामनाममुद्रायां हि निरीक्षयेत् । एवं राममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मयोदितम् ॥१८॥  
 एवं मुद्राकितां रामः शिला विप्रेभ्य आदरात् । ददौ साद्यापि भूम्यां हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥१९॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूसुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्रांकिता शिला ॥२०॥  
 तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां गुरो । आश्र्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ॥२१॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विप्रा चांछितदायिनम् । हर्षाद्विवक्षपुरस्थास्ते दाक्षिणात्या द्विजोत्तमाः ॥२२॥

आते-जाते, कहीं भी उन्हें रोक नहीं थी । अब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताता हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥  
 लाल रंगकी खड़ी-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खीचि । उसमें चारों ओरकी पहली पंक्ति पीले रङ्ग से रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी  
 और आठवीं पंक्ति सफेद ही रहने दे । इसके बाद ईशानकोण से लेकर तीसरी रेखातक आगे कही जानेवाली  
 पंक्तियाँ काले रंग से लिखे । लिखावट उत्तरको तरफ से प्रारम्भ करके दक्षिण में समाप्त करनी चाहिए ॥६॥७॥  
 मुद्राका मुख सदा सामने अर्थात् पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वको ओर मुख करके बैठे ॥८॥ पहली,  
 दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और पाँचवीं रेखाकी चौकियाँ तथा पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठवीं, नवीं, ग्यारहवीं तथा सातवीं चौकी यह सब काले रङ्ग की रहेंगी । फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठीं और सातवीं चौकी भी काले रङ्ग की रहेंगी ॥ ८-११॥ फिर ग्यारहवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठीं, आठवीं, नवीं तथा दमवीं चौकी भी काले रङ्ग की रहेंगी । बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी,  
 छठीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्ग की रहेंगी । इस प्रकार अपनी  
 बुद्धिमें उपर्युक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे "राजा राम" यह शब्द साफ साफ सफेद बणीमें लिख जायगा  
 ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बतलाया । इसों प्रकारकी मुद्रासे चिह्नित शिला रामने  
 ब्राह्मणोंकी दानस्वरूप दी थी, जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है ॥१८॥१९॥  
 विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको वह अपनी मुद्रासे अद्वित शिला किस लिये दी  
 थी ? यह सब कथा विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये । आपने यह आश्र्यंभरी बात कह दी । इसका पूरा विवरण  
 में आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

युस्ते राघवं द्रष्टुमयोध्यायां मुदान्विताः ॥२३॥

गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्रतः । स्नात्वा तत्र सुहृदेहे सीतया बन्धुभिः सुखम् ॥२४॥  
 पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमासने संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः श्रीरामं पूजयामास सादरम् ॥२५॥  
 परिवेषितानि पात्राणि सुहत्त्वीभिस्तदाजवात् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चित्रैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥२६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरस्थिताः । सुहृदेहे गतं रामं श्रुत्वा तत्र ययुमुदा ॥२७॥  
 गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतः श्रीराघवाय हि । भृसुराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदितम् ॥२८॥  
 तदृदृतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिसम्भ्रमात् । प्रत्युद्रम्य स्वयं विप्रान्ननाम शिरसा प्रशुः ॥२९॥  
 गन्धर्वराजगेहे तान्नीत्वा दत्त्वाऽप्यनानि हि । स्नातुमाज्ञापयत्सर्वान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥३०॥  
 तदा ते मन्त्रयामासुविप्राः सर्वे परस्परम् । भोजनात्पूर्वमेवैनं याचनीयं स्ववांछितम् ॥३१॥  
 केचिदूचुस्तदा विप्रा निवैध च रघूत्तमे । नोपेशाऽस्ति सदैवायं ददाति द्विजवांछितम् ॥३२॥  
 व्रतमेवास्य रामस्य द्विजवांछितपुरणम् । एवं तान्मन्त्र्यमाणांश्च रामो दृष्टाऽब्रवीद्वचः ॥३३॥  
 ज्ञातं मयाऽभिलिपिं युष्माकं मुनिपुज्ज्ञाः । राज्येच्छया समायाताः किमर्थं श्रमिता द्विजाः ॥३४॥  
 कथं न प्रेषितः शिष्यस्तद्वाक्येनैव वै मया । वाँडाऽभविष्यद्युष्माकं पूरिता क्षणमात्रतः ॥३५॥  
 एवं तान्त्राक्षणानुकृत्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य विप्रेभ्यो राज्यमर्पितम् ॥३६॥  
 शिलायां लिख मन्नाम दानं दत्तमिदं त्विति । तथेति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिसम्भ्रमात् ॥३७॥  
 हृष्टकारान्समाहृय शिलामानोयतामिति । शीघ्रमाज्ञापयामास ते जग्मुर्वेगवत्तराः ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्राः प्रोचुस्ते राघव मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीया शिला पश्चाद्रघूत्तम ॥३९॥  
 किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्मणि । परिवेषितानि पात्राणि वयं चापि ज्ञुधार्दिताः ॥४०॥

प्रशंसा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंको कामना पूर्ण करते हैं। दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंको संख्यामें एकत्रित होकर रामसे मिलने गये। उघर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करते गये हए थे। सीता तथा भ्राताओंके साथ उन्होंने वहाँ ही स्नान किया था और अपने दोनों बेटोंके साथ चौकोपर भोजन करते बैठे थे। गन्धर्वराजने सादर रामका पूजन किया ॥ २२-२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रोंने शीघ्रतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पक्वान आदि परोसना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्रगण रामके द्वारपर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धीके घर गये हैं। बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँचे और द्वारपालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण आये हैं। दूतकी बात सुनकर स्वयं राम तुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये। आसतपर विठाकर उनसे स्नान-भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७-३० ॥ उस समय उन सबोंने मंत्रणा करके निश्चय किया कि भोजन करनेके पहले ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें। उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी क्या है, राम कभी याचकोंकी उपेक्षा नहीं करते। बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंकी याचना पूरी करनेको तैयार रहते हैं। इन रामका यही ब्रत है कि ब्राह्मणोंकी माँगें पूर्ण किया करें। इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंको देखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंको इच्छाको जान गये हैं। आप लोग राज्यकी इच्छासे मेरे पास आये हैं। सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१-३४ ॥ आप अपने किसी शिष्यको ही भेज दिये होते तो मैं क्षणभरमें आपको इच्छा पूर्ण कर देता ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दें डाला है। एक शिशापर मेरा नाम लिखाओ और उसमें यह भी लिखता दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य दान दे दिया है। ‘बहुत अच्छा’ कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्वर खोदनेवाले सन्तरासोंको बुलवाया और एक बड़ी शिला मैंगवायी। दूत लक्ष्मणके आजानुसार तुरन्त चल पड़े ॥ ३६-३८ ॥ तब उन विप्रोंने रामसे

तत्त्वेषां वचनं श्रत्वा फलभारान्विचित्रितान् । पुरस्तात्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥  
 उवाच मधुरं वाच्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलानीमानि भो विप्रा भक्षयध्वं यथासुखम् ॥४२॥  
 लेखयित्वा शिलायां हि यदा मुद्रां करोम्यहम् । तदाऽशनादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥  
 क्षणं वित्तं क्षणं चित्तं क्षणिकं च स्वजीवितम् । यमोऽतिनिर्धृणः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमतश्चरेत् ॥४४॥  
 शर्तं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत् । लक्ष्मं त्यक्त्वा तु दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ॥४५  
 कोटिविधनानि गीतायां दशकोटीनि जाह्नवीम् । शतकोटीनि जायन्ते दाने विधनानि भूसुराः ॥४६॥  
 अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परतस्तथा ॥४७॥  
 भोजनात्पूर्वकाले तु भोजनात्परतस्तथा । क्षणे क्षणे मतिर्भिन्ना जायतेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥  
 तस्मात्कार्या त्वरा दाने मतिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे साऽस्त्येतदेव मतं मम ॥४९॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दृष्टकारैः शिला वरा । समानीता गण्डकीजा नवहस्ता समन्ततः ॥५०॥  
 तस्यान्ते लेखयामासुर्वप्तकाराः स्फुटाभरैः । सूर्यवंशोद्धवेनाथ सप्तद्वीपेश्वरेण हि ॥५१॥  
 त्रेतायां दाशरथिना रामराजा द्विजोत्तमान् । मया ब्रह्मपुरस्यैव राज्यदानं कृतं मुदा ॥५२॥  
 यावत्तपति खे भानुर्यावदस्त्यत्र मे कथा । यावत्प्रवर्तते वायुस्तावदानं ममास्त्वदम् ॥५३॥

सम्मान्योऽयं धर्मसेतुद्विजानां काले काले पालनीयो भवद्धिः ।

सवनितान् मायिनः पार्थिवेद्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥

एवं विलेख्य श्रीरामः शिलायां निजसुद्रिकाम् । रामनामांकितां चायुपुत्रेणास्पर्श्यत्तदा ॥५५॥  
 आंजनेयस्य भारेण शिला जाता तदक्षिता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाभरम् ॥५६॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा । हे राम ! आप लिखनेको इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पात्रोंमें सामग्रियां परोसी जा चुकी हैं और हम लोग भी भूले हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बोझके बोझ विविध प्रकारके फल मंगवाकर उनके सामने रखवा दिये और कहा—हे विप्रगण ! आप लोग सुखसे यह फल खाइए । हम तो शिला लिखवाकर और उसपर अपनी मुहर अंकित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ घन क्षणस्थायी है, चित्तवृत्ति क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और यमराज बड़ा निर्दयी है । इसलिये जितने शीघ्र हो सके, धार्मिक काम पूर्ण कर डाले ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, सहस्र कामोंको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाख कामोंको त्याग करके पहले दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोंको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रो ! गीताका पाठ करते समय करोड़ विधन, गंगास्नानमें दस करोड़ विधन और दान-कर्ममें सौ करोड़ विधन आकर उपस्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमें सर्वदा शीघ्रता करें । निद्राके पर्वकालमें, निद्रासे उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद क्षण क्षणमें बुद्धि बदला करती है । इसीलिए प्रथम क्षणमें जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो, उसके अनुसार दानकर्मं शीघ्र कर डालना चाहिये । यह मेरा निजी मत है ॥ ४७-४८ ॥ उसी समय संतरासोंने नौ हाथकी लम्बी-बौद्धी गण्डकी नदीकी एक अच्छी-सी शिला लाकर रामके सामने रख दी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर संतरासोंने साफ-साफ अक्षरोंमें उस शिलापर खोदकर लिखा कि “सूर्यवंशमें उत्पन्न और सप्तद्वीपके अधीश्वर महाराज दशरथका पुत्र मैं राजा राम प्रसन्नतापूर्वक भ्रह्मपुरका राज्य दान करके ज्ञाहृणोंको दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जब तक कि आकाशमें सूर्य देवता तपते रहे, जब तक संसारमें मेरा नाम रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मेरा यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे आगे जो राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यही भीख माँगता हूँ कि “ज्ञाहृणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा” ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमानजीके द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुहर लगवा दी ॥ ५५ ॥ हनुमानजीके भारसे शिलापर रामकी मुहर खुद गयी और उसमें “राजा राम” यह शब्द साफ-

रामनाथेन यहत्तं पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रथां गतम् ॥५७॥  
 तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाख्याऽपरा स्मृता ॥५८॥  
 शिलाभारमितं द्रव्यं दक्षिणार्थं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरामः सीतया ददौ ॥५९॥  
 ततोऽब्रवीद्वायुपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिला नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥  
 कम्बुकण्ठं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । ब्राह्मणानां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥  
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । चकार भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥  
 ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति । तान्पृष्ठा मारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥  
 एवं चकार दानानि सप्तदीपांतरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां संख्या न विद्यते ॥६४॥  
 रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालांतरेण वै । दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविहृलाः ॥६५॥  
 तटाके प्रक्षिपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्दृष्टा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥

वहिनिष्कास्यति शिलामग्रे कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूसुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥  
 यतस्ते त्यक्तुकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कथिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥

स ताङ्गिबध्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया । वदिष्यति कलौ राजा युष्माकं दानमर्पितम् ॥६९॥  
 यदि रामेण तदानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । करणीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुरोद्धवम् ॥७०॥  
 युष्माभिर्बसु यद्गुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोचेत्सर्वान्वधिष्यामि भूसुराणां यमस्त्वहम् ॥७१॥  
 ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे श्रुत्वेदं नृपतेर्वचः । भयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोचुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साफ दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया ॥ ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । जबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई ॥ ५८ ॥ उस शिलाके तौल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंकी पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमानजीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुंचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कम्बुकण्ठको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया । जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायता करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वदि दिया और रामने उन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आश्रमको चले और रामसे पूछकर हनुमानजी भी विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों द्वापोंमें रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जिनको सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको तालाबमें फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे मरनेपर उतारू हो जायेंगे तो हनुमानजी उस शिलाको फिर तिकालेंगे ॥ ६५ ॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको आगे चलकर अपने जीवनमें कीन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये । श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य लीनेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आय तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । वयोंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते दर्शयिष्यामहे वयम् । ततो मुमोच तान्नराजा तेऽपि तृष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥  
 तटाकस्य तटं भित्त्वा प्रवाहाः शतशस्ततः । मोचयामासुः सर्वत्र नांतं तस्य जलस्य ते ॥७४॥  
 ददृशुः सकला विप्रास्ततस्ते प्राणसंकटम् । ज्ञात्वा तत्र निराहारा निषेदुः सरसस्तटे ॥७५॥  
 राघवं परमात्मानं चित्यामासुरादरात् । एवं मासे त्वतिक्रान्ते बधं ज्ञात्वात्मनो नृपात् ॥७६॥  
 भयात्प्राणांस्त्यक्तुकामा द्यासंस्तस्मिन् जलाशये । तदा तेषां स्थियः पुत्राश्रक्तः कोलाहलं भृशम् ॥७७॥  
 तान्सर्वान्सांत्वयामासुर्नानीत्युत्तरैद्विजाः । स्वयं स्नात्वा द्विजाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ॥७८॥  
 चक्रः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायोत्तराननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रवद्धकरसंपुटाः ॥७९॥  
 हे राम जानकीकांत त्वद्वानादीदृशी गतिः । जाताऽस्माकं मृतान्नस्त्वं सर्वान्यश्य रघूतम् ॥८०॥  
 पुरोद्धवं तु यदुद्रव्यं पूर्वजैर्भृत्यमेव तत् । एतावत्कालपर्यन्तमस्मामिश्राधुना कुतः ॥८१॥  
 तथवदेयमसंख्यात्मतस्त्यक्ष्याम जीवितम् । इत्युक्त्वा ब्राह्मणाः सर्वे निर्मील्य नयनानि ते ॥८२॥  
 चित्यामासुः स्वीयेषां देवतां मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्नंतरे तत्र देवागारे हनूमतः ॥८३॥  
 पापाणमूर्तेः प्रकटः संबभूवाङ्नांसुतः । दीर्घस्वरेण तान् प्राह भृसुरान्सभ्रमाद्वरिः ॥८४॥  
 पूर्यं मा जीवितान्यद्य त्यज्य ब्राह्मणोत्तमाः । आगतो राघवस्याह दासोऽज्ञनिसमुद्धवः ॥८५॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यद्ये ददृशुर्वायुनन्दनम् ॥८६॥  
 दीर्घवाहुं महाधोरं पिंगकेशविराजितम् । जरठं पर्वताकारं रामनामप्रभापिणम् ॥८७॥  
 तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुहृष्टमानसाः । कथयामासुस्तं सर्वं स्वीयं वृत्तं सविस्तरम् ॥८८॥  
 ततः स मारुतिवेंगात्सरस्तां शिलां चहिः । निष्कास्य विप्रवयेऽस्तैः शिलां धूत्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

यमराज हूँ ॥ ६९-७१ ॥ राजाकी ऐसी बात सुनकर ज्ञाहृण भयमीत ही तथा परस्पर सलाह करके उससे बोले कि एक महीनेमें मैं आपको वह दानपत्र खोजकर दिखाऊँगा । यह सुनकर राजाने ज्ञाहृणोंको छोड़ दिया और वे चुपचाप लौटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तालाबका बांध तोड़ दिया । जिससे संकड़ों सोते वह निकले और चारों ओर फैलकर वहनेपर भी तड़ागका जरूर नहीं चुका । जब ज्ञाहृणोंने देखा कि अब प्राण सङ्कटमें आ गया है तो सबके सब उसीके एक ऊंचे कगारपर उपवास करते हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे । इस प्रकार एक महीना बात जानेपर जब उन विप्रोंने सोचा कि अब वह दुष्ट राजा हमको मार डालेगा तो भयसे अपने प्राण त्यागनेके लिए तैयार हो गये । उस समय उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यधिक दुःखित होनेके कारण सबके सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे ॥ ७४-७७ ॥ तब उन्होंने स्त्रियों-बच्चोंको अनेक प्रकारकी नीतिमयी बातें सुनाकर सान्त्वना दी । स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये । फिर उन्होंने उस तालाबकी सात परिक्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके खड़े हो गये । हाय जोड़कर ऊंचे स्वरसे वे कहने लगे—हे राम ! हे जानकीकान्त !! तुम्हारे दिये हुए दानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है । हे रघूतम ! अब तुम हम लोगोंको मरा हुआ समझो ॥ ७८-८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्हीं लोगोंने खर्च कर दिया । अब हम कहाँसे असल्य धन लाकर इस राजाको दें । उतना धन जुटाना हमारी शक्तिके बाहर है । अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे । इतना कहकर उन मरणोन्मुख विप्रोंने नेत्र मैंद लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे । उसी समय पासके देवालयमें पाषाणमया मूर्तिसे हनुमानजी प्रकट हुए और जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे —॥ ८१-८४ ॥ हे ज्ञाहृणों ! तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो । रामचन्द्रजीका सेवक अञ्जनीपुत्र मैं हनुमान् आगया । इस प्रकार उनकी बात सुनकर विस्मित भावसे उन सबोंने नेत्र खोलकर हनुमानजीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमानजीका लम्बा तया भयानक हाथ था, पीले-पीले केश थे, बूढ़ी अवस्था थी, पर्वताकार शरीर था और वे निरत्तर रामनामका उच्चारण करते जाते थे ॥ ८७ ॥ उनको देखा तो प्रसन्न चित्तसे उन ज्ञाहृणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने

जगाम दुष्टराजानं दर्शयामासु तां शिलाम् । सम्भुद्रवक्तां दृष्टा लिपि राजार्जिति-सिद्धः ॥१०॥  
तं तदा रोपयावास शूलाग्रं दायुजो चृष्टम् । दस्मिन्नेव लटाके ह दश विद्राः स्थिताः पुरा ॥११॥  
नृपं मोचयितुं ये ये राजदूताः समाप्तुः । वास्तवांस्मैयामाद् पुच्छेनैव म माहिः ॥१२॥  
द्विजहृत्तापशमनादधृत्तादशमनं दरः । चक्रां लाभता तत्पुण्य तत्र आवयुदनुना ॥१३॥  
राज्यदानेन रामस्पीदादै लोकान्प्रदर्शितुर् । उदारराघवशाख्यः शम्भुः सस्थापितः शुभः ॥१४॥  
उदारराघवश्चेति नाम्या मूर्तिः प्रार्थिष्ठा ।

स्नानादिना तत्सरसि नृणां तापत्रय न हि ॥१५॥

ततः प्राह पुनर्विप्रान्हनूमांस्तुष्टमान्तान् । भूम्यां हृत्या गुहां थेष्टां तत्रयं स्थापातां शिला ॥१६॥  
न भयं चोऽस्तु भो विप्रा युष्माक सविभृत्यहृ । मन्त्रहाऽस्म न भेतव्यं स्मरध्वं रघुनन्दनम् ॥१७॥  
इत्युक्त्वा गुरुरुपोऽभूतस्वायमृत्यां द्विजःग्रतः ।

तां शिलां स्थापयामासुभूम्यामेगातियत्ततः ॥१८॥

ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जग्युः स्वं स्वं गृहं प्रति । तदोऽस्त्रभयं न केनापि तेषां राज्यं हतं कदा ॥१९॥  
एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भासा तवाग्रतः । पूर्वमेव शानदृष्ट्वा कौतुकार्थं सावस्तरा ॥१०॥  
अद्यापि तत्र तर्विप्रैस्तद्राज्य भुज्यते सदा ।

ये ये जाता नृपा भूम्यां रामाज्ञां मानयन्ति ते ॥१०१॥

एवं नाना कौतुकानि राघवेण कृतानं हि । पुत्राभ्यां भीतयाऽद्याद्यापुर्यां वयुजनैः सह ॥१०२॥  
इति श्रीशतकांटिरामचारतांतर्गतं श्रीमदानन्दरामस्तुत्ये ताल्मोकाय राज्यकाण्डे  
रामदायपुरराज्यप्रदानं नामाद्यदाः सर्गः ॥ १८ ॥

सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर हुमन्दजल ५५ हि शिला उस राघवने निकालकर उनके  
आगे रख दी और ब्राह्मणोंने उसे उस दुष्ट राजा के पास ले जाकर दिखाया । राममुद्राक चिह्नस चिह्नित  
उस शिलाको देखकर राजा बहुत चक्रराघा ॥ ८९ ॥ ९० ॥ उभा हुमान्दजा उस राजा को पकड़कर उसा  
सरोवरके तटपर ले गये और शूलीपर चढ़ा दिया । राजा को हुड़ने के लिए जो सिरहा उनके पास आये,  
हनुमान्जीने अपनी लम्बा पूँछके प्रहारसे हा उन रुबका मार डाला ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणोंका सन्ताप हनु-  
मान्जीने उसी सरोवरपर हरण किया था, इसलिए उस उर्मातका 'हृत्तापशमन' नाम पड़ गया ॥ ९३ ॥  
राज्यदानसे रामकी उदारता संसारका दिखानेके लिए उसी स्थानपर हुमान्जीन उदारराघवेश नामक  
शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ९४ ॥ उस सरोवरमें स्तूप करनेसे मनुष्याक दोहरा, दोबक और मानसिक ये  
तीनों ताप दूर हो जाते हैं ॥ ९५ ॥ इसके बाद हुमान्जीन उन असन्नाचत्त विप्रास कहा—पृथ्वीमें एक गुफा  
बनाकर उसीमें यह शिला रख दो ॥ ९६ ॥ हे विप्रा ! तुमका किसी प्रकारका जव नहीं है । मैं सदा तुम्हारे  
पास रहूँगा । तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करत रहो । इतना कहकर सबक समक्ष हनुमान्जी  
अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमामें लीन हा गये । जैसा कि हुमान्जीन बतलाया था, विप्रोंने गुफा खोदकर  
बड़े यत्नसे वह शिला उसीके भीतर रख दी ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे वे ब्राह्मण लौटकर  
अपने-अपने घरोंको चले गये । तबसे किसी राजाने उनके राज्यका हरण नहीं किया । श्रीरामदास कहते  
हैं—हे शिष्य ! मैंने भाषी वृत्तान्त तुम्हें कह सुनाया । आज भी वे हा ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर  
रहे हैं । पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे दरावर रामकी आजाका मानते आय हैं । इस प्रकार अयोध्यामें राम  
अपने पुत्रों, सीता तथा भाईयोंके साथ नाना प्रकारक कौतुक करत रहे ॥ ९९-१०२ ॥ इति श्रीशतकांटिराम-  
चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे  
अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

## एकोनविशः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यथ रामराजः शुभावहा । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिक्षितुम् ॥ १ ॥  
 प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनिनादांश्च सुखं शुश्राव सीतया ॥ २ ॥  
 ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुरान् । पुण्यतीर्थानि मातश्च देवतायतनानि च ॥ ३ ॥  
 नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्सागरांस्तथा । नदांश्चैव नदोः पुण्यास्ततः सीतां ददर्श सः ॥ ४ ॥  
 प्रणमन्तीं समुत्थाप्य धूत्वा सीताकरं प्रभुः । मञ्चकादवतीर्याथ दासीभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥  
 वहिः कक्षा शैवगत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दासीभिः क्रीडाशालां रघूत्तमः ॥ ६ ॥  
 कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार सः । ततः स्नानं कदा गेहे सरय्वां वाऽकरोत् प्रभुः ॥ ७ ॥  
 आरुण्य शिविकायां स भूसुरैर्यानसंस्थितैः । वेष्टितः सरयुं गत्वा यानं मुक्त्वा तटे प्रभुः ॥ ८ ॥  
 पद्मथामेव शैवगत्वा सरयुं प्रणिपत्य च । सरय्वाः पुरतः स्थाप्य नारिकेलं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥  
 सरांचूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्यक् प्रसाद्य च । स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥ १० ॥  
 प्रातः सन्ध्या ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दानान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥ ११ ॥  
 हृष्मबन्धैर्बेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातस्तुरगयुक्तेन ध्वनितेन च ॥ १२ ॥  
 हुत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च समर्चयत् ॥ १३ ॥  
 कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्ट्ररम् । चितामणि कौस्तुभं च पूज्य सीतायुतो हरिः ॥ १४ ॥  
 मूनिषृक्षं वटं चिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पलाश दुर्वां च राजवृक्षमपूजयत् ॥ १५ ॥  
 भानुं सम्पूज्य तं नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोवृषाश्ववारणांश्च रथं शत्र्याणि भूसुरान् ॥ १६ ॥  
 कोष्ठागाराणि कोशीश्च पाकशालामपूजयत् । सिंहासनं तथा छत्रं चामरे व्यजने तथा ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! सुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ । जिसे ये सबको शिक्षा देसिके लिए किया करते थे । राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकोंके गीत तथा बाजोंके मीठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे । इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र तीर्थों, माताओं, देव-भन्दिरों, अनेक प्रकारके क्षेत्रों, अरण्यों, पर्वतों, सरोवरों, नदों और नदियोंका स्मरण करके सीताको देखते थे ॥ १-४ ॥ प्रणाम करती हुई सीताको ठाकर राम उनका हाथ पकड़े हुए मंत्रसे उतरते थे । फिर बहुत-सी दासियों-से घिरे हुए जाते और आवश्यक कायोंका संपादन करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ श्रीडाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पाइत् दन्तशुद्धि करते थे । इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयूस्नानको जाते तो पालकीपर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसे परिषेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसे उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयूके आगे पानदक्षिणायुक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे । फिर ब्राह्मणोंके वेदधोषके साथ स्नान करते थे । इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर महूलोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्वान-स्वानपर सुवर्णसूत्रके बन्धन लगे रहते और ष्वेतवर्णके बस्त्र लटकते रहते थे । सरयूमें सारथी तथा धोड़े नहाये रहते थे और उस रथमेंसे एक प्रकारकी ध्वनि निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हवन करके राम सादर शिवजीका पूजन करते और कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्ट्रकविमान, चितामणि, कौस्तुभ आदिकी सोताके साथ-साथ राम पूजा करते थे । पञ्चात् अगस्त्य, वट, चिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, चलाश, दुर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवान्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे । तदनन्तर

संपूज्य सुकुटं रामः पूजयामास मन्त्रकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयत् ॥१८॥  
 पुनः संपूज्य स्वगुरुं पूर्वं विप्रेषु पूजितम् । उच्चामनस्थितं नत्वा कथां शुश्राव तन्मुखात् १९॥  
 पुत्राभ्यां बन्धुभिः पत्न्या पण्डितैः परिवेष्टितः । ततः सप्रार्थितो रामः सीतया स मुहुमुहुः ॥२०॥  
 विप्रादिभिश्चोपाहारं चकार स्वस्थमानसः । कामधेनद्वैश्वान्नैः कल्पवृक्षसमुद्धैः ॥२१॥  
 मणिद्वयनिमित्तैश्च वह्नौ सीताकृतेरपि । ततो भुक्त्वा हि तांचूलं विभ्रद्वासांसि राघवः ॥२२॥  
 चदूच्वा कटि दिव्यवस्त्रैः शस्त्राण्यपि दधार सः । एतस्मिन्नतरे पूर्वं क्षमाहूतो ययौ भिषक् ॥२३॥  
 गणकोऽपि राघवेण प्रत्युद्धम्यातिमानितौ । निषेदत् राघवाग्रे पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥  
 ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवाग्रे तदाज्ञया । ददर्श दक्षिणकरे नाडीं रामस्य सादरम् ॥२५॥  
 रत्नमुद्राकंकणाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥२६॥  
 तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञायते च भिषग्वरैः । अतस्तां वैद्यर्यः स मूर्खमवुद्धया व्यलोकयत् ॥२७॥  
 रामकर्णे विहस्याह रात्रावाचरितः श्रमः । तद्वैद्यवचनं श्रुत्वाऽकरोद्रामः स्मिताननम् ॥२८॥  
 ततो वैद्याय तांचूलं ददौ रामः सदक्षिणम् । ततः म गणकः प्राह विस्तार्य सुस्फुटाक्षरम् ॥  
 पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवाग्रे स्थितः सुधीः ॥२९॥

विघ्नेश्वरो ब्रह्महरीश्वरः सुरा भानुः शशी भूमिसुतो बुधः शुभः ।

गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहा मंगलदा भवन्तु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वातात्तथाऽऽयुश्चिरं नक्षत्रं कृतपापसंचयहरं योगो वियोगापहः ।  
 सर्वाभीष्टकरं तथैव करणं पंचांगमेतत्स्फुटं श्रोतव्यं प्रतिवासरे द्विजमुखाच्छ्रेयस्करं संग्रहम् ॥३१॥  
 स्वस्ति श्रीराघवाद्यास्ति तिथिश्च दशमी मिता । भानुवारः सुनक्षत्रं पुष्पाख्यं त्वद्य वर्तते ॥३२॥

बृष, अश्व, हाथी, रथ, शास्त्र, ब्राह्मण, कोठार, कोश, पाकशाला, सिहासन, छत्र, चमर, व्यज्ञन, मुकुट, मन्त्र,  
 दीपिका और दर्पणकी पूजा करके पुस्तकादिकोंका पूजन करते थे ॥ १४-१८ ॥ फिर ऊंचे आसनपर बैठे  
 अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके मुखसे कथा सुनते थे ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर अपने आताओं,  
 पुत्रों और पण्डितोंके साथ बार-बार सीताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणोंके सज्ज स्वस्य मनसे कामधेनु, कल्प-  
 वृक्ष और दोनों मणियोंसे उत्पन्न तथा अग्निपर बनाये अष्टका भोजन करके पान खाते थे । तदनन्तर  
 सुन्दर कपड़े पहिन तथा दिव्य वस्त्रसे कमर कसके भाँति-भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करते थे । इसके बाद  
 पहलेसे ही बुलाये हुए वैद्य तथा ज्योतिषी आते । उनको आते देखकर राम उठ खड़े होते और दो पग आगे  
 बढ़कर स्वागत करके उन्हें लाते एवं अतिशय सम्मान करते थे । वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी  
 पूजा करते थे ॥ २०-२४ ॥ इसके बाद वैद्य आनन्दपूर्वक बैठकर रामके आज्ञानुसार रत्न, मुद्रा तथा कंकण आदिसे  
 सुशोभित उनके दाहिने हाथकी नाड़ी देखता था । हाथके अंगूठेकी नीचेवाली जो जीवसाक्षिणी नामकी नाड़ी  
 है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके सुख दुःख जान लिया करते हैं । इसलिए वह वैद्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे  
 देखता और कानमें कहता कि 'रातको ज्यादा मेहनत किये हैं न ?' वैद्यकी वात सुनकर नाम मुस्करा  
 देते थे ॥ २५-२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणाके साथ वैद्यजीको पान देते थे । तदनन्तर ज्योतिषीजी स्वच्छ  
 अक्षरों और चित्रोंसे सुसज्जित पञ्चांग फैलाकर रामके सामने बैठते और इस प्रकार मञ्जलाचरण तथा पञ्चांग-  
 श्रवणका माहात्म्य सुनाते थे । विघ्नेश्वर ( गणेशजी ), ब्रह्मा, महेश, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा,  
 मञ्जल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु आदि सारे ग्रह आपके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ तिथिके  
 सुननेसे लक्ष्मी अचल होती है, वारके श्रवणसे आयु बढ़ती है, नक्षत्रश्रवण पुराकृत पापोंके समूहको नष्ट  
 करता है, योग अपने प्रियजनके वियोगसे बचाता तथा करण सब प्रकारकी मनःकामना पूर्ण करता है ।  
 अतएव ब्राह्मणके मुखसे प्रतिदिन इनका श्रवण करना चाहिए । क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण  
 उत्तरता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्रो रामचन्द्रजी ! आज शुक्लपक्षकी दशमी तिथि है, रविवासर है, पूर्णिमा मक्क सुनक्षत्र है,

ऐंद्रयोगो महानव्य ववार्ख्यं करणं शुभम् । कर्कस्थितोऽय चन्द्रोऽस्मि द्वितीयस्ते रघूतम् ॥३३॥  
 मासोऽयं चैत्रमासोऽस्मि वसंतार्ख्य ऋतस्तव्यम् । सुखं हुरुषं राज्यं त्वं चिरं तिष्ठावनीतले ॥३४॥  
 सर्वेऽपि सुखिनः सन्त गर्वे सन्त निरामयाः । सर्वे यद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥३५॥  
 एवं ज्योतिर्विदा गीतं पश्चाङ्गं रघुनन्दनः । श्रुत्वा तं दक्षिणां दत्त्वा सतांबूलां ननाम सः ॥३६॥  
 ततो रामं यथौ वैगान्प्रालाकारो मनोहरगत् । रामाये वंशपात्रस्थानपुष्पहारान्वयवेदयत् ॥३७॥  
 रामस्तान्सकलेभ्यश्च दत्त्वाऽविभ्रत्स्वयं ततः । पुत्राभ्यामवतंगांश्च नत्याऽविभ्रत्स्वयं करे ॥४॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामं नापिनः ग्रययौ जवात् । मुकुरं दर्शयामास रुक्मवन्धनरंजितम् ॥३९॥  
 तत्रादर्शे ददर्शथ स्वमुखं रघुनन्दनः । चन्द्रोपमं सुस्थितं च कंजलोचनशोभितम् ॥४०॥  
 क्रज्ञनामं मांसलं च उमयूक्तं रुक्तर्तुलम् । वरदुण्डलमुक्तानां वरदीप्त्याऽतिभासुरम् ॥४१॥  
 ग्रोच्यग्रहस्थलं सुअः त्रिवलीगालमण्डितः । रुक्मवन्धनसमुद्धृतमुकुटेनातिशोभितम् ॥४२॥  
 एवं मुखं निरीक्ष्याथ तुतोप नितरां ग्रभुः । ततो ययौ धृपणिर्भूपं स्थाप्य ग्रभोः पुरः ॥४३॥  
 नत्या रामं दूतमध्ये तस्थिवान्नाघदागतः । ततो रामः शिविकायां स्थित्वा गेहाद्विर्ययौ ॥४४॥  
 ददर्श मागधार्दीश्व वहिःकक्षस्थितान् ग्रभुः । ततस्ते मागधा रामं नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४५॥  
 सूर्यवंशभवान्सर्वान्नुपान्संवर्णंस्तदा । ततस्ते वन्दिनः सर्वे तुष्टुव रघुनन्दनम् ॥४६॥  
 नानातत्कृतचारित्रै रावणादिवधादिकैः । ततस्ते चारणा गानं ग्रचकुर्मुदिताननाः ॥४७॥  
 नटा वैद्याश्च ननृतुननीनावायपुरःसाय । अन्ये चक्रविनोदांश्च यैः सन्तुष्टेत्स राघवः ॥४८॥  
 ततो निनेदुर्वाध्यानि नववायस्वना अपि । ततस्तुतीयकक्षायां ददर्श नृपनन्दनः ॥४९॥  
 वारणेद्रांश्च तुरगान् शिविकाश्च रथांस्तथा । नानालंकारयुक्तांश्च वरवस्त्रैः समन्वितान् ॥५०॥

ऐन्द्रयोग है और कक्ष राशिमें वैठा चन्द्रमा आपकी राशिसे दूसरे स्थानपर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यह चैत्रका महीना है, वहन्त अहत है, आप आनन्दपूर्वक राज्य करें और बहुत दिनोंतक इस पृथ्वीतलपर रहें। सब सुखों हों, सब नीरोग हों, सब लोग मङ्गलमय दिन देखें और कोई किसी प्रकारका दुःख न देखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ज्योतिषीके कहे पञ्चांगको सुन और उसे ताम्बूल-दक्षिणा देकर विदा करते थे ॥ ३६ ॥ इसके बाद वेगके साथ माली बाँसकी टोकरीमें फूलोंकी मालाएं लानार रामको नजर करता था ॥ ३७ ॥ उन मालाओंको वहाँ उपस्थित सब लोगोंमें बाँटकर राम स्वयं भी पहनते थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर नाई आता । वह सुवर्णके चौखटेसे सुसज्जित दर्पणं रामकी दिखाता था ॥ ३९ ॥ शोशेमें राम चन्द्रमाके समान सुन्दर, मुस्कराहट युक्त और कमलके समान नेत्रोंवाला अपना मुख देखते थे ॥ ४० ॥ वह मुख छोटी-सी नासिकासे युक्त, भरा हुआ, गोलाकार, अच्छे-अच्छे कृण्डलों तथा भोतियोंके गुच्छोंसे अतिशय शोभायमान एवं तेजोमय था ॥ ४१ ॥ दोनों कपोल ऊंचे थे, सुन्दर-सी त्रिवली अर्थात् तीन लकोरें माथेमें पढ़ी थीं । वे सुवर्ण और रलोंसे सुशोभित मुकुट मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । इसके पश्चात् एक सेवक आता, जिसके हाथोंमें सूलगती हुई धूप रहती थी । वह धूपदानी रामके सामने रखा तथा नमस्कार करके दूतोंके बीचमें प्रभुके सामने वैठ जाया करता था । इसके अनन्तर शिविकामें वैठकर राम वरसे बाहर निकलते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बाहरके आँगनमें वरदीजन खड़े रहते थे, उन्हें राम देखते थे और जब राम-को वे देखते तो प्रणाम करके ऊंचे स्वरसे रामके पूर्वपुरुषोंका यश गाने लगते और किर रामकी स्तुति करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वे उनके किये रावणवध आदि चरित्रोंका विशद वर्णन करते थे । तदनन्तर चारणगण प्रसन्नमुख होकर गाना गाते और नट तथा वेश्यायें नाना प्रकारके दाजोंके तालपर नाचने लगती थीं । कितने ही लोग विनोद करने लगते, जिससे कि राम प्रसन्न हों ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके बाद कितने ही प्रकारके बाजे बजने लगते थे । तब राम दूसरे आँगनसे तीसरेमें पहुँचते थे ॥ ४९ ॥ वहाँ बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

ततश्च रथकक्षायां नृपान्यौरान्तुहज्जनान् । समागतान्दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥  
 ततः पश्चमकक्षायां पुष्पक पुष्पवाटिकाः । दृतान्दर्श श्रीरामः शखहस्तान्सहस्रशः ॥५२॥  
 ततः स वष्टककक्षायामश्चारुढान्महस्तशः । वीरान्दर्श श्रीरामः प्रबद्धकरसम्पुटान् ॥५३॥  
 ततः सप्तमकक्षायां ययौ रामः सभां प्रति । शिविकायाश्चावतीर्य शनैः सिंहासनं ययौ ॥५४॥  
 सन्ध्यं कृत्वा नमस्कृत्य भोपानैः स शनैः प्रभुः । सिंहासनमारुरोह वरछत्रसुशोभितम् ॥५५॥  
 दधार छत्रं सौमित्रिशामरं भरतस्तदा । शत्रुघ्नो व्यजनं रम्यं पादुके वायुनन्दनः ॥५६॥  
 सुग्रीवो जलपात्रं च वगदर्श विभीषणः । दधार हस्ते ताम्बूलपात्र स बालिनन्दनः ॥५७॥  
 वस्त्रकोशं जांचवांश दधार वेगवत्तरः । तस्थौ सिंहासने रामः स पृष्ठांकोपवर्हणः ॥५८॥  
 तस्थौ पृष्ठे लक्ष्मणश्च मरतः सव्यपाश्वके । शत्रुघ्नोऽसौ वामपाश्वे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥  
 बायव्यकोणे रामस्य सुग्रीवः सस्थितोऽभवत् । ईशान्यां राक्षसेन्द्रः स आग्नेय्यामङ्गदः स्थितः ॥६०॥  
 नैऋत्यां जांचवांशापि यौराः सर्वे समन्ततः । राघवाग्रे नृपाः सर्वे स्थिताः सम्बद्धपाणयः ॥६१॥  
 पाश्वयोस्ते राघवस्य प्रोच्चस्थाने मुनीश्वराः । पुरतो ननुतुः सर्वा वारवेश्याः सहस्रशः ॥६२॥  
 तरो वीरास्तो दृताः सभायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्मुनयः सर्वे रामपुत्रौ निषेदतुः ॥६३॥  
 राममित्रा निषेदुस्ते तथा रामाज्ञया नृपाः । ये ये मुख्या निषेदुस्ते तथा यौराः सुहृज्जनाः ॥६४॥  
 एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुरः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः शुशुमेऽनुपमस्तदा ॥६५॥  
 सेवकाद्या न निषेदुः सुमन्त्र एव तस्थिवान् । एवं स्थित्वा सभायां स कृत्वा कार्याण्यनेकशः ॥६६॥  
 नानाकार्येषु बन्धुंश्च पुत्रावाज्ञाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमाययौ ॥६७॥  
 तदा निनेदुवाच्यानि गोमुखादीन्यनेकशः । श्रृत्वा वाद्यनिनादांश जानकी सम्ब्रमात्पुरः ॥६८॥

रथ खड़े रहते थे । जिनमें अनेक प्रकारके अलङ्कार लगे रहते और अच्छे कपड़ोंका ओहार पड़ा रहता था । ॥५०॥ इसके बाद उस आँगनमें बाहरसे आये हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे, जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहले ही से उपस्थित रहा करते थे ॥५१॥ फिर पाँचवीं चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा शस्त्र धारण किये हजारों सिपाहियोंको देखते थे ॥५२॥ फिर छठीं चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों घोड़सवार योरोंको देखते थे ॥५३॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे । वहाँ पालकीसे उत्तरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥५४॥ दाहिनी ओर सिंहासनको प्रणाम करके शनैः शनैः सीढ़ियोंसे चढ़कर सिंहासनपर बैठते थे ॥५५॥ वह सिंहासन छव्से सुशोभित रहता था ॥५५॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण, छत्र लेते, भरत चमर लेते, पंखा शत्रुघ्नजी लेकर खड़े होते और हनुमानजी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे । इनके सिवाय सुग्रीव जलकी झारी, विभीषण एक सुन्दर-सा दर्पण, अङ्गद ताम्बूलका पात्र और वस्त्रकी सन्दूक जाम्बवान् लिये रहते थे । राम पीठपर तकिया लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके पीछे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर शत्रुघ्न, सामने पवनकुमार, वायथ्य कोणमें सुग्रीव, ईशान कोणमें विभीषण और आम्रेय कोणमें अङ्गद खड़े होते थे ॥५६-६०॥ नैऋत्य कोणमें जाम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर खड़े रहते थे । रामचन्द्रजीके आगे सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर खड़े रहा करते थे ॥६१॥ रामके दाहिने बायें दोनों ओर एक ऊँचे आसनपर मुनिगण बैठते थे । सामने हजारों वेश्यायें नाचती थीं ॥६२॥ इसके बाद वीरगण और फिर दूतगण खड़े रहा करते थे । समस्त ऋषीश्वर तथा दोनों राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥६३॥ रामके मित्र तथा राजे रामके आज्ञानुसार बैठते थे । जो नगरके मुख्य निवासी थे, वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥६४॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें खड़े ही रहना पड़ता था । उन सबोंके बीचमें रामकी एक अनुपम शोभा होती थी ॥६५॥ सेवक आदिमेंसे कोई भी नहीं बैठता था । उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे । इस प्रकार सभामें बैठ और नाना प्रकारके राजकार्य करके भाइयों और बेटोंको कितने ही काम सौफ्कर विविध प्रकार-

प्रत्युद्गम्य तोयहस्ता तत्प्रतीक्षां चकार मा । रामोऽपि पूर्वलोकान्समकक्षास्त्वनुक्रमात् ॥६९॥  
 प्रविशन्सकलानाजां ददौ तास्तान्स्वतोषयत् । ततोऽग्रे वन्धुभिर्गेहं पुत्राम्ब्यां संविवेश सः ॥७०॥  
 ददर्श जानकीं रामः पीतकौशेयधारिणीम् । साऽपि रामं यथौ सीता कृज्जयाऽवनतानना ॥७१॥  
 वक्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नानालङ्कारसंयुक्ता वरनुपुरनिःस्वना ॥७२॥  
 ततो रामो जलं स्पृष्टा धृत्वा सीताकरं मुदा । लक्ष्मणादीन्संविसर्ज्य सीतागेहं विवेश सः ॥७३॥  
 बहिर्दृष्टं श्रुतं वाऽपि यद्यत्कौतुकमुत्तमम् । तत्सर्वं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥७४॥  
 ततः सर्वानि समाहृय भोजनार्थं समुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नं कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥७५॥  
 तर्पयित्वा पितृश्चापि नैवेद्यान् शम्भवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं विधाय सः ॥७६॥  
 दत्त्वा भूतबलिं चापि पितृश्चापि स्वधेति च । बहिस्त्यक्त्वा काकबलिं त्वतिथीन्पूज्य सादरम् ॥७७॥  
 यतीश्च ब्राह्मणान्पूज्य हेमपात्रेषु राघवः । परिवेष्टितेषु जानक्या त्रिपदासु धृतेषु च ॥७८॥  
 तैः सर्वैभोजिनं चक्रे स्तुषाभिर्वीजितो मुदा । करशुद्धिं ततः कृत्वा भूतबलात्मम् ॥७९॥  
 ददौ तेभ्यो दक्षिणाश्च विप्रेभ्यो रघुनायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ शैः ॥८०॥  
 एतस्मिन्नांतरे सीता भूतबला रामान्तिकं ययौ । वीजयामास श्रीरामं मञ्चकस्थं पुरःस्थिता ॥८१॥  
 चकार निद्रां श्रीरामो मञ्चके सीतया सह । ता दास्यो वीजयामासु दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥८२॥  
 ततः प्रबुद्धा सा सीता प्रबुद्धोऽभूद्रमापतिः । सारिभिः सीतया क्रीडां तथा बुद्धिवलेन हि ॥८३॥  
 नानाकुत्रिमसैन्येश्वाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राघामण्डपाधो जलयन्त्रादिकौतुकम् ॥८४॥  
 इष्टा पक्षिकुलान्सर्वान्पञ्जरस्थान्दर्श सः । गत्वा सोपानमागेण प्रासादाग्रे पुरीं निजाम् ॥८५॥

के कौतुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आते थे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस समय गोमुखादि बाजे बजने लगते थे । उन बाजोंको सुनकर घबड़ायी हुई सीता हाथमें जलकी ज्ञारी लेकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करने लगती थीं । राम भी पहलेकी तरह सातों चौक लौटकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चलते हुए सब लोगोंको प्रसन्न करते जाते थे । फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़ते हुए अपने भयनमें जाते थे ॥ ७० ॥ वहाँ पीले रङ्गके रेशमी कपड़े पहने सीताको देखते और सीता भी लज्जाके मारे सिर झुकाये अपने तिरछे नेत्रकटाक्षोंसे रामको मुग्ध करती हुई सामने जाती थीं । उस समय सीताके अलङ्कारों और नूपुरोंकी अनेक प्रकारकी झनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-पैर धोते, कुल्ला करते और सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़कर उठते थे । तब लक्ष्मण आदिको विदा करके सीताके महलोंमें जाते थे ॥ ७३ ॥ वहाँपर बाहर जो कुछ कौतुक देखे रहते, वह सब एक-एक करके सीताको सूनाते हुए उन्हें प्रसन्न करते थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंको भोजनका बुलावा भेजते और स्वयं स्नान करके मध्याह्नकालीन कर्म करते थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तपेण करके शिवजीके लिये नैवेद्य अपेण करते थे । फिर बलिवैश्वदेव करते और काकबलि आदि देते थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वघा' शब्दका उच्चारण करके तृप्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आदरपूर्वक अतिथियोंका सत्कार करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और यतिथियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सामने तिपाईपर रखें हुए सुवर्णके पात्रोंमें जानकीके हाथों परोसे अनेक प्रकारके पकवानोंको सब लोगोंके साथ खाते थे । उस समय सब पुत्रवधुयों उन लोगोंका पंखा झला करती थीं । भोजन करनेके पश्चात् हाथ धोते और उत्तम ताम्बूल खाकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देते थे । फिर सी पग चलकर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाते थे ॥ ७८-८० ॥ इसी बीच सीता भी भोजन करके रामके पास पहुँच जातीं और वहाँ मञ्चके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ शश्यापर शयन करते थे, तब दासियाँ उनपर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जातीं और राम भी जाग जाते थे । तब राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चौसद आदिके खेल खेलते थे । फिर अंगूरको ज्ञाढ़ीके नीचे बने

वनारामान्वितां दृष्टा हद्वीथ्याऽतिरंजिताम् । शनैर्यौ प्रभुगोष्ठुं नानधेनूर्ददर्श सः ॥८६॥  
 तां सम्प्रेष्य गृहं सीतां स्वदासीपरिवेष्टिताम् । द्वारांतिकं ययौ रामस्तत्र ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥  
 चकुः प्रणामं श्रीरामं तैः सहैव शनैः शनैः । वाजिशालां ययौ रामो दृष्टा तत्र स वाजिनः ॥८८॥  
 गजशालामुष्टशालां दृष्टा रामः शनैः शनैः । ददर्श शस्त्रशालां च व्याघ्रशालां प्रभुर्यौ ॥८९॥  
 दृष्टाऽथ शिविकाशालां माहिषेयौ विलोक्य च । महिषोवृष्टशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥  
 आरुह्य स्यंदने रामः शनैः सर्वैर्हिर्यौ । सप्तकक्षाः समुल्लंघ्य तत्रस्थैः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥  
 सर्वे युक्तश्चाष्टमां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र यन्त्राणि श्रेष्ठानि शतश्नीः शकटस्थिताः ॥९२॥  
 तृणकाष्ठादिसञ्चानि दूतस्थानान्यपश्यत । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥  
 शस्त्रपाणीन्वारणस्थान् तुरगस्थाननेकशः । रक्षयन्ति हि ये सर्वे स्त्रीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥  
 एवं स नवकक्षाश्च समुल्लंघ्य रघूत्तमः । वहिः स सञ्चनो दृष्टा परिखाः सजला नव ॥९५॥  
 शनैः पश्यन्नयोध्यां तां राजमार्गे मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुरुषारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥  
 नवकक्षास्त्वयोध्यायाः समुल्लंघ्य शनैः प्रभुः । परिखाश्च नवापश्यत्तोयवहृष्टादिपूरिताः ॥९७॥  
 ततो नानावनारामकीतुकानि रघूत्तमः । पश्यन्स बन्धुपुत्रैश्च सरख्वास्तीरमाययौ ॥९८॥  
 तत्र स्थित्वा सुनौकायां क्रीडां कुत्वा कियत्कणम् । नद्यास्त्रेसभायां स तस्थौ सैन्ययुतः प्रभुः ॥९९॥  
 तत्रापि वारवेश्यानां पश्यन्त्यानि राघवः । कियत्कालमतिकम्य ययौ शीघ्रं ततः पुरीम् ॥१००॥  
 ततः शनैः सभां गत्वा पूर्वोक्तेषोपचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवितश्च तस्थौ सिंहामनोपरि ॥१०१॥  
 ततः कुत्वा द्युनेकानि नानाकार्याणि राघवः । आज्ञाप्य बन्धुपुत्रांश्च पूर्ववत्स गृहं ययौ ॥१०२॥

फौवारे आदि देखते थे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ फिर पींजरोंमें पाले हुए पक्षियोंको देखते थे । तत्पश्चात् सीढ़ीके मार्गसे सर्वोच्च प्रासादपर चढ़ जाते और बहासे बनों और बगीचोंसे अलंकृत, बाजारों तथा गलियोंसे अतिरंजित अपनी अयोध्यापुरीको देखते थे । फिर धीरे-धीरे गोशालामें जाते और वहाँकी गौओंको देखा करते थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर दासियों समेत सीताको घर भेज देते और स्वयं फोहारेकी ओर जाते थे । वहाँ लक्ष्मण आदि भ्राता रामको सविनय प्रणाम करते थे ॥ ८७ ॥ फिर उनको साथ लेकर राम धीरे-धीरे अश्वशालाको जाते । वहाँ धोहोंको देखकर ॥ ८८ ॥ गजशाला और उष्टुशालाको देखते हुए अस्त्रशाला तथा व्याघ्रशालाका अवलोकन करते थे ॥ ८९ ॥ फिर शिविकाशाला और महिषीशालामें जाकर शिविकाओं तथा भेंसोंको देखनेके बाद रथशाला देखते थे ॥ ९० ॥ तत्पश्चात् एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बाहरकी तरफ जाया करते थे । बादमें महलके सातों चौकोंका लांघते एवं पहलेकी तरह उपस्थित सब लोगों देखते हुए आठवें फाटकवाले आँगनमें पहुँचते थे । वहाँपर लड़ाइयोंमें काम आनेवाले कितने ही यन्त्र तथा बहुत-सी तोपें रक्षी रहती थीं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उन्हें देखकर दूतोंके निवाससंस्थान तथा तृण-काष्ठादिके संग्रहभवनको देखनेके अनन्तर नवें आँगनमें पहुँचते थे ॥ ९३ ॥ वहाँ यह देखते थे कि हाथमें शस्त्र लिये थांडे और हाथीपर सवार होकर सिपाही रात-दिन अपने-अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार नवों कक्षाओंको लांघकर कोटके चारों ओर जलसे भरी बाहरकी नौ खाइयोंको देखते थे ॥ ९५ ॥ इसके बाद राजमार्गसे चलकर अयोध्याको देखते हुए शीघ्र पुरुषारपर पहुँचते और वहाँपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते थे ॥ ९६ ॥ फिर अयोध्याकी नौ कक्षाओंको लांघकर जल और अग्निसे परिपूर्ण नौ परिखाएँ और अनेक बाग-बगीचेके कौतुक देखते हुए अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचते थे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देरतक संर करके सेनाके शिविरमें जाते और सैनिकोंके साथ सभामें बैठते थे ॥ ९९ ॥ वहाँ कुछ समय तक बैश्याओंके नृत्य देखकर पुरीमें लौट आया करते थे ॥ १०० ॥ तदनन्तर सभामें जाते और पूर्वमें जो कह आये हैं, उन सबके साथ लक्ष्मणादि भ्राताओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते थे ॥ १०१ ॥ वहाँ अनेक कार्योंको करनेके पश्चात् भाइयों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायकालेततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधाद्यैरुपचारैश्च शिवं सम्पूज्य भक्तिः ॥१०३॥  
 कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्राभ्यां वन्धुभिः सह । शिविकायां पुनः स्थित्वा देवतायनेषु च ॥१०४॥  
 साकेतस्थेषु श्रीरामो गत्वा नत्वा शिवादिकान् । नानाविधान्देवसंघान् फलैः पृष्ठैरपूजयत् ॥१०५॥  
 देवालयेषु सर्वेषु सुराणां तेषु राघवः । शृण्वन्नानाकौतुकानि परां मुदमवाप सः । वाहनारूढदेवानामपश्यत्कौतुकानि च ॥१०६॥  
 पश्यन्नानाकौतुकानि परां मुदमवाप सः । वाहनारूढदेवानामपश्यत्कौतुकानि च ॥१०७॥  
 ततो ययौ ब्राह्मणेन हड्डमार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विवेश निजमंदिरम् ॥१०८॥  
 ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रबन्धुभिः । सार्धयामां निशां नीत्वा रतिगीहे विवेश सः ॥१०९॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पृष्ठशश्यादि सम्पाद्य तत्प्रतीकां चकार सा ॥११०॥  
 तावदायांतमालोक्य सहसोत्थाय जानकी । घृत्वा हस्ते राघवेन्द्र रतिशालां निनाय सा ॥१११॥  
 सर्वाविसर्ज्य दासीश्च मुक्ताजालान्यनेकशः । समंततो विमुच्याथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११२॥  
 ततस्तां मैथिलीं घृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । नाना क्रीडां विधायाध तस्थौ रामः स मंचके ॥११३॥  
 ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जिताऽन्नवीत् । राम राजोवपत्राक्ष किञ्चित्पृच्छामि मे वद ॥११४॥  
 कुशजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥  
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मित प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥  
 ततस्वं ते वदाभ्यद्य तच्छृणुष्व सुमध्यमे । किमर्थं च वहन् पुत्रास्त्वत्र त्वं वाञ्छसि प्रिये ॥११७॥  
 सद्यशे बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भूवि । कदैकस्य दुराचारात्कुलस्य लाञ्छनं भवेत् ॥११८॥  
 अतएव ममेच्छा न बहुपृत्रेषु मैथिलि । मदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥  
 पुत्रस्त्वेकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुलं भूषयेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दुष्टास्ते कुमयो यथा ॥१२०।

की आज्ञा देकर स्वयं भी अपने घर चले जाते थे ॥१०२॥ सायकालके समय विषिपूर्वक सन्ध्या और हवन करके धूप-दीप-नान्दा-दि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करते थे ॥१०३॥ फिर भोजन करके पुत्रों तथा बांधवोंके साथ पालकीमें बैठकर देवताओंके मन्दिरोंको जाते थे ॥१०४॥ साकेतपुरी ( अयोध्या ) के सब मन्दिरोंमें जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करते थे ॥१०५॥ उन्हीं देवालयोंमें थोड़ी देर तक हरिकीतंन सुनते तथा गणिकाओंका नृत्य देखते थे ॥१०६॥ इस प्रकार विविध कौतुकोंको देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंकी सवारीके कौतुक देखते थे ॥१०७॥ इसके बाद सवारीपर चढ़कर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते हुए राजमार्गसे अपने घर जाते थे ॥१०८॥ फिर पुत्रों तथा भ्राताओंके साथ कुछ देरतक इघर-उघरकी बातें करते और ढेर पहर रात बीतनेके बाद रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥१०९॥ उघर सीता अपनी रतिशालामें फूलोंकी शव्या विछाकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥११०॥ वे रामको बाते देखतीं तो तुरन्त आगे बढ़तीं और उनका हाथ पकड़कर रतिशालाके भीतर ले जाती थीं ॥१११॥ वहीं सीताको सेवामें उपस्थित दासियोंको विदा करके रामचन्द्र कमरेकी सारी खिड़कियां खोलकर शव्यापर बैठते थे ॥११२॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी बैठाते और विविध क्रीडां करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥११३॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देख-कर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा—हे राजोवपत्राक्ष राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुशके जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भं क्यों नहीं रहता ? इसका कारण बतलाइये ॥११४-११५॥ इस प्रकार सीता-का प्रश्न सुनकर मुस्कुराते हुए राम कहने लगे—हे कमलनयनी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं सब कारण बतलाता हूँ ॥११६॥ हे सुमध्यमे ! तुम सावधान होकर सुनो । हे प्रिये ! पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम अधिक पुत्र क्यों चाहती हो ? ॥११७॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है । बहुतेरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो सारे कुलपर लाङ्छन लग जाता है ॥११८॥ इसलिये हे मैथिलि ! मुझे अधिक पुत्रोंकी इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥११९॥

द्वावेवास्तां कदाचिच्च यथा नेत्रे भुजौ यथा । यथा तौ शशिमूर्खों च यथाऽहं लक्ष्मणस्थाः ॥१२१॥  
 तवापि जातौ द्वौ पुत्रौ माऽग्रेऽतु संततिस्त्वतः । ततः प्राह पुनः सीता न जाता दुहिता मा ॥१२२॥  
 एकाऽपि कारणं तत्र किमस्ति तद्गदस्व मात् । तत्प्रोत्तावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह राघवः ॥१२३॥  
 त्वत्कल्या च मया कस्मै देयाऽत्र जगदीत्तले । मत्तमामानो नृपः काऽस्ति सत्तदीपपतिषंहान् ॥१२४॥  
 यस्य पल्यै त्वया कार्यै शिरसा नमन ततः । कोदरोऽस्ति जगत्पां हि नृपहर तत्प्रो मदान् ॥१२५॥  
 प्रक्षालनीयौ चरणौ विवाहे यस्य वै यथा । अतएव ममेच्छाऽनुकल्यायाप्रिये नो प्रिये ॥१२६॥  
 कुशादीनां तु याः कन्यास्तास्ते किं नैव वालिकाः । किं यौवनमदात्मीते मोहं प्राप्तसि भूतले ॥१२७॥  
 आत्मानं विस्मृताऽस्यद्य त्रैलोक्यजननीयिति । यदत्र विष्वे स्त्रीरूप दृश्यते तत्पांशजद् ॥१२८॥  
 पौरुषं दृश्यते यद्वच तत्त्वं सर्वं ममांशजद् । अत्र स्त्रीपुरुषा ये च ते पुत्रदुहितास्तत्र ॥१२९॥  
 एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां ब्रजेन् । इति यद्वचनं सीते सामान्यं विद्धि नो वरम् ॥१३०॥  
 एळः स तनयो धन्यः कुल यस्तारयेत्तिजद् । कुभितुल्याश्च ते पुत्राः शतशा दुष्टमार्गगाः ॥१३१॥  
 इति यद्वचनं सीते वरिष्ठ तत्प्रतुं तुधैः । अन्यते कारणं वच्चिम यस्मात्त वहवः सुताः ॥१३२॥  
 मया नैवापिंतास्त्वत्र तच्छुणुष्व शुचिस्मिते । विनोदात्ते वदाम्यद्य माऽन्यथा कुरु मद्वचः ॥१३३॥  
 वहुपुत्रैश्च नारीणां तारुण्य स्थास्यते न हि । मत्वेति तत्र तारुण्यच्छेदिनी वहुसन्ततिः ॥१३४॥  
 न मयाऽत्रापिंता सीते गुण्य विद्रोति मे प्रिये । यदीच्छाऽस्ति वहनां ते तनयानां विदेहजे ॥१३५॥  
 तद्विं ते द्वापरे कृष्णरूपेण द्वारकापुरि । दश पुत्रान् प्रदास्यामि तदा तेषां सुख भज ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रको इच्छा करना चाहिए कि जो अपने अलोकक मुण्डोंसे कुलको विभूषित कर सके । कोड़ों-की तरह व्यर्थ जन्म लेनेवाले बहुतेरे दुष्ट पुत्रोंसे क्या लाभ ॥१२०॥ बस, ये दोनों चिरञ्जीवी रहें । ये मेरे दो नेत्र, दो भुजा, चन्द्र-मूर्ख और हमारे तथा लक्ष्मणके सहश हैं । तुम्हारे दो बेटे तो हो हो गये हैं, अब और सन्तति न हो यही ठीक है । फिर सोताने कहा—लेकिन हमारो काई कन्या क्यों नहीं हुई ? ॥१२१॥१२२॥ इसका क्या कारण है ? सा हमसे कहिये । सोताका यह प्रश्न सुनकर रामने कहा कि यदि तुम्हारे कन्या हता तो मैं किसको देता ? संसारमें कौन ऐसा है, जो मेरा जामाता बन सक ? हमारे बराबर कौन राजा है, जो सातों द्वीपोंका अधीश्वर है ॥१२३॥१२४॥ जिसको स्त्रीको तुम मस्तक झुकाकर प्रणाम कर सका । संसारमें कौन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहम् जिसके पीर मैं अपने हाथोंसे धंता । इसा कारण मैंने पुत्रोंकी इच्छा नहीं की ॥१२५॥१२६॥ फिर कुश आदिके जो कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, वे क्या तुम्हारी नहीं है ? हे सीते ! योवन-के मदसे तुम पागल तो नहीं हो गयी हो ? ॥१२७॥ जो तानों लोकोंकी माता हाकर भी ऐसी ऊटपटांग बात कर रही हो । इस संसारमें जितना स्त्रीरूप दीखता है, वह सब तुम्हारे ही अंशसे जायमान हुआ है ॥१२८॥ संसारमें जितना भी पुरुषरूप है, वह मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है । यहाँ जितने पुरुष-स्त्री हैं, वे सब तुम्हारे लड़के और लड़कियाँ हैं ॥१२९॥ शास्त्रोंमें जो यह बात कही गयी है कि “एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए । सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सपूत निकल आये, जा गयामें धाढ़ करके कुलका उद्धार करे ।” यह एक साधारण बात है । यह कोई श्रेष्ठ उक्ति नहीं कही जा सकती ॥१३०॥ मेरी रायमें तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र हो । दूषित मार्गपर चलनेवाले कोड़ेकी तरह उत्पन्न संकड़ों बेटोंसे कोई लाभ नहीं ॥१३१॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानों-ने उसे श्रेष्ठ माना है । दूसरा कारण भी बतलाता है कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये । हे शुचिस्मिते ! मैं विनोदवश इस बातको कह रहा हूँ । इसे व्यर्थ मत जाने देना, ठोकसे समझना ॥१३२॥ बहुत पुत्रोंके होनेसे लक्षणाई नहीं रह जाती । बहुत सन्तान होनेसे तुम्हारे योवनका नाश हो जाता ॥१३३॥१३४॥ यहो सोचकर मैंने अधिक सन्तति नहीं उत्पन्न का । यह गुप्त रहस्य जानना । हे विदेहज ! फिर भी बहुत सन्तान पानेकी हो तुम्हारी इच्छा हो तो द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं तुम्हें

कन्यामपि तदैका तेऽहं दास्यामि न संशयः । तदा ते बहुपूर्वैश्च तारुण्यं स्थास्यते न हि ॥१३७॥  
अतः स्त्रीणां सहस्राणि षोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया सह करोम्यहम् ॥१३८॥  
तदा वहनां पुत्राणां स्त्रियाणां त्वं सुखं भज । अहं चापि वहुस्त्रीणां तदा सौख्यं भजामि वै ॥१३९॥  
इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना । राघवं हविंता प्राह वाङ्चातुर्यं कुतः प्रभो ॥१४०॥  
एतल्लङ्घं त्वया राम येन रञ्जयसीह माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्य दिनचर्या रमापतेः ॥१४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
उत्तरार्द्धे रामदिनचयविण्ठनं नामैकोनविशः सर्गः ॥ १९ ॥

## विंशः सर्गः

( भगवानके विविध अवतार )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठ हि प्रभाते चान्नबीलुभः । किंचित्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर ॥ १ ॥  
सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश्च प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥ २ ॥  
यदाऽस्माभिनिश्चायां हि सर्वैर्निंद्रा विधीयते । तदा संश्रूयते कर्णे भस्त्रवत्कस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥  
अमुं मत्संशयं छिद्धि परं कीरूहलं गुरो । लवस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमथान्नबीत् ॥ ४ ॥  
बहुथश्च ब्रह्महत्याश्च रावणे न कुताः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥  
रावणो रामहस्तेन बधान्मुक्तिं गतः श्वणात् । रामचिंतनपुण्येन वैरबुद्ध्या कुतेन च ॥ ६ ॥  
आत्मनः सकलं पापं तेन दग्धं पुरेव हि । देहेन न कुतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥  
सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कुतम् । न कुता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तिः ॥ ८ ॥

दस बेटे दूँगा । उस समय तुम बहुत सन्तानका भी सुख भोग लेना ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूँगा । इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हारा योवन ढल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियां भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगी और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग लूँगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर साताने मुसकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातचोत करनेका इतना चतुराई कहासे सीखी ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो । इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें कों और दोनों एक दूसरेका आँलिगन करके आधी रातके समय सो गये । हे शिष्य ! मैंने इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत‘ज्योत्स्ना’ भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे एकोनविशः सर्गः ॥ १९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सबेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, उसे आप बताइए ॥ १ ॥ यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ । फिर भी संसारी लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें धौंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए । इसका मुझे बड़ा कीरूहल है । लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—॥ ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुत-सी ब्रह्महत्याएँ की थीं, हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उनके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण ज्ञान भरमें मुक्त हो गया । आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

न देहेन न निष्कामं तपश्चर्यात्रितं कुतम् । न देहः श्रमितस्तस्य शीतोष्णसहनादिभिः ॥१॥  
 एतादृशस्तस्य देहो बहुव्राक्षणहिंसकः । लङ्घायां ज्वलतेऽद्यापि निशायां श्रूयतेऽत्र सः ॥२०॥  
 ज्वालानां भस्त्रवच्छब्दो यः पृष्ठो मां त्वया लव । जनशब्दाद्विने नैव श्रूयते ऽत्र जनैः सदा ॥२१॥  
 चितायां यस्य चाद्यापि ब्रायुपुत्रेण प्रत्यहम् । काष्ठभारशतं नीत्वा लङ्घायां क्षिप्यते मुहुः ॥२२॥  
 यदा तत्पापशांतिः स्यात्तदा भस्मीभविष्यति । अन्यत्ते कारणं वर्त्तिम् तच्छुणुञ्ज शिशो लव ॥२३॥  
 देहान्ते रावणेनापि रामाय याचितो वरः । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥२४॥  
 स त्वया मे वरो देयस्तच्छ्रुत्वा राघवोऽत्रवीत् । त्वदेहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना भूवि ॥२५॥  
 श्रोष्टवन्ति सप्तदीपेषु तेन ते स्मरणं सदा । भविष्यति हि सर्वेषां ब्रह्मांडांतनिवासिनाम् ॥२६॥  
 एवं श्रुत्वा दशास्यः स वरं रामे लयं यथो । एवं यच्च त्वया पृष्ठं तत्पर्यं कथितं मया ॥२७॥  
 गुरोरिति वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लब्दोऽपि च । स्वगेहं गतसंदेहः प्रययौ शिविकास्थितः ॥२८॥  
 एकदा बन्धुभिर्गेहे पुत्राभ्यां सीतया सह । मुनिभिर्गुरुणा रामः संस्थितः प्राह हर्षितः ॥२९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मृष्णवंतु मुनयः सर्वे सर्वे मृष्णवंतु बन्धवः । पुत्रो सीता मन्त्रिणश्च सर्वाः श्रृण्वन्तु मातरः ॥२०॥  
 यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि सीतया । न तथाऽन्येष सर्वेषु ह्यवतारेषु वै कदा ॥२१॥  
 अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया धृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विश्वते ॥२२॥  
 सप्तावतारास्तेष्वेव श्रेष्ठास्त्वत्र मया धृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया भूवि ॥२३॥  
 शंखासुरो महादैत्यः पूर्वं जातो महोदधी । येन वेदा हृताः सर्वे सत्यलोकाद् कृते युगे ॥२४॥  
 तदर्थं मत्स्यरूपेण ह्यवतारो मया धृतः । तं हृत्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपं मया धृतम् ॥२५॥

चुका था, किन्तु शरीरसे उसने कभी देवताओंको नमस्कार भी नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सफाई को, न उस शरीरसे तीर्थयात्रा की, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्या की और न शीत-उष्णको हो सहन करके शरीरसे परिश्रम किया । द्वाहृणोंकी हत्या करनेवाली उसकी देह आज भी लङ्घामें जल रही है । उसोका शब्द प्रत्येक मनुष्यको सुनाई देता है । ज्वालाकी घकघकाहटका निनाद घोरनीकी तरह सुनाई पड़ता है ॥ ८-१० ॥ दिनके समय मनुष्योंके कोलाहलसे वह शब्द नहीं सुन पड़ता । आज भी हनु-मानूजीको रोज सौ भार लकड़ी उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होंगे, तब कहीं उसका शरीर जलेगा । हे वच्चे लव । मैं एक दूसरा कारण भी बतलाता हूँ, सौ सुनो ॥ १३ ॥ अपने देहान्तके समय रावणने रामसे यह वरदान मांगा था कि आप हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली आगका घक-घक् शब्द सातों द्वीपोंके हर एक व्यक्तिको मुनाई पड़ता रहेगा । इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वस्त्रान पाकर वह रामके शरीरमें लीन हो गया । इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, सौ सब कह सुनाया ॥ १७ ॥ गुरुकी बात सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब भाइयों, पुत्रों, सीता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे । प्रसङ्गवश हृषित होकर राम कहने लगे—॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब भाई, दोनों बेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएं सब लोग मेरी बात सुनें ॥ २० ॥ मैंने इस अवतारमें सीताके साथ जितना सुख भोगा है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं भोगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यसाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे सात अवतार मुख्य हैं, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले महोदधिमें एक शङ्खासुर नामका दैत्य हुआ था, जो सत्यलोकसे चारों देवोंको चुसा ले गया था । उसके लिये मैंने मत्स्यरूप धारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्य तथा तिर्यक् ( वराह ) योनिमें कोई विशेष सुख नहीं था ।

कि सुखं इपत्रात्यं हि तिर्यग्योन्यपि गहिना । अतस्तदिष्वन्नवतारे न स्थितं हि चिरं मया ॥२६॥  
 ततः समृद्धमध्ये मउजतं मन्दराचलम् । दृष्टा धृत्या कुर्मरूपं स्वपृष्ठे पर्वतो धृतः ॥२७॥  
 तत्त्वापि गहिनं रुदं मन्या तैव चिं धृतम् । किं नारिचरजात्यां हि सुखं तत्र भवेज्जले ॥२८॥  
 ततो दृष्टा माग्ने हि मउन्तीं पृथिवीं मया । क्रोडरूपं महदधृत्या दंष्ट्रायामवनिधृता ॥२९॥  
 मम पृथ्वीति संस्पर्धां हिरण्याक्षो मया हतः । किं सुखं पशुयोन्यां हि गहितायां भवेज्जले ॥३०॥  
 अतस्तत्त्वमित्रावतारे न लब्धं हि सुखं मया । प्रह्लादवचनात्स्तम्भाक्षारविहस्वरूपधृक् ॥३१॥  
 अवतीर्णस्त्वहं भूम्यां हिरण्यकशिष्यः क्षणात् । मया तदा हतः क्रोधात्तद्रूपमतिमास्वरम् ॥३२॥  
 यद्ग्रायान्निकटं कोऽपि प्रह्लादच विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्तासुखस्य का ॥३३॥  
 तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहयोन्यां तु किं सुखम् । मयाऽणुभूतं विपुलं सुखेच्छारुपिमाप न ॥३४॥  
 ततो वलेमोहिनार्थं खर्वरूपं तु वामनम् । धृत्या कुर्मा त्रिपद्माक्षं भूमेः पातालगः कृतः ॥३५॥  
 तत्र किं मुनिदेहेन वने शौर्यं भवेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्यं देहमप्यतिसुन्दरम् ॥३६॥  
 पुनर्दिप्रोद्धवेनैव जामदग्न्यस्त्रहणिणा । एकविंशतिवारं हि निःक्षत्रा पृथिवी कृता ॥३७॥  
 सहस्रार्जुननामा स महावीरो हतस्तदा । तत्त्वापि कोधसंयुक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥३८॥  
 सुखवार्ता भुनीनां हि का तत्र वनचारिणाम् । ज्ञात्वेन्यं जन्मना तेन तपश्चर्या मया कृता ॥४०॥  
 किं सुखं तपतस्तत्र वने मे जातमुत्तमम् । एवं पद्मवै धृताः पूर्वमवतारा मया भुवि ॥४१॥  
 न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र कापि भुनीश्वराः । द्वापरेऽग्रे कृष्णरूपं गोकुलेऽत्र करोम्यहम् ॥४२॥

इसीलिये उस अवतारमें उम रूपसे मैं जगदा दिनोंतक नहीं रहा ॥ २६ ॥ इसके बाद समुद्रमन्यनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको ढूबते देखा, तब कूर्म ( कछुए ) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ २७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिनोंतक उस रूपमें नहीं रहा । भला जलचर जाति तथा जलमें रहकर मैं सुखी कैसे हो सकता था ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें ढूबती देखकर मैंने क्रोड ( शूकर ) रूप धारण करके पृथ्वीको अपने दौतोंपर रखकर उठाया ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा राज्य है । अतएव यह पृथ्वी मेरी है । इस प्रकार ढींग मारनेवाले हिरण्याक्ष नामक असुरका मैंने संहार किया । पशुयोनिमें रहकर भी हमें जीई विषेष सुख नहीं मिला । इसलिए उस रूपको भी जलदी ही त्याग दिया । फिर प्रह्लादके कथनानुगार नृसिंहरूप धारण करके खंभेसे निकलना पड़ा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय अदतार लेकर मैंने क्षणमात्रमें हिरण्यकशिष्यको समाप्त कर दिया । मेरा वह रूप बढ़ा तेजस्वी था ॥ ३२ ॥ उसके भव्यसे प्रह्लादके सिद्धाय मेरे पास जानेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं थी । बताओ, ऐसी योनिमें मैं सुखी कैसे रह सकता था । उस समय मेरा वह क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी । उस योनिको मैंने अनुभव कर लिया । इच्छा थी कि इस रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् बलिको नीचा दिखानेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तीन पैरोंमें सारी त्रिलोकी नापकर बलिको पाताल लोकमें भेज दिया ॥ ३५ ॥ उस समय भी एक तो मुनिका वेष, दूसरे बनोंमें रहना, तीसरे शरीर भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ ३६ ॥ वनचरकी दशामें पृथ्वीपर रहकर सुख कहीं था ? इसी लिए उस रूपको भी शीघ्र त्यागकर मैं स्वर्गलोकको लौट गया ॥ ३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अपतार लेकर इककीस बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर डाला । उसी समय महावीर सहस्रार्जुनका वध किया । उस समय भी एक क्रोधी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वनमें रहनेवाले मुनियोंको भला कब सुख मिल सकता था । यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्या ही की ॥ ४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें बनोंमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा, इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं । इस तरह मैंने छः-

नेदृशं तत्र भोक्ष्यामि सुखं शृणुत विस्तरात् । कारागृहस्थितिः पित्रोर्जन्मादावेव मे भवेत् ॥४३॥  
 मातृपितृविहीनश्च तदा स्थास्यामि शैशवे । पारकीये नन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥  
 गोपवेषस्य किं सौख्यं गोपृष्ठे भ्रमतो मम । स्त्रीगोनागाश्चपक्ष्यादि बहुःस्तत्र निहन्म्यहम् ॥४५॥  
 देवपत्नीवरात्कुर्यां परस्त्रीगमनादिकम् । नानाचौर्यादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥  
 मथुरायां हनिष्यामि सगजं कंसमातुलम् । तत्र दास्या रति कुर्यां नैष्टुर्यं गोपिकादिषु ॥४७॥  
 यद्गुक्ता गोपिकाः सर्वा रामो वन्धुर्भजिष्यति । अन्यच्च कालयनभयान्मे हि पराभवः ॥४८॥  
 न पराभवतो दुःखं किंचिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वस्थलं त्यक्त्वा तटाके सागरस्य च ॥४९॥  
 स्थास्यामि स्वल्पकालं हि चिरकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मध्यदेशे हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥  
 विना राज्येन किं सौख्यं पराज्ञावश्वर्तिनः । छत्रादिराज्यभोगाश्च तस्मिन् जन्मनि मे न हि ॥५१॥  
 बहुस्त्रीणामेकदेहस्तदाऽयं मे भविष्यति । तदा कासां सुखं देयं दुःखं कासां तदा मया ॥५२॥  
 एवं सदा व्यग्रचित्तस्तासां रंजनकमेणि । तत्र का सुखवार्ताऽस्ति निशायां भ्रमतो मम ॥५३॥  
 घटिकायां च पट्टिंशत्पंचशतगृहाणि हि । पर्यटन्नप्यष्टविंशत्स्त्रीगेहानि तदा मम ॥५४॥  
 शेषाणि गंतुं नैवास्ति कालो भानुरुदेष्यति । विंशद्वटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे सा गमिष्यति ॥५५॥  
 तदा मे भ्रमतो रात्रौ कुतो निद्रा कुतः सुखम् । यदा भवेत्त्रिशावृद्धिः किंचित्त्रिद्रां तदाऽप्नुयाम् ॥५६॥  
 यस्येच्छाऽस्त्यत्र दुःखं हि भोक्तुं तेन नरेण हि । कर्तव्या वहृच्च पत्न्यो द्रष्टव्यं तत्कलं ततः ॥५७॥  
 एवं भवेत् मे सौख्यं द्वापरे कृष्णजन्मनि । भविष्यत्यवतारस्य समाप्तिर्विप्रशापतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उन छहोंमें मुझे सुखका नाम भी नहीं मिला । आगे द्वापर युगमें इस पृथ्वीपर गोकुलमें कृष्णहुसे मैं अवतार लूँगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा सुख उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । सुनिए, उस अवतारका विवरण विस्तारपूर्वक आप लोगोंको बतलाता है । जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें रहेंगे ॥ ४३ ॥ शैशव कालमें ही माता-पितासे वियुक्त होकर एक अन्य व्यक्ति ( नन्द ) के घर गोकुलमें रहकर पलूँगा । उस गोपवेषसे गोओंके पीछे-पीछे धूमनेमें मुझे बया सुख मिलेगा ? फिर गो ( वत्सासुर ), स्त्री ( पूतना ), नाग ( कालिया ), अश्व ( केशी ) तथा पक्षी ( वकासर ) को मारँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ देवस्त्रियोंके वरदानसे परस्त्रीगमन आदि ( पाप ) करूँगा । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर लेनेके बाद मथुरा जाकर हाथी कुबलयापीडके साथ मामा कंसको मारँगा । वहाँ मुझे गोपियोंके साथ निहुराई करके दासी ( कुबड़ी ) के साथ विलास भी करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपियोंको मैने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें भोगेंगे । फिर कालयनके भयसे मुझे परास्त भी होना पड़ेगा ॥ ४८ ॥ पराजयसे बढ़कर संसारमें और कोई दुःख नहीं हो सकता । फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहेंगा । यह निश्चित है कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहेंगा । मध्य देशमें निवासस्थान न रहनेके कारण मेरे पास कोई राज्य भी नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेकी आज्ञामें रहनेसे भला क्या सुख मिल सकता है ? उस जन्ममें राजाओंकी उपभोग्य वस्तुयें छव-चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेंगे ॥ ५१ ॥ बहुत-सी स्त्रियोंके द्वीच मेरा अकेला शरीर रहेगा । उस समय रात-दिन यही चिन्ता रहा करेगी कि इनमेंसे किसे सुख दें और किसे दुःख । सदा मुझे उनका मनुहार करना पड़ेगा । भला रातभर एक घरसे दूसरे घरकी दौड़ मारनेमें मुझे बया सुख मिल सकता है ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उस समय एक घड़ीमें पाँच सौ छत्तीस घरोंका चबकर लगानेपर भी अट्टाईस घर छूट जायेंगे और यही सोचना पड़ेगा कि सूर्योदयका समय हो रहा है, अब किसीके यहीं जानेका समय नहीं है । इस तरह तीस घड़ीकी रातें बीतेंगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय रातभर धूमनेमें निद्रा तथा सुख क्योंकर मिल सकेगा ? हाँ, जब रात कुछ बड़ी होगी तो चाहे घड़ी आधी घड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस मनुष्यको संसारमें दुःख भोगनेको इच्छा हो, वह कई स्त्रियोंको रख ले और फिर देखे उसका फल ॥ ५७ ॥ भाव यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ सुख

ततो दैत्यान्यज्ञकर्मसक्तान्दृष्टा पुनस्त्वहम् । कलाच्च्रे बुद्धरूपं धरिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥  
 निजवाक्यैर्मतिस्तेषां दैत्यानां यज्ञकर्मतः । परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥  
 तदाऽहं मौनसाश्रित्य नलिनः केशलुञ्चकः । युगादिजीवधारी च सर्वेषाम्पृष्ठदेशकृत् ॥६१॥  
 अहिंसनवतं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् । तज्जन्मन्यतिदुःखं मे केशयुकामलादिना ॥६२॥  
 ततोऽग्रेऽहं धरिष्यामि कल्किरूपं महस्कले । अंते हृष्टा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥  
 भूत्वाऽत्र विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थितः । संहारं क्षणमात्रेण दुष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥  
 सोऽवतारो नातिचिरं मम स्थास्यति भूतले । न तत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥  
 प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रं तत् कृतं युगम् । पूर्ववच्च पुनस्तत्र श्वतारान्करोम्यहम् ॥६६॥  
 एवं नवावतारेषु न भूक्तं हि सुखं मया । अतस्त्वस्मिन्नवतारे सुखं भूक्तं यथेच्छया ॥६७॥  
 नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽत्रनीतले । पूर्वं भूतो ममाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥  
 समलोकाधिष्ठयं च नारी सीता च वर्तते । यत्रेमौ वालकौ पुत्रौ महार्षीरौ धनुर्धरौ ॥६९॥  
 यत्र त्वेते वंधवश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः । कामधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र ममान्तिके ॥७०॥  
 साक्षादयं वेदरूपो वसिष्ठस्त्वस्ति मे गुरुः । आर्यवितेऽपि पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥  
 राज्यभोगादिभोगानां भौत्काऽहं त्वत्र नोऽपरः । यत्र सत्यवतं मेऽस्ति यत्रैकदियितावतम् ॥७२॥  
 यत्रैकेनैव वाणेन मया बाल्यादिका हताः । यत्रैकैव हि सीताया मम शश्या न चापरा ॥७३॥  
 यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः । यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽज्ञनीसुतः ॥७४॥  
 सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममान्तिके । कोदण्डसदृशं चापं यत्र मेऽरिनिषृदनम् ॥७५॥  
 सूर्यवंशे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः । कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

नहीं मिलेगा । अन्तमें ब्राह्मणके शापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर कलिमें दैत्यों को यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमोहक बौद्ध अवतार लूँगा ॥ ५९ ॥ अपनी बातोंसे उन दुष्टोंकी मति यज्ञकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूँगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनव्रत वारण करके मैले-कुचैले कपड़े पहने और कितने हो जूँ आदि जीवोंको शरीरमें पाले हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा । सबको अहिंसाव्रतका अभिनय दिखाऊँगा । उस जन्ममें वालोंमें पड़े हुए जूँएं, कपड़ोंके चीलर तथा खटमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कलियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होते देखकर मैं कल्कि अवतार लूँगा ॥ ६३ ॥ उस जन्ममें एक विप्रके यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार कर डालूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों । वह अवतार भी चिरस्थायी नहीं होगा । अतएव उसमें भा मैं कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग आ जायगा और मैं पहलेकी तरह फिर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा । किन्तु इस अवतारमें मैंने अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुश-लव जैसे महावीर और धनुर्धरी पुत्र, तीनों लोकोंको जीतनेवाले भ्राता और कामधेनु आदि सात रत्न विद्यमान हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जहाँ वेदके साक्षात् स्वरूप वसिष्ठ जैसे गुरु हैं, आर्यवितं जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगका प्रतिद्वन्द्विता करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सत्यका न्रत है, जहाँ अटल एकपत्नीव्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक वाणसे शत्रुको मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी ओर हमारी एक शश्या है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण वेरोक-टोक जहाँ चाहें, तहाँ आ जा सकते हैं । जहाँ कि पुष्पकविमान जैसी सवारी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका वाण करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, दशरथ जैसे पिता और कौसल्या जैसी

सुमेधासदृशो यत्र मे श्वथूः स्नेहवधिनो । विदेहः शशुरो यत्र विद्यादो यत्र गाधिजः ॥७७॥  
 लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरयुर्यत्र मे नदी । पार्श्वगा ह्यङ्गशाद्यात्र चतुर्दन्तो गजो महान् ॥७८॥  
 द्विजेच्छापूरणं यत्र व्रतं मेऽकुण्ठितं सदा । इदं वैकुण्ठपदृशं गृहं यत्रातिभासुरम् ॥७९॥  
 चिंतामणिरलंकारो हृदये यत्र वर्तते । एकादश सहस्राणि वर्णाण्यायुश्चिरं मम ॥८०॥  
 अनग्रं मे शिरशेदं केषामप्यवनीभृताम् । एवं मया सुखं भुक्तमिह जन्मनि भूसुराः ॥८१॥  
 नालपा वाप्युर्विरिताऽस्ति सुखेच्छा मम भूतले । अतएवावतारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥  
 भूतभाव्यावतारा ये तेऽशादेव मया धृताः । यद्गतं तु वने पूर्वं सीतया बन्धुना मया ॥८३॥  
 तच्च लोकोपदेशार्थं भूमारहरणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कृतस्तं प्रबदाम्यहम् ॥८४॥  
 पितुर्वचो माननीयं यद्यप्यतिश्रमप्रदम् । पुत्रैरित्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कृतम् ॥८५॥  
 न तदा किं मृषा कर्तुं पितुर्वाक्यं वलं मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तद्वाक्यं पालितं मया ॥८६॥  
 न हंतव्या मया कोधाद्दुष्टाकिं कैक्यी तदा । तथा मा नंथग चापि मे राज्ये विद्वनकारिणी ॥८७॥  
 किं तदा कुठिता शक्तिः कैक्यीमंथरावधे । स्त्रीहत्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्सुशिक्षितम् ॥८८॥  
 सापत्नमातृवाक्यं तु पालनीय स्वमातृवत् । स्वसुखार्थं वधोऽन्यस्य न कर्तव्यो जनैरिति ॥८९॥  
 उपदेष्टुं मया नैव कैक्यीमंथरे हते । न वंशुहिंसा कर्तव्या परराज्यं न कांश्येत् ॥९०॥  
 अहमूपदिशन्नित्यं जनान्वधुर्हतो न मे । मृते पितर्यपि हृतं न तद्राज्यं वलान्मया ॥९१॥  
 राज्यासका नरा भूम्यां भोगासका भवन्तुन । उपदेष्टुं जनानित्यमहं पूर्वं वनं गतः ॥९२॥  
 मारुपितृसुहृत्पुत्रस्नेहासक्तिः न कारयेत् । इत्थं मयोपदिशता न्यक्तः स्नेहस्तदा द्विजाः ॥९३॥

माता है, जहाँ कि मैं सदा स्वाधीन रहता हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहको वडानेवालो मुमेश्वा जैसी सास है, विदेह जैसे समुर हैं, विश्वामित्र जैसे विद्यादाता गुरु हैं ॥ ७७ ॥ लक्ष्मण जैसे मन्त्री है, सरयु जैसी नदी है, अङ्गदादि वीर अङ्गरक्षक हैं, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ ज्ञात्यांशोंसी इच्छा पूर्ण करना जैसा अकुण्ठित व्रत है, वैकुण्ठके समान सुन्दर भवन है ॥ ७९ ॥ चिंतामणि जैसा अङ्गार सदा हृदयपर रहता है, जहाँ रारह हजार वर्षोंकी लम्बा आयु है ॥ ८० ॥ किसी भी राजके सामने न झुकनेवाला यह मस्तक है। यहाँ जो सुख है, सो क्या अन्यत्र मिल सकता है ? हे विभो ! इस समाजमें मैंने जिन सुखोंका भोग किया है, सो बतला दिया ॥ ८१ ॥ अब मेरे हृदयमें किसी प्रकारका भी सुखभाग करतेकी कामना शेष नहीं रह गयी है। इसीलिए मैंने पूर्णरूपसे इस अवतारको घारण किया था। भूत तया भित्यके अवतारोंमें जो अंश वाकी रह गये थे, उनके समेत यह अवतार लिया है। जो बालकालमें सांता तथा भाईके साथ बनकी यात्रा की थी, वह दुःख भोगनेके लिए नहीं। बल्कि दुनियाके लोगोंको उपदेश देनेके लिए की थी। उससे मैंने संसारी जनोंको कौन-सा उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा हूँ ॥ ८२-८४ ॥ चाहे अतिशय परिथमसाध्य हो, फिर भी पिताकी बात माननी चाहिये। यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पिताकी आज्ञाका पालन किया था ॥ ८५ ॥ क्या पिताकी बात टालनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी ? थी, पर लोकशिक्षाके लिये उनकी बात मान ली थी ॥ ८६ ॥ क्या उस समय दुष्टा कैक्यी तथा राजमतिलकमें विद्वन डालनेवाली पापिनी मन्त्यराके वध करतेका पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनको दण्ड न देकर मैंने संसारको यह शिक्षा दी कि स्त्रीका वध कभी भी न करना चाहिए और अपनी सौतेली माँको आज्ञाका भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग अपनी संगी माताका करते हैं। दूसरे मुझे लोगोंको यह भी उपदेश देनाया कि अपने सुखके लिए परायेका वध न करना चाहिए। इसीसे कैक्यी और मन्त्यराको नहीं मारा ॥ ८७-८९ ॥ अपने भाईकी हिसान करे और दूसरेका राज्य न हड्डपना चाहे। यह उपदेश देनेहीके लिये मैंने भरतपर आँख नहीं उठायी, उन्हें नहीं मारना चाहा ! पिताके स्वर्गवासी हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं स्वीकार किया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ राज्यमें आसक्त लोग सर्वथा विलासी न हो जायें, यह उपदेश देनेके लिए ही मैं बनको गया था ॥ ९२ ॥ माता, पिता, मित्र,

सुखं दुःखं समं ज्ञेयं सुखं हपों न मानयेत् । शोकः कायों विषत्तौ न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥१४॥  
 राज्यसौख्यं मया त्यक्त्वा भुक्ताः क्लेशास्तदा बने । कामादीनां रिपूणां च दुष्टानां हि वधो भुवि ॥१५॥  
 जनैः कायं सदा चेति ह्यपदेष्टुं मया बने । वहनो निहतास्तत्र राक्षसा मुनिहिंसकाः ॥१६॥  
 स्त्रीसंगः सर्वदा त्याजस्त्वेकाकी च तपश्चरेत् । नासकं निजचित्तं हि स्त्रीषु कार्यं नरैः कदा ॥१७॥  
 इत्थ मयोपदिशता सीतायाश्च तदा बने । वियोगो दर्शितो लोकान् मत्तो भिन्ना न जानकी ॥१८॥  
 कदापि जायते विप्राः सत्यं चेदं ब्रवीम्यहम् । आर्तस्य रक्षणं कायं कायों दुष्टस्य निग्रहः ॥१९॥  
 मयोपदिशता चेत्थं जनान्सुग्रीवराक्षसी । रक्षितौ निहतौ बालिरावणावितरे हताः ॥२०॥  
 कीर्तिः कार्या जनेष्वत्र मयोपदिशता त्विति । पाषाणास्तारिता नीरे किमाकाशगतिर्न मे ॥२१॥  
 यथपि शुद्धे स्वे चित्ते विरुद्धं च जनेषु यत् । त्यक्त्वयं तत्प्रियं चापि मयोपदिशता त्विति ॥२२॥  
 जनानपापान् ज्ञात्वाऽपि लंकायां दिव्यदानतः । लोकापवादमीत्या सा पुरा त्यक्ताऽत्र जानकी ॥२३॥  
 स्वयमेवात्र यत्यक्तं शुद्धं ज्ञात्वा हि तत्पुनः । अंगोकायं जनेवुद्धया मयोपदिशता त्विति ॥२४॥  
 जनानंगीकृता सीता पुरा त्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीवतादीनि राजकर्माण्यनेकशः ॥२५॥  
 अश्वमेघादियज्ञश्च सदाचारो जपस्तुतः । स्नानसंध्याधिकं यद्यन्मयाऽत्र क्रियते सदा ॥२६॥  
 तत्सबै जनशिक्षार्थं मुक्तसंगस्य किं मम । कर्मतीतस्य भो विप्राः सदानन्दस्वरूपिणः ॥२७॥  
 अहं सदाऽनन्दमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरत्वेन सुखं दुःखं मयाऽक्षयि ॥२८॥  
 यदत्र भवतामग्रे कीर्तुकार्यं न संशयः । उपासकानां तोपार्थमवतारः स्वयं मया ॥२९॥

पुत्र आदिके स्नेहमें अधिक आसक्त न हो जाना चाहिए । यह उपदेश देते हुए मैंने स्नेहका परित्याग कर दिया था ॥६३॥ सुख-दुःख दोनोंको समान समझना चाहिए । सुखमें न विशेष हृषित हो, न दुःखमें धबड़ाये । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने राज्यसुखको ठोकर मारकर बनके बलेशोंको अपनाया था । काम-क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओंको मारना चाहिए ॥६४॥ ६५॥ यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने बनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राक्षसोंको मारा था ॥६६॥ स्त्रियोंमें अधिक आसक्त होना ठीक नहीं, बल्कि उनका सङ्ग त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या करे ॥६७॥ यह उपदेश देनेके लिए मैंने बनमें सीताको भेजकर उनसे वियोग दर्शाया था । वास्तवमें सीता हमसे पृथक् कभी नहीं हो सकती ॥६८॥ है ज्ञाह्यणों ! यह सब बातें मैंने सबैथा सत्य कही है । मनुष्यमात्रको चाहिए कि वह दुखों जनकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे ॥६९॥ सुग्रीव और विभीषणकी रक्षा करके दुष्ट बालि और रावणको मारकर संसारको मैंने यही उपदेश दिया है ॥७०॥ इस संसारमें मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी कीर्तिका विस्तार करे । इसीलिए मैंने समुद्रके पानीमें पत्थर तैराये थे । वैसे मैं चाहता तो क्या आकाशमार्गसे चलकर लङ्घा नहीं पहुँच सकता था ? ॥७१॥ यदि कोई वस्तु अपनेको प्रिय हो, किन्तु दुनियावालोंके विरुद्ध हो तो उस प्रिय वस्तुका भी परित्याग कर देना चाहिए । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने लङ्घामें अग्निको साक्षी दे तथा पवित्र जानकर भी लोकापवादके भयवश सीताका परित्याग कर दिया था ॥७२॥ ७३॥ भ्रमबश यदि किसी पवित्र वस्तुको त्याग दे और बादमें मालूम हो कि वह शुद्ध है तो उसको फिरसे बज्जीकार कर लेना चाहिये । यह उपदेश देनेके लिये ही मैंने पहले त्यागी हुई भी सीताको फिर स्वीकार कर लिया । उसी प्रकार एकपत्नीवत, अनेक तरहके राज्यकार्य, अश्वमेघादि यज्ञ, सदाचार, जप, तप, स्नान, संध्या आदि जितना भी काम हम करते हैं, सो सब लोगोंको उपदेश देनेके लिए ही कर रहे हैं ॥७४-७६॥ वैसे तो संसारी मायाजालसे अलग, सदा आनन्दस्वरूप, कर्मसे परे, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब लातोंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे अवतारके आवारपर आप लोगोंके कीर्तुकके लिए कहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है । अपने भत्तोंके सन्तोषार्थं विशेष-गुणसम्पन्न ये अवतार गिनाये, वास्तवमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं । किन्तु अपनी बुद्धिसे भली भाँति

विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्यग्बुद्धया विचाराच्च वरिष्ठः सकलेभ्यम् ॥ १११ ॥  
 द्वावतारी जलचरी तथा वनचरी च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरी एको वैश्यश्च गोपकः ॥ ११२ ॥  
 एकस्तु मलिनश्चापि परथ ध्रुणिकस्तथा । एवं भूता भविष्याश्च वितारास्तोषदा न मे ॥ ११३ ॥  
 अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः । अवतारस्त्वहं वेदि सेवनान्मंगलप्रदः ॥ ११४ ॥  
 चरित्राण्यतिरम्याणि पातकाद्धनानि वै मया । कृत्यस्मिन्नवतारे अवणान्मुक्तिदानि हि ॥ ११५ ॥  
 सदा जना मजंत्यत्र ह्यवतारममुं मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽतीव प्रियाः सदा ॥ ११६ ॥  
 एवं सर्वमिदं विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयंत्यस्मिन्नवतारेऽपि ये जनाः ॥ ११७ ॥  
 ते मद्देव्या नरकेषु पतंति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥ ११७ ॥

विसुज्य सकलान्सीतां रंजयामास राववः । एवं शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥ ११८ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतरंते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे  
अवतारवर्णनं नाम विशः सर्गः ॥ २० ॥

### एकविंशः सर्गः

( रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकीं द्रष्टुं सप्तद्वीपांतरस्त्रियः । मुनीतां पार्थिवानां च सुहदा व्यवसायिनाम् ॥ १ ॥  
 सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्नानमिष्वैषं यवुवाहनसंस्थिताः ॥ २ ॥  
 दृष्ट्वा समागतास्तात्र जानकीं गजगामिना । प्रत्युद्दम्यानयामास स्त्रीशालामर्तिसादरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निष्पत्तिपर पढ़ूचा हूँ कि समस्त अवतारोंमें वह रामवतार सर्वथष्ठ है ॥ १०७-११० ॥  
 दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कलधारी, एक वैश्यवर्णका गापरूप, एक मलिनवेश-  
 वाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भविष्यके सारे अवतार मेरे मनक नहीं हैं—इनसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ १११ ॥  
 ॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारोंने उपासक जनोंको प्रिय तथा सेवनसे मङ्गलप्रद यहाँ  
 रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिशय रम्य, पातकोंको नष्ट करनेवाले  
 तथा सुननेसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भतोंको चाहिये कि मेरे इसी अवतारका भजन करें । जो लाग इसका  
 उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रा ! यह सब रहस्य मैंने आनन्दके साथ आप  
 लोगोंको सुनाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें भी दाषारोप करते हैं, वे मेरे शत्रु हाकर अपने पूर्वजोंके साथ  
 नरकमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकारकी बात करके रामने उन मुनियोंका पूजन किया  
 और सबको विदाई दी ॥ ११७ ॥ तत्पञ्चात् साताको प्रसन्न करनेवाली बात करने लगे । हे शिष्य ! मैंने इस  
 तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका बरण किया ॥ ११८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं प० रामतेज-  
 पाण्डेयविरचित् 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अवतारवर्णनं नाम विशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार सीताको देखनेके लिये सातों द्विषोंको स्त्रिया जिनमें मुनियोंको, राजाओं-  
 की, मिश्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ सावारण श्रेणाके धनत्रियोंको तथा वैश्योंको हजारोंका संख्यामें नारियों  
 चैत्रस्नानके द्याजसे अनेक प्रकारके बाहनोंपर सवार हाहाकर अदोष्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें आती देखकर गजके  
 प्रभान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शोष्य उनके आगे पहुँचीं और आदरके साथ अपनी स्त्रीशालामें ले गयीं ॥ ३ ॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ४ ॥  
दिव्याल कारवस्त्राद्यैर्नानादेशोऽद्वैर्वरैः । परिवार्य ततः सीतां तस्युः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥  
श्रुत्वा सीतामुखाद्रामचरित्राणि सहस्रशः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुद्भूकास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥  
स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा प्रोचुर्विदेहजाम् । त्वत्पाणिग्रहणोत्साहं श्रोतुं वाञ्छामहे वयम् ॥ ७ ॥  
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य वक्तुमर्हसि जानकि । इति तासां वचः श्रुत्वा लज्जया जानकी तदा ॥ ८ ॥  
स्वां सखीं नोदयामास तुलसीं रुक्मभूषिताम् ।

## तुलस्युवाच

मृणुध्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् ॥ ९ ॥

जानक्याः कथयाम्यद्य महामगलदायकम् । वस्तोपार्थं हि संक्षेपाच्छ्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ १० ॥  
साकेताद्रघुनंदनेन स मुनिश्रीत्रा युतेनाश्रमं स्वं गत्वा विनिहत्य राक्षसबलं तेनेव यज्ञं निजम् ।  
संपाद्याशु रथस्थितश्च मिथिलामार्गे हरेरंघिणः संस्पर्शद्विकल्पां समकरोद्धार्यां मुनेर्गाधिजः ॥ ११ ॥  
गत्वा गाधिजसंयुतश्च मिथिलां भ्रात्रा सभासंस्थितश्चापाधः पतितं निरीक्ष्य च रिषुं स्वीयं मुनेराज्या ।  
तं नत्वा गिरिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिखंडं क्षणात्सीताहस्तविसज्जितां निजगले मालां दधौ राघवः ॥ १२ ॥  
धन्धूनां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवाहान् शुभान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राजाऽतिसंपूजितः  
स्यकत्वा तां मिथिलां यथौ निजपुरीं मार्गे क्रुधा तिष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निजस्य धनुषा सोपाहरण्डीलया ॥ १३ ॥  
एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । युष्माभिः कौतुकात्पृष्ठो यः सर्वमंगलप्रदः ॥ १४ ॥

## श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः श्रुत्वा परमा मुदमाप्नुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥ १५ ॥

सीताने अनेक तरहके भूषणोंसे उनकी पूजा की और उन स्त्रियोंने भी सिंहासनपर विठलाकर दिव्य अलङ्कारोंसे सीताका पूजन किया । इसके अनन्तर वे सब सीताको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहस्रों चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की ॥ ६ ॥ वे मुस्कुराती हुईं सीतासे कहन लगीं कि हम आपके विवाह-समारोहका वृत्तान्त सुनना चाहती हैं ॥ ७ ॥ हे सीता ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमको सुनाइए । इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जावश कुछ नहीं बोलीं और अपनी सहेली तुलसीको, जो कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकेत किया और तुलसी कहते लगी—आप लोग सीताके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए उस महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ानेवाले विवाहका मैं संक्षेपमें वर्णन करती हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरीसे विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने आश्रम पहुँचे । वहाँ राम-लक्ष्मणने राक्षसोंकी प्रवल सेनाका संहार किया और मुनि विश्वामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले । रास्तेमें विश्वामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे । स्वयम्बरके समय रामने सभामें मुनि विश्वामित्रका बाजासे शिवके घनुषको प्रणाम किया और धृण भरमें उसे तोड़कर तीन दुकड़े कर डाले । फिर सीताके हाथोंकी वरमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया । फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याको चले । रास्तेमें क्रोधी परशुराम मिले और उनके बैण्डव घनुषको चढ़ाकर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! तुमने कौतुक वश सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाह-वृत्तान्तको पूछा था, सो मैंने कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

सीतया पूजिताः सर्वास्तां नत्वामंत्र्य जानकीम् । चैत्रस्नानं समाप्याथ जग्मुः स्व स्वं स्थलं प्रति ॥१६॥  
अथैकदा गुरोरास्याद्रामाग्रे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुराणं प्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥  
गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । पुस्तकेषु च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥  
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेत्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानवैस्तत्त्वं तत्सर्वं कथयस्व मात् ॥१९॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुम् वाक्यमन्वीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स लोकसंदेहहृत्परम् ॥२०॥

श्रीरामचरितं पूर्वं व्यासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥  
कृतान्यन्यैश्च मुनिभिः पटश्चादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव इलोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥  
सर्वमस्तीस्ति तद्वद्वधुमादावेकत्र श्रीति च । विलिख्यैकत्र रामेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥  
अनया संज्ञया सर्वे ज्ञास्यन्त्वग्रे जना भुवि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥  
कृतमस्ति पृथक् भिन्नं पुरा व्यासादिभिस्त्वति । एतस्मात्कारणाद्वाल सूचनार्थं विलिख्यते ॥२५॥  
श्रीरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र जगतीतले । अन्यत्ते कारणं वच्चिम तच्छृणुष्व शिशो लत् ॥२६॥  
अशुद्धं लिखितं यच्चाज्ञानतो भ्रातितोऽपि हि । पत्रं तच्चातिशुद्धं हि भवत्त्वति मनीषया ॥२७॥  
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदकिं श्रीरामेति नाम्ना पत्रं तु लेखकैः ॥२८॥  
ज्ञेयं तच्चाति शुद्धं हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्यां हि सत्यं लत् वदाम्यहम् ॥२९॥  
इति श्रुत्वा गुरोबाक्यं वसिष्ठं प्रणिपत्य च । लवः स गतसन्देहस्तृष्णीमासीन्मुदान्वितः ॥३०॥  
एकदा रघुनाथस्तु मन्चकोपरि संस्थितः । मुखात्तांवूलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥  
त्यक्तुकामो न ददर्श पात्रं निष्ठीवनस्य सः । तस्यांतिके स्थिता दासी नाम्ना वै सुगुणेति च ॥३२॥

प्रसन्न हुईं और उन्होंने फिरसे सीताका पूजन किया ॥ १५ ॥ सीताने भी फिर उनका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चैत्रस्नान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चली गयीं ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुरु वसिष्ठ वैठे पुराणोंकी कथा सुना रहे थे । रामचन्द्रजी और लव भी वैठे हुए थे । कथा सुनते-सुनते लवने सब लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए वसिष्ठसे कहा— ॥१७॥ है गुरो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सब पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर 'राम' ऐसा लिखा जाता है । लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें बता दीजिये ॥ १८ ॥ १६ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे बहुतोंका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रात्मक अद्वारह पुराण और अद्वारह ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह और-और ऋषियोंने षट्शास्त्र आदि बनाकर तैयार किये । सब ग्रंथोंके सभी श्लोक श्रीरामचरित्रसे बने हैं । इसी बातको बतलानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस संकेतसे संसारके मनुष्य पुस्तक देखकर यह समझेंगे कि ये सब ग्रंथ श्रीरामचरितके अन्तर्गत हैं । हे वत्स ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो बता चुका । दूसरा भी बतलाते हैं—हे लव ! सो भी सुन लो ॥ २४-२६ ॥ अज्ञानतासे या भ्रमवश पन्नेमें जो कोई शब्द अशुद्ध लिख गया हो, वह पन्ना अत्यन्त शुद्ध हो जाय । इस विचारसे भी पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता । हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बातें बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत हो गया और वे चुपचाप बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम मन्चपर वैठे थे । मुखमें ताम्बूल पा । ताम्बूलका प्रथम रस दोषकारक होता है, इस ख्यालसे उन्होंने थूकना चाहा । किन्तु निष्ठीवनपाप ( ओगालदान ) नहीं दिखायी पड़ा । रामके पास ही खड़ी सुगुणा नामकी दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्यं पात्रं दूरं विलोक्य च । कुत्वा पात्रं स्वहस्ताभ्यामंजलावेव तद्रसम् ॥३३॥  
 रामेण मुक्तमास्याच्च जग्राह वेगवत्तरा । ततः सा प्राशनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तत् ॥३४॥  
 महाप्रसादं तं मत्वा देवाल्लभं विचित्य च । तदाऽतितुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मणाऽब्रवीत् ॥३५॥  
 वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूतमम् ॥३६॥  
 एकपत्नीवतं तेऽस्ति सांप्रतं त्विह जन्मनि । जमातरे त्वया संगं वाञ्छामि रघुनायक ॥३७॥  
 तत्स्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णस्त्वेण गोकुलेऽवतराम्यदम् ॥३८॥  
 तदा राधेति नाम्नी त्वं गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं भोक्ष्यसि न संशयः ॥३९॥  
 तदा भग्नातिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुतोप सा ॥४०॥  
 अन्यच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यत्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥  
 एकदा राघवः श्रीमान्सभायामासनोपरि । संस्थितो वन्धुभिः पुत्रैमन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥४२॥  
 एतस्मिन्नतरे कथिद्व्रक्षाचारी समाययौ । युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमण्डलुकरः शुचिः ॥४३॥  
 ऐणकृष्णाजिनधरः काषायवमनो व्रती । तं दृष्ट्वा राघवः श्रामानवतीर्य वरासनात् ॥४४॥  
 प्रस्त्युद्भ्याथ तं नत्वाऽसने समुपवेश्य च । पूजयामाप विधिना धेनुमग्रे निवेद्य च ॥४५॥  
 ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं विप्र यतस्ते दर्शनं मम ॥४६॥  
 कार्यमाज्ञाप्यतां किंचिद्यदर्थं भवताऽऽगतम् । तद्राघववचः श्रुत्वा ब्रह्माचारी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥  
 बालमीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यष्टुकामो महायज्ञं स बालमीकिर्महामुनिः ॥४८॥  
 स्वामाकारयितुं मां त्वच्चिकटं वगवत्तरम् । प्रेषितवानतस्त्वं हि सीतया वन्धुभिः सह ॥४९॥  
 प्रस्थान कुरु राजेन्द्र मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । एवं वदति श्रीरामं भूसुरे सदसि स्थिते ॥५०॥

समझ गयी, किन्तु पात्र दूर था । इसलिए रामको थूकनेके लिए उसने अपनी अञ्जलों फैला दी ॥ ३१—३३ ॥ रामने भी वह प्रयम रस उसके हाथमें थूक दिया । दासी उसको लेकर तुरन्त चाट गयी । उसने मनमें सोचा कि यह महाप्रसाद है और भाग्यवश आज मुझे मिल गया है । उसके इस अवहारसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा— ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरो दासी ! तेरो जो इच्छा हो, वह वर माँग ले । रामकी बात सुनकर उसने कहा—इस जन्ममें आप एकपत्नीवती हैं । इसलिए हे रघुनायक ! मैं दूसरे जन्ममें आपके साथ एकान्त-सहवास करना चाहती हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि अगले जन्ममें मैं कृष्णस्त्वेण गोकुलमें अवतार लूँगा, तब तुम राघवा नामसे विख्यात एक गोपपत्नी होओगी । उस समय बढ़ते दिनों तक तुम मेरे साथ क्रीडाका सुख भोगोगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बृजको सारी गोपियोंमें तुम मुझे सबसे प्रिय होओगी । दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पाकर प्रसन्न हो गयी ॥ ४० ॥ हे विष्णुदास ! रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ । वह बड़ा कौतूहलजनक है ॥ ४१ ॥ एक समय राम सभामें सिहासनपर भाइयों, पुत्रों तथा मंत्रियोंके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसो समय एक युवा ब्रह्माचारी दण्ड वारण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचर्म लिये और काषाय वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए । योहा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक अच्छे आसनपर बिठलाया । फिर गोदान देकर उन्होंने उसकी पूजा की ॥ ४३-४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शन-से मैं अपनेको धन्य समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आज्ञा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हों । रामकी यह बात सुनकर ब्रह्माचारी कहने लगा— ॥ ४७ ॥ श्रोबालमीकिजीने मुझे आपके पास भेजा है । वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमें भेजा है । हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है । अतएव सीता तथा अपने भ्राताओंके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए । इस प्रकार वह